मगल काव्य परम्परा

लेखक

डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

एम० ए० [पी-एच० डी०] साहित्य रत्न

मगल प्रकाशन

गोविन्द राजियों का रास्ता

जयपुर

प्रस्तावना

हिन्दी-राजस्थानी में विष्णुदास (१५वीं सदी वि०) सूर, तुलसी, नन्ददास और पृथ्वीराज से आधुनिक काल तक विवाह मंगल काव्यों की सुदीर्घ परम्परा रही है किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहासग्रन्थों में इस काव्य-परम्परा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। भारतीय साहित्य (हिन्दी विद्यापीठ आगरा-विश्वविद्यालय, आगरा, जनवरी १९५६ ई०) में अनेक भाषाओं के मंगल-काव्यों का विवरण दिया गया है किन्तु यहां हिन्दी राजस्थानी मंगल काव्यों का कोई वर्णन उपलब्ध नहीं होता। यहां तक कि हिन्दी साहित्य-कोष (सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी और रघुवंश प्रका० ज्ञान मंडल वाराणसी) में भी मंगल काव्य-परम्परा का विवरण नहीं है। हिन्दी राजस्थानी में अब तक १८७ मंगल-काव्य उपलब्ध हो चुके हैं।

हिन्दी भ्रमर गीत परम्परा के प्रधान प्रेरक विष्णुदास हैं जिसका पालन सूरदास और नन्ददास आदि अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने किया। भ्रमर गीत परम्परा की भांति ही मंगल-काव्य परम्परा का हमारे साहित्य में महत्व है किन्तु खेद का विषय है कि इस विषय में हम अब तक उदासीन रहे हैं।

प्रासंगिक रूप में हिन्दी-राजस्थानी मंगल काव्यों का परिचय अपने शोध प्रबंध राजस्थानी साहित्य के सन्दर्भ सहित श्रीकृष्ण रुक्मिणी-विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्य" (प्रका मंगल प्रकाशन जयपुर) में दे चुका हूं। अद्यावधि उपेक्षित इस विषय की ओर अध्येताओं का विशेष ध्यान आकर्षित करने की दृष्टि से श्री उमरावसिंह 'मंगल, मंगल प्रकाशन, जयपुर की ओर से इस विषय को पुनः पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है तदर्थ उन्हें अनेक धन्यवाद।

इसी प्रकार के अनेक काव्य रूप अद्यावधि उपेक्षित हैं जिनकी ओर मैंने अपने 'राजस्थानी साहित्य का इतिहास' (मंगल प्रकाशन जयपुर) में संकेत किया है। आशा है कि हमारे अध्येता इनकी ओर समुचित ध्यान देंगे और इन महत्वपूर्ण विषयों को अपेक्षित महत्व मिलेगा। तदर्थ आवश्यक है कि राजस्थान और मध्यप्रदेश जैसे प्रदेशों में हस्तलिखित ग्रन्थों का सम्पूर्ण सर्वेक्षण हो। खेद का विषय है कि राजस्थान जैसे प्रदेश में हस्तलिखित

ग्रन्थों की खोज सर्वेक्षण और सम्पादन–प्रकाशन के लिए ही अनेक राजकीय और अराजकीय संस्थाएं संलग्न हैं तथा प्रति वर्ष लाखों रुपये व्यय होने पर भी अभी तक हस्तलिखित ग्रन्थों का समुचित सर्वेक्षण नहीं हो पाया है। आशा है कि सम्बद्ध समस्त संस्थाओं और उनके प्रशासकों द्वारा ग्रन्थ सर्वेक्षण-सम्बन्धी कार्यों में तत्परता की जावेगी।

मंगल काव्य परम्परा और ऐसे ही अन्य उपेक्षित किन्तु महत्वपूर्ण साहित्यिक विषयों की ओर हमारे अध्येता थोड़ा बहुत ध्यान देंगे तो लेखक अपने परिश्रम को सार्थक समझेगा और उनके सहयोग में सदैव तत्पर रहेगा।

ऐसे साहित्यिक कार्यों में चिरंजीव श्री गोविन्ददास वर्मा के साथ ही प्रियपत्नि श्रीमती कृष्णा मेनारिया 'विदुषी', अक्षय सौभाग्यवती पुत्री श्रीमती गीता रानी जोशी एम० ए० अन्य पारिवारिक जनों तथा स्नेही मित्रों एवं गुरुजनों का सदैव सहयोग मिलता रहा है तदर्थ आभारी हूं।

राजस्थान साहित्य अकादमी
उदयपुर।
६ मार्च १९७०

—पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

विषय तालिका

तृतीय अध्याय श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह-सम्बन्धी-राजस्थानी चारण काव्य (२ : ३ – १४७ · ३) ८०–१५५

चतुर्थ अध्याय श्रीकृष्ण रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी चारणेतर काव्य(१ ४–११२ ४) १५७–१८०

पंचम अध्याय उपसंहार १८१–१८८

चतुर्थ अध्याय श्रीकृष्ण रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी चारणेतर काव्य(१ ४–११३ ४) १५७–१८०

तृतीय अध्याय श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह-सम्बन्धी-राजस्थानी चारण काव्य (२ · ३ – १४७ : ३) ८०–१५५

चतुर्थ अध्याय श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी चारणेतर काव्य(१ ४–११३·४) १५७–१८०

प्रथम अध्याय

विवाह और विवाह-सञ्ज्ञक रचनाएं

(क) विवाह सस्कार

(ख) विवाह—

(अ) ब्राह्म विवाह
(आ) देव विवाह
(इ) आर्ष विवाह
(ई) प्रजापत्य विवाह
(उ) आसुर विवाह
(ऊ) गन्धर्व विवाह
(ए) राक्षस विवाह
(ऐ) पिशाच विवाह

(ग) विवाह सञ्ज्ञक रचनाएं —

१ (अ) मंगल काव्य
(आ) विवाह लऊ, विवाहलो, विवाह
(इ) वेलि
(ई) हरण
(उ) परिणय

२ (क) मराठी मंगल काव्य
(ख) कन्नड मगल काव्य
(ग) तेलगु मगल काव्य
(घ) उडिया मगल काव्य
(ङ) गुजराती मगल काव्य
(च) हिन्दी मगल काव्य
(छ) राजस्थानी मगल काव्य

प्रथम अध्याय

विवाह और विवाह सञ्ज्ञक रचनाएं

(क) विवाह संस्कार

१ १। हमारे समाज का निर्माण अनेक परिवारों से होता है और समाज की पारिवारिक इकाई विवाह-सम्बन्ध पर ही आधारित होती है। हिन्दू धर्म के अनुसार विवाह मानव-जीवन का एक विशेष संस्कार है जिसके द्वारा पति-पत्नी का पारस्परिक सामाजिक और धार्मिक सम्बन्ध स्थापित होता है।

२ १। विवाह शब्द की व्युत्पत्ति वि (उपसर्ग)+वह (धातु) में धञ् प्रत्यय मिलकर हुई है। इसकी व्याख्या 'दारपरिग्रहे तज्जन के व्यापारे च" और "भार्यात्वस म्पादकज्ञान विवाह" अर्थात् स्त्री का परिग्रहण और तत्सम्बन्धी कार्य विवाह कहा गया है।[1]

विवाह के समानार्थी शब्द परिणय की व्युत्पत्ति परि (उपसर्ग) णी (धातु) के साथ अच् प्रत्यय लगा कर की गई है। परिणय शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है, "परिणयन तत्रार्थे न० परिणयतेर्विवाहार्थत्वात् परिणीता इत्यादौ कृत विवाहा द्यार्थावगम।' अर्थात् विवाह शब्द परिणय का समानार्थी शब्द है।[2]

३ १। वेस्टर मार्क के मतानुसार-"विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला सम्बन्ध है जो प्रथा अथवा कानून द्वारा स्वीकृत होता है।[3] विवाह की व्याख्या करते हुए राबर्ट एच० लावी ने लिखा है-"विवाह स्पष्टतः उन स्वीकृत संगठनों को प्रकट करता है जो काम-सम्बन्धी संतोष के उपरान्त भी

---

१ - वाचस्पत्यम्, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, पृ० ४९२१।

२ - वही, पृ० ४२-४७।

३ - दी हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज, वो० १, पृ० २६।

स्थिर रहते है तथा पारिवारिक जीवन के कारण बनते हैं।[1] गिलिन के मतानुसार- "विवाह एक प्रजननमूलक परिवार की स्थापना हेतु समाज द्वारा स्वीकृत विधि है।[2] इस प्रकार पश्चिमी विचारकों के मतानुसार मुख्यत स्त्री पुरुष के यौन-सम्बन्धों को नियमित करने की दृष्टि से विवाह नामक विधि का प्रचलन हुआ। विवाह एक ऐसी विधि बन गई जिसके द्वारा स्त्री पुरुष को अपने यौन सम्बन्ध स्थापित करने की स्वीकृति समाज, राज्य और राज्य नियमो द्वारा मिल जाती है। विवाह के बिना स्त्री पुरुष के यौन-सम्बन्ध अपराध ही नही होते वरन् अधार्मिक भी होते हैं। विवाह के पश्चात् स्त्री पुरुष को पारस्परिक अनेक कर्तव्यों का निर्वाह करना होता है। हिन्दू धर्म में सामाजिक के लिए ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ भूत यज्ञ, पितृ यज्ञ तथा नृयज्ञ सम्पन्न करना आवश्यक माना गया है और इसके लिये विवाह कर सन्तानोत्पत्ति करना अपेक्षित होता है। हिन्दू धर्म के अनुसार विवाह का मूल उद्देश्य काम तृप्ति नही वरन् धर्मपालन है—"विवाह का एक मात्र उद्देश्य काम वासना की तृप्ति नही माना जाता था।"[3] श्री कापडिया के मतानुसार प्राथमिक रूप मे कर्तव्यों की पूर्ति के लिए ही विवाह है इसलिए विवाह का मूल उद्देश्य धर्म ही है।[4] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार—

"पति का आदर्श वास्तव मे पत्नी है इसलिए जब तक पुरुष पत्नी नही प्राप्त करता और सन्तान नही उत्पन्न करता तब तक वह पूर्ण नही होता।"[5]

भगवान रामचन्द्र को यज्ञ हेतु सीता जी के अभाव मे उनकी स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित करनी पड़ी थी। कालिदास के मतानुसार—

तद्दर्शनादभूच्छम्भोर्भूयान् दारार्थमादर ।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूल कारणम् ॥

अर्थात्—कामदेव पर विजय पाने वाले शिव के समक्ष अरुन्धती आई तो उसको देखकर शिव

---

१ – एन्साइक्लोपीडिया आफ सोशियल साइंसेज मेरिज, वो० १० पृ० १४६।

२ – कल्चरल सोशियोलोजी, पृ० ३३४।

३ – श्री के० एल० दफ्तरी, दी सोशियल इन्स्टीट्यूशन्स इन एन्शीयन्ट इण्डिया १९४७, पृ० १६०।

४ – मेरिज एण्ड फेमिलि इन इण्डिया, १९५८, पृ० १६८।

५ – शतपथ ब्राह्मण ५।२।१।१०।

की इच्छा विवाह करने का हुई क्योंकि पतिव्रता स्त्री ही धर्म सम्बधी क्रियाओं का मूल है।[1]

४ १। विवाह का धर्म के अतिरिक्त दूसरा उद्देश्य सन्तान प्राप्ति होता है। ऋग्वेद मे अमृतत्व का उपभोग करने का साधन सन्तान बताया गया है—"प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्।"[2] अनेक मन्त्रों में पुत्र प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा व्यक्त की गई है।[3]

५ १। हिन्दू जीवन मे मुख्य सस्कार सोलह माने गए हैं—

(१) गर्भाधान, (२) पु सवन
(३) सीम तो नयन (४) जातकर्म,
(५) नामकरण। (६) निष्क्रमण,
(७) अन्नप्राशन, (८) चूडाकर्म,
(९) कर्णवेध (१०) उपनयन
(११) वेदारम्भ, (१२) समावर्तन,
(१३) विवाह, (१४) वानप्रस्थ,
(१५) सन्यास, (१६) अन्त्येष्टि सस्कार।

(१) गर्भाधान —हिन्दू जीवन मे गर्भाधान प्रथम सस्कार है। गर्भाधान के लिए स्त्री की अवस्था सोलह और पुरुष की अवस्था पच्चीस बताई गयी है—

पचविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समात्वागतवीर्यौ तो जानीयात् कुशलोऽभिषक॥[4]

(२) पु सवन —पु सवन संस्कार गर्भाधान के पश्चात् द्वितीय अथवा तृतीय मास में सम्पन्न होता है —

"अथ पु सवनं पुरास्यन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा॥"[5]

यह सस्कार गर्भ की पुष्टि के लिए किया जाता है।

(३) सीम न्तो नयन — इस सस्कार के लिए चतुर्थ मास निश्चित किया गया है—

---

१ – कुमारसभव ६। १३।
२ – ऋग्वेद सहिता, ५। ४। १०
३ – ऋग्वेद सहिता, १। ९१। २०, १। ९१। १३, ३। १। १२३।
४ – सुश्रुत सूत्रस्थान, अ० ३५।
५ पारस्कर १।१४

'चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम्'

एक दूसरे मत में सीमन्तोन्नयन' संस्कार छठे अथवा आठवें मास में सम्पन्न करना चाहिए—

"पुंसवनवत्प्रथमे गर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा।"[१]

इस संस्कार मे गर्भवती को उत्तम संतान की प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिया जाता है — 'ओं वीरसूस्त्वं भव, जीवसूस्त्वं भव, जीव पत्नीत्वं भव।" [३]

(४) जातकर्म — गर्भवती की प्रसव-पीड़ा से लेकर-सन्तान जन्म तक के कार्य जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत सम्पन्न होते हैं। सन्तान का जन्म होने पर उसको शुद्ध कर पिता अपनी गोद में लेता है और मन्त्रोच्चारण के साथ यज्ञवेदी के समीप जाकर स्वर्णशलाका से नवजात शिशु को थोड़ा घृत और मधु चटाता है।[४] तदुपरान्त हवन कर सन्तान को दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया जाता है।

(५) नामकरण — शिशु जन्म के पश्चात् ग्यारहवें दिन शिशु का नामकरण संस्कार होता है।[५] इस अवसर पर यज्ञ भोजन और उत्सवादि होते हैं।

(६) निष्क्रमण — इस संस्कार में बालक को अच्छे वस्त्र पहिना कर यज्ञवेदी के समीप ले जाया जाता है और यज्ञ के पश्चात् बाहर भ्रमण में उसको सूर्य और चन्द्र के दर्शन कराए जाते हैं। यह संस्कार चतुर्थ मास में किया जाना चाहिए—

"चतुर्थेमासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति।'[६]

(७) अन्नप्राशन — अन्नप्राशन संस्कार शिशु जन्म के छठे मास में सम्पन्न होना चाहिए। इस समय पति पत्नी को थोड़े भात में घृत, दही और मधु मिलाकर बालक को देना चाहिए—

'षष्ठ मास्यन्नप्राशनम् घृतौदन तेजस्काम "
दधिमधुघृतमिश्रितमन्न प्राशयेत॥'' [७]

(८) चूडाकर्म —इस संस्कार को मुण्डन भी कहा जाता है। यह संस्कार शिशु-जन्म

१ – आश्वलायन सूत्र १।१४।१ ।
२ – पारस्कर १।१५।१ ।
३ – गोभिलीय गृह्यसूत्र २।७।१३ ।
४ – आश्वलायन गृह्यसूत्र १।१५।१ ।
५ – पारस्कर गृह्यसूत्र १।१७।१ ।
६ – पारस्कर गृह्यसूत्र १।१४।५, ६ ।
७ – आश्वलायन सूत्र १।१६।१–३ ।

के पश्चात् तीसरे वर्ष होना चाहिये—"तृतीये वर्षे चौलम् ।' [1] इस संस्कार में बालक का मुण्डन किया जाता है। मुण्डन व स्नान के पश्चात् वस्त्र भूषणों से सज्जित कर पति-पत्नी बालक को यज्ञवेदी के समीप लाते हैं। पति-पत्नी यज्ञोपरान्त वृद्धों और गुरुजनों से आशीर्वाद प्राप्त कर हैं।

(९) कर्णवेध—यह संस्कार शिशु जन्म के तीसरे अथवा पाँचवें वर्ष करने की विधि है— 'कर्णवेधो वर्षे तृतीये पचमे वा। [2]

इस संस्कार के अवसर पर बालक को वस्त्राभूषणादि से सज्जित कर पति पत्नी यज्ञ सपादित करते हैं और किसी अच्छे वैद्य अथवा स्वर्णकार से बालक के दोनों कानों में छेद करवा कर उनमें सलाका पहनाते हैं।

(१०) उपनयन संस्कार —उपनयन संस्कार को यज्ञोपवीत संस्कार भी कहते हैं। यह संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों के लिए मान्य है। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का पंचमवर्ष में, क्षत्रिय का षष्ठ वर्ष में और वैश्य का अष्टम वर्ष में उपनयन संस्कार होना चाहिये—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।
राज्ञो बलार्थिन षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥[3]

यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर पति पत्नी मिलकर यज्ञ करते हैं और पुरोहित यज्ञविधि सम्पादित होने पर बालक को यज्ञपवीत धारण कराता है।

(११) वेदारम्भ— बालक विद्याध्ययन प्रारम्भ करता है तब यह संस्कार सम्पादित किया जाता है। पति-पत्नी अपने बालक को गुरु के पास विद्याध्यन हेतु भेजते हैं। गुरु गायत्री मंत्र से प्रारम्भ कर वेदों की शिक्षा हेतु अनेक नियम विद्यार्थी को धारण करवाता है। विद्यार्थी इस संस्कार के पश्चात् पूर्णरूपेण गुरु के आधीन रहकर अपनी शिक्षा आरम्भ करता है।

(१२) समावर्तन — यह संस्कार दीक्षांत संस्कार भी कहा जाता है। वेदों के पूर्ण अध्ययन के उपरांत ही यह संस्कार सम्पादित करने का विधान है— "वेद समाप्ति स्नायतीत ।[4] विद्यार्थी इस संस्कार के पश्चात् विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश हेतु आचार्य

---

१ – आश्वलायन सूत्र १।१७।१।

२ – कात्यायन गृह्यसूत्र १।२।

३ – मनुस्मृति २–३७।

४ – आश्वलायन, १।२२।१९।

का आशीर्वाद प्राप्त करता है और मरने पर सो'ता है। घर पर पारिवारिक व्यक्ति उसके स्वागत में उत्सव आयोजित करते हैं।

(११) विवाह — विद्याध्ययन पूरा कर व्यक्ति का विवाह संस्कार किया जाता है। विवाह आठ प्रकार के होते हैं—

(१) ब्राह्म, (२) दैव,
(३) आर्ष, (४) प्रजापत्य
(५) आसुर (६) गान्धर्व,
(७) राक्षस और (८) पिशाच।

(अ) ब्राह्मविवाह —ब्राह्मविवाह हेतु कन्या का पिता योग्य वर की खोज कर उसको घर पर आमंत्रित करता है और धार्मिक विधियों का पालन करते हुए विवाह में कन्यादान करता है। इस विवाह में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वर और वधु की माताओं और पिताओं का होता है। कन्या का पिता बिना किसी प्रलोभन के योग्य वर का दान में दिया जाता है। दान प्राचीन काल में केवल पात्र व अधिकारी व्यक्ति को ही दिया जाता था।

(आ) देव विवाह —- देव विवाह के अन्तर्गत कन्या का विवाह यज्ञकर्ता के साथ किया जाता है। प्राचीनकाल में प्रत्येक हिन्दु परिवार में यज्ञकर्ता यज्ञ करते थे। यज्ञकर्ता को कन्या के उपयुक्त समझा जाता था यज्ञ के उपरान्त उसको कन्यादान दे दिया जाता। डॉ० के० एस० अल्तेकर के अनुसार– 'वैदिक यज्ञों के साथ साथ देव विवाह भी लुप्त हो गए हैं'।[२]

(इ) आर्ष विवाह — आर्ष विवाह में वर अपने ससुर को धार्मिक कार्यों की पूर्ति हेतु एक गाय और एक बैल अथवा इसके दो जोड़े देता था। प्राचीन काल में पशु मुख्यतः गाय बैल विनिमय के विशेष साधन माने जाते थे। अनेक भारतीय आदिवासियों में वर की ओर से कन्या के पिता को गाय बैल देने की परिपाटी आधुनिक काल में भी प्रचलित है।

(ई) प्रजापत्य विवाह —प्रजापत्यविवाह मे वर और वधु को धार्मिक कृत्यो में पूर्ण रूपेण सम्मिलित रहने की प्रतिज्ञा करनी होती थी। अनेक मतों में प्रजापत्य व ब्राह्मविवाह समान है।

(उ) आसुर विवाह — आसुर विवाह में कन्या मूल्य के रूप में वर अथवा वर का पिता वधु के पिता को धन देता है। कन्या के रूप और गुणों के अनुसार ही धन निश्चित किया जाता था। आधुनिक काल मे भी विवाह की यह पद्धति आदि वासियो और अन्य जातियों मे प्रचलित है।

(ऊ) गान्धर्व विवाह —गान्धर्व विवाह युवक और युवती की इच्छा और प्रेम पर

---

२ – दी पोजीशन आफ वोमन इन हिन्दु सिविलाईजेशन, १६५६, पृ० ४५।

आधारित हैं। माता पिता की स्वीकृति के बिना ही युवक और युवती प्रेम में बंध कर विवाह कर लें। यह बोधायन धर्मसूत्र में प्रशंसनीय माना गया है— 'गान्धर्वमप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात्।'[1]

राजा दुष्यन्त व शकुन्तला का विवाह भी गान्धर्व विवाह कहा गया है।

(ए) राक्षस विवाह —युद्ध में विजय प्राप्त कर कन्या का हरण किया जाता था और तब उसके साथ विवाह होता था। कन्या को युद्ध विजय के पुरस्काररूप में ग्रहण किया जाता था। इस प्रकार के विवाह में शक्तिशाली राजा युद्ध में विजय प्राप्त कर कन्याओं का विवाह हेतु हरण करते थे। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाह भी किसी सामान्तर राक्षस विवाह कहा जा सकता है।

(ऐ) पिशाच विवाह —स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध मद्यपान अथवा अन्य किसी उपाय से संज्ञाहीन कर बलात् लाकर किये जाने वाले विवाह को पिशाच विवाह कहते हैं। इस प्रकार का विवाह निम्न कोटि का माना गया है।

उक्त प्रकारों के विवाहों में ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्रजापत्य विवाह उत्तम कोटि के विवाह माने गये हैं। गान्धर्व विवाह मध्यम कोटि का है और आसुर, राक्षस तथा पिशाच विवाह निम्न कोटि के माने गये हैं। ब्राह्म प्रजापत्य और देव विवाह कन्यादान के रूप में, आर्ष और आसुर विवाह कन्या विक्रय के रूप में, गान्धर्व विवाह स्त्री-पुरुष के पारस्परिक समझौते के रूप में और राक्षस तथा पिशाच विवाह शक्तिप्रदर्शन रूप में हैं।

हिन्दू विवाह का आदर्श उत्तम कोटि का है। विवाह को धार्मिक रूप में ही ग्रहण किया गया है। विवाह के धर्म-पालन, सन्तानोत्पत्ति और रति नामक तीन उद्देश्य प्रधान माने गये हैं। विवाह के अवसर पर यज्ञ आयोजित कर अनेक प्रकार की धार्मिक और सामाजिक प्रक्रियाएं सम्पन्न की जाती हैं, तथा पवित्र अग्नि की साक्षी में मन्त्रों का उच्चारण धार्मिक कृत्यों के रूप में होता है। हिन्दू विवाह स्त्री-पुरुष के लिए एक पवित्र बन्धन है जिसके द्वारा वर और वधु को आजन्म अनेक कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक होता है।

(ख) विवाह-संज्ञक रचनाएं

५३ ३। विवाह सम्बन्धी काव्य मुख्यतः निम्नलिखित नामों से लिखे गये—

(अ) मंगल।

(आ) विवाहलउ, विवाहलो, विवाह।

(इ) वेलि।

(ई) हरण।

(उ) परिणय।

---

[1] – बोधायन धर्मसूत्र १।११।१३।७।

५४ ३। मंगल शब्द के अनेक अर्थ होते हैं—

१. मनोकामना पूरी होना, कल्याण और अभीष्ट सिद्धि होना,
२ सौर जगत का एक ग्रह,
३ सात वारो मे से एक वार
४ विष्णु,
५ अग्नि (हमीरनाममाला ८१, नागराज डिंगल कोष २७, अवधान नाम माला १२६)
६ डिंगल गीत छन्द का एक प्रकार,
७ *मन्दिरों में देवी-देवताओं के पट बन्द करने के लिये व्यवहृत शब्द-प्रयोग जैसे— "पाट मगल करना।"*
८ कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व ईश प्रार्थना
९ एक प्रकार का घोड़ा जिसके कठ ललाट और सिर पर भवरी (चक्र) हो। यह घोड़ा मांगलिक कहा जाता है।
१० शुभ अवसरो पर गेय गीत,
११ रक्त वर्ण-(सूरजप्रकाश कविया करणीदान कृत भाग २ पृ० २९६)

मंगल सम्बन्धी निम्न लिखित शब्द उल्लेखनीय हैं—

१ अष्टमगल— (सिंह, वृष, नाग, कलश, चामर, वैजयन्ती भेरी और दीपक अथवा ८ प्रकार के मोतियो की माला।
२ मगल कलश,
३ मगल पाठ (नान्दी पाठ),
४ मगल झळ (आग की लपट),
५ मगलणो (जलना अथवा जलाना),
६ मगल-धवल (विवाह के गीत)
७, मगलवाद (आशीर्वाद),
८ मगलवारी (मगलवार सम्बन्धी),

६ मगल वेला (शुभ वेला)।

१० मगल सूत्र (शुभ अथवा सुहाग का सूचक आभूषण अथवा सूत्र)।

११ मंगल स्नान (शुभ स्नान)।

१२ मगना (पार्वती, दुर्वा, पतिव्रता, देवी, अग्नि हल्दी विष्णु और प्रात कालीन प्रथम आरती)।

१३ मगलाचरण-मगलाचार-मगलारम्भ।

१४ मगलाव्रत (शिव और पार्वती सम्बन्धी व्रत)।

१५ मगला चौथ (किसी मास की मंगलवार को होने वाली चतुर्थी)।

१६ माङ्गल्य – (सुंदर, साधु, बेल, नारियल, दही, सोना, चन्दन, सिंदूर)।

१७ मगली ढोल (विवाह के अवसर पर बजने वाला ढोल)।

१८ मांगलिक वर (शुभ वर)।

१९ मगल छन्द, इसका दूसरा नाम अरुण छन्द है जिसका प्रयोग महाकवि तुलसीदास ने पार्वती मगल में किया है।

२० मन्दिरो म रात के पिछले प्रहर की आरती "मगला आरती कही जाती है और इस समय गाये जाने वाली एक विशेष रागनी के गीतो को 'मगल' कहा जाता है।[1]

२१ शुभकामनाओ के साथ लिखी हुई रचनाओ को भी "मगल' कहा जाता है। यथा मीरा मगल[2] और मरुधर-मगल।[3]

(आ) विवाहलउ, विवाहलो, विवाह —

५५ ३। विवाह शब्द की व्युत्पत्ति वि उपसर्ग, वह धातु और घञ प्रत्यय स मिलकर हुई है। विवाह शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

'दारपरिग्रहे तज्जनके व्यापारे च। उद्वाह शब्दे, उपयम शब्दे चदृश्यम। 'भार्यात्वसम्पादकज्ञानम् विवाह इति उद्वा० रघु भार्यात्वस्वोपलक्षणतया निवेश। तेन नार्यो यात्रय "चरम सस्कारो विजातीय सस्कारो वा विवाह इत्यन्ये।'[4]

१– रावत जी प्रतापसिंहजी, मरुवाणी, जयपुर, वर्ष १, अंक ३।

२– ले० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया, मरुवाणी, जयपुर, वर्ष १, अंक १।

३– ले० नातूराम सस्कर्ता कलायण, श्री शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, पृ० ७४–८७।

४ वाचस्पत्यम, कलकत्ता, भाग ७, पृष्ठ ४९२१।

१४ ३। मंगल का १४ अनेक अर्थ होते हैं—

१. मनोकामना पूरी होना, कल्याण और अभीष्ट सिद्धि होना,

२ सौर जगत का एक ग्रह,

२ सात वारों में से एक वार

४ विष्णु

५ अग्नि (हमीरनाममाला ८१, नागराज डिंगल कोष २७ अवधान नाम माला १२६)

६ डिंगल गीत छन्द का एक प्रकार,

७ मन्दिरों में देवी-देवताओं के पट बन्द करने के लिये व्यवहृत शब्द-प्रयोग जैसे—"पाट मंगल करना।"

८ कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व ईश प्रार्थना,

९ एक प्रकार का घोड़ा जिसके कंठ ललाट और सिर पर भंवरी (चक्र) हो। वह घोड़ा मांगलिक कहा जाता है।

१० शुभ अवसरों पर गेय गीत,

११ रक्त वर्ण-(सूरजप्रकाश कविया करणीदान कृत भाग २, पृ० २१६)

मंगल सम्बन्धी निम्न लिखित शब्द उल्लेखनीय हैं—

१ अष्टमंगल— (सिंह, वृष, नाग, कलश, चामर, वैजयन्ती भेरी और दीपक अथवा ८ प्रकार के मोतियों की माला।

२ मंगल कलश,

३ मंगल पाठ (नान्दी पाठ),

४ मंगल झळ (आग की लपट),

५ मंगलणो (जलना अथवा जलाना),

६ मंगल-धवल (विवाह के गीत)

७, मंगलवाद (आशीर्वाद),

८ मंगलवारी (मंगलवार सम्बन्धी),

९ मगल वेला (शुभ वेला)।

१० मगल सूत्र (शुभ अथवा सुहाग का सूचक आभूषण अथवा सूत्र)।

११ मंगल स्नान (शुभ स्नान)।

१२ मगला (पार्वती, श्वेत दूब, पतिव्रता, देवी, अग्नि हल्दी, विष्णु और प्रात कालीन प्रथम आरती)।

१३ मगलाचरण-मगलाचार-मगलारम्भ।

१४ मगलाव्रत (शिव और पार्वती सम्बन्धी व्रत)।

१५ मगला चौथ (किसी मास की मंगलवार को होने वाली चतुर्थी)।

१६ मांगल्य – (सुन्दर, साधु, बेल, नारियल, दही, सोना, चन्दन, सिंदूर)।

१७ मगली ढोल (विवाह के अवसर पर बजने वाला ढोल)।

१८ मांगलिक वर (शुभ वर)।

१९ मगल छन्द, इसका दूसरा नाम अरुण छन्द है जिसका प्रयोग महाकवि तुलसीदास ने पार्वती मगल में किया है।

२० मन्दिरो म रात के पिछले प्रहर की आरती "मगला आरती' कही जाती है और इस समय गाये जाने वाली एक विशेष रागनी के गीतो को 'मगल' कहा जाता है।[1]

२१ शुभकामनाओ के साथ लिखी हुई रचनाओ को भी "मगल" कहा जाता है। यथा मीरा मगल[2] और मरुधर-मगल।[3]

(आ) विवाहलउ, विवाहलो, विवाह —

५५ ३। विवाह शब्द की व्युत्पत्ति वि उपसर्ग वह धातु और घञ प्रत्यय से मिलकर हुई है। विवाह शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

'दारपरिग्रहे तज्जनके व्यापारे च। उद्वाह शब्दे, उपयम शब्दे चद्दशग्रम। 'भार्यात्वसम्पादकज्ञानम् विवाह इति उद्वा० रघु भार्यात्वस्वोपलक्षणतया निवेश। तेन नान्योन्याश्रय "चरम सस्कारो विजातीय सस्कारो वा विवाह इत्यन्ये।'[4]

१– रावत जी प्रतापसिंहजी, मरुवाणी, जयपुर, वर्ष १, अक ३।

२– ले० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया, मरुवाणी, जयपुर, वर्ष १, अक १।

३– ले० नाथूराम सस्कर्ता कलायण, श्री शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, पृ० ७४–८७।

४ वाचस्पत्यम, कलकत्ता, भाग ७ पृष्ठ ४६२१।

विवाह शब्द का मूल अर्थ वहन करना है। प्राचीन विवाह मगल सज्ञक रचनाओं का रूप 'विवाहलउ' प्राप्त होता है।

(द) वेलि

५६ ३। वेलि शब्द वल्ली अथवा वल्लरी नामक सस्कृत शब्दों से व्युत्पन्न हुआ है। 'वेल' प्रसार की प्रतीक मानी गई है। अतएव अनेक रचनाओं के नाम वसी परक रखे गये है। 'वेल फलदायक भी होती है। इनके वनि काव्य रूपक के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। महाराज पृथ्वीराज ने अपनी काव्य कृति "वलि' का भी रूपक बताया है—

वल्ली तसु बीज भागवत वायो, महि थाणो प्रिथुदास मुख।
मूल ताल जड अरथ मण्डहे, सुथिर करणि चढि छाह सुग।
पत्र अक्खर दल द्वाला जस परिमल, नवरस त तु विधि अहो निसि।
मधुकर रसिक सु भगति मजरी मुगति फूल फल मुगति मिसि॥[1]

वेली को वेल और वलडी भी कहा गया है—

पसरी मुक्ति वेल रूपसी।
गगा वहे इसी छबि गहरी।[2]
विण तरुअर जिमि वेलडी, यठ विना जिम माल।
पुरुष विहूणि पद्मनो, किणी परि ठेलिसी काल॥[3]

वेल का अर्थ समुद्र, सागर, तरग और लहर भी माना जाता है। समुद्र गहराई और विस्तार का द्योतक है—

जिम मधुकर नइ कमलणी, गगा सागर वेल।
लुबधा ढोलउ मारुवी काम कतूहल वेल॥[4]

वेल का एक अर्थ वश भी होता है—

वेल वधो म्हारे बाप री,
ज्यू माळी ज्यू दूब।[5]

---

१ वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, छन्द स० २६१, २६२।

२ सूरज प्रकाश, कविया करणीदान कृत भाग १, पृ० १३७।

३— माधवानल काम कदला प्रब ध, गायकवाड ओरियटल सिरीज विश्वविद्यालय बड़ौदा, पृ० २०६।

४— ढोला मारू रा दूहा स० ५६२।

५ राजस्थानी लोकगीत, भाग १, राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, गणगौर का गीत।

अनेक डिंगल शैली की रचनाएं वेलियो अथवा मिश्र वेलियो गीत नामक छंद में लिखी गई हैं इसलिये भी इन रचनाओं का 'वेलि' नाम सार्थक होता है। यथा—'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, (महाराज पृथ्वीराज कृत) क्रिसनजी री वेल, (कर्मसी सांखला कृत) राजा रायसिंघजी री वेलि, राजा सूरसिंघजी री वेलि (गाडण चोलो रचित), राज कुमार अनूपसिंहजी री वेलि (गाडण वीरभाण रचित), राठौड रतनसी खींवावत री वेल, राठौड देईदास जैतावत री वेल (बारहठ अखाजी भाणोत रचित), राणा उदैसिंघ री वेल (सादू रामाजी रचित) और नाममाला वेल (हमीर नामक कवि द्वारा वि० सं० १७७५ मे रचित कोश ग्रन्थ)।

(इ) हरण

५७ ३। प्राचीन काल में कन्या का विवाह के लिये हरण भी किया जाता था। वीर पुरुष अपनी प्रेमिकाओं अथवा इच्छित कुमारियों को युद्ध मे शक्ति प्रयोग से प्राप्त करते थे। मन्दिरो म दर्शनो के लिए अथवा मेला म मनोविनोद के लिए आयी हुई कुमारियों का भी हरण किया जाता था। अनेक आदिम जातियों में 'हरण' प्रथा आज भी विद्यमान है। भगवान श्री कृष्ण ने रुक्मिणी का और पृथ्वीराज चौहान ने संयोगिता का हरण किया था। अतएव सम्बन्धित विवाह सम्बन्धी अनेक काव्य 'हरण' परक कहे गये हैं।

हरण और अपहरण में मुख्य अन्तर यही है कि हरण बहुधा प्रेमिका की इच्छा और संकेत के अनुसार होता है और अपहरण में स्त्री की अनिच्छा होती है। कृष्ण द्वारा रुक्मिणी की और पृथ्वीराज चौहान द्वारा संयोगिता की प्राप्ति 'हरण' ही कही गई है।

५८ ३। भारतीय भाषाओं में मंगल-काव्य सैकडों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। जानकी-मंगल,[1] पार्वती-मंगल[2] और रुक्मिणी-मंगल[3] जैसे मंगल काव्य से हिन्दी काव्यों मे स्पष्ट होता है कि हिन्दी मे मंगल काव्य के अन्तर्गत मुख्यत विवाह-सम्बन्धी विषय ही लिया गया है। अन्य भारतीय भाषाओं मे मंगल काव्य के अन्तर्गत व्रत कथा, चरित्र स्तुति आदि अनेक विषयों का समावेश हुआ है। उदाहरणार्थ मराठी, कन्नड, तेलगु और आन्ध्र देशीय मंगल-काव्यों का विवरण इस प्रकार है—

(क) मराठी मंगल-काव्य

१ अन्नपूर्णास्तुति कर्ता — मोरोपंत (शक सं० १६५१–१७१६)।
२ हरिहर प्रार्थना, कर्ता— मोरोपंत।
३ गणपति प्रार्थना, कर्ता— मोरोपंत।
४ केकावली, कर्ता— मोरोपंत, आवागमन से मुक्त होने की प्रार्थना।

---

१ व २— कर्ता— गोस्वामी तुलसीदास जी।
३ — कर्ता — विष्णुदास, सूरदास, नन्ददास, आदि।

५ कृष्णस्तुति, कर्ता— मोरोपंत ।
६ गद्यम रामायण, कर्ता— मोरोपंत ।
७ दुर्गास्तवन, कर्ता— मोरोपंत ।
८ व्यंकटेश प्रार्थना, कर्ता— मोरोपंत ।
९ विश्वेश्वर-स्तवन, कर्ता— मोरोपंत ।
१० पांडुरंग स्तुति, कर्ता — मोरोपंत ।
११ अम्बा स्तवन कर्ता— तानाजी देशमुख, संभवत महाराजा शिवाजी के प्रधान सेनापति ।
१२ उग्र काल स्तोत्र कर्ता— रामोपंत, सोलहवी शती ।
१३ वज्रपंजरस्तोत्र, कर्ता— दामोपंत ।
१४ भगवद्गीता स्तोत्र, कर्ता — दामोपंत ।
१५ शीतज्वर-निवारण स्तोत्र, कर्ता— दामोपंत ।
१६ शिव स्तोत्र, कर्ता—दामोपंत ।
१७ करुणाष्टक, कर्ता — रामदास (शक १५३०–१६०३) ।
१८ मनोबोध कर्ता—रामदास, आत्मज्ञान विषयक ।
१९ गणेशाष्टक कर्ता—मध्वमुनि, (शक १६११–१६५६) ।
२० गंगाष्टक, कर्ता—मध्वमुनि ।
२१ त्र्यम्बकाष्टक कर्ता—गोसावी (गोस्वामी ?) नन्दन, (शक १५८० १६५०)
२२ रेणुकाष्टक, कर्ता—गोसावीनन्दन ।
२३ दत्तात्रेयस्तव, कर्ता—वामन १७ वी शती ।
२४ ब्रह्मस्तुति कर्ता—वामन ।
२५ शिव स्तुति, कर्ता—वामन ।
२६ दत्तात्रेयाष्टक कर्ता—नारायण (शक १५६४) ।
२७ महिम्नस्तोत्र, कर्त्ता—नारायण मुनि (संभवत उपरोक्त ही है) ।
२८ देवीअष्टक, कर्ता—बनाजी (ई० १८वी शती) ।
२९ शिवाष्टक, कर्ता—बनाजी ।
३० निरंजनाष्टक, कर्ता—रत्नाकर (ई० १७वी शती) ।
३१ पांडुरंग स्तोत्र, कर्ता—महीपति (१६३७ १७१२ शक) ।
३२ आत्मस्तवराज, कर्ता—माधव (शक १६२५) ।
३३ मल्लारि अष्टक, कर्ता—रंगनाथ, (१७वी शती) ।
३४ मल्लारि स्तोत्र, कर्ता—दादो रंगनाथ ।
३५ महिषासुरमर्दिनी स्तोत्र, कर्ता—विश्वनाथ ।
३६ मार्तण्डाष्टक, कर्ता—रंगनाथ (उपरोक्त ही) ।
३७ विट्ठलस्तुति, कर्ता—अनन्त फंदी (शक १६६६ १७४१) ।

३८ व्यकटाष्टक, स्तोत्रदशक, कर्ता—गिरिआत्मज (शक १६५८)।
३९ वेद स्तुति कर्ता—व्यकटेश और गोविन्द (शक १६५०)।
४० सरस्वती स्तोत्र, कर्ता—गिरधर (ई० १७वी शदी)।
४१ हनुमन्ताष्टक, रचयिता—माणकेश्वर।
४२ सोम सुन्दरस्तोत्र, कर्ता—अज्ञातनामा।[1]

कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी मराठी काव्य एव नाटक—

नरेन्द्र कवि (शक स० ११६० १२५०) भास्कर कवीश्वर, मुनि कृष्णदास श्रीधर स्वामी, मोरोपन्त, विठठल, एकनाथ, सामराज, जयराम स्वामी, चिन्तामणि (रुक्मिणी हरण नाटक, र०का•ई०स०१६७५ से पूर्व), तार्किकसिंह (रुक्मिणी परिणय नाटक), चूडामणि राज दीक्षित (रुक्मिणी कल्याण) सरस्वती निवास रुक्मिणि नाटक) और वरद कवि (रुक्मिणी परिणय नाटक) आदि अनेक कवियो तथा नाटककारो ने लिखे।[2] उक्त रचनाओ म से एकनाथ का रुक्मिणी स्वयवर और सामराज का रुक्मिणी हरण मुख्य है।[3]

(ख) कन्नड-मगल-काव्य

१ महिम्न स्तोत्र,
२ मल्हण स्तोत्र,
३ अनामय स्तोत्र
४ भृगिस्तव
} गुरुदेव, (वीर शैव कवि) सन् ११५०।

५ चन्द्रनाथाष्टक, मौक्तिक कवि, (जैनकवि) सन् ११२०।
६ जिन स्तुति कल्याण कीर्ति, सन् १५३६।
७ त्रैलोक्य चूडामणि स्तोत्र, ब्रह्मसिव, सन् ११२५।
८ देवी स्तोत्र, गुरुसिद्ध अर्थात इम्मडि मुरिगेच्च स्वामी सन् १५६०।
९ नन्दी माहात्म्य, गोविन्द, (ब्राह्मण कवि) सन् १६५०।
१० उमा स्तोत्र या त्रिपुर-सुन्दरी स्तोत्र, गुरुनज, सन् १५००।
११ नरसिह स्तुति, पतियण्ण, सन् १७००।
१२ पपा, विरूपाक्ष शतक विजयनगर के राजाओ का कुलदेव हरिपूरग सन् १६५०।
१३ पार्वतीय सोवाने रामचन्द्र कवि, सन् १७००।
१४ रगनायक रगनायकि, स्तुति (मगलदेवता) चित्रकुपाध्याय सन् १६७२।

१– भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, आगरा, जनवरी १९५९।
२– डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, वेलि क्रिसन रुक्मिणि री, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर, भूमिका, पृ० १६२ १६४।
३– वही, पृ० १६४ १७३।

१५ अम्बिका विजय, आदि शक्ति देवी ने रक्तबीजासुर का वध किया। इसी घटना की कथा इसमें वर्णित है। बखूर रंग, सन् १७५०।
१६ अम्बा स्तोत्र, महान्तदेशिक, १६ वी सदी।
१७ गणाष्टक, महान्तदेशिक, १६ वी सदी।
१८ रेणुकाष्टस्तोत्र, महान्तदेशिक १६, वी सदी।
१९ प्रचण्ड कावेरी माहात्म्य, मुम्मडि कृष्णराज, (मैसूर के नरेश) सन् १७४९ से १८६४।
२० देवी माहात्म्य सप्तसती, (मार्कण्डेय पुराण की कथा) मुम्मडि कृष्णराज, सन् १७४९ से १८६४।
२१ उषा परिणय, मुम्मडि कृष्णराज।
२२ सात्विक परिणय मुम्मडि कृष्णराज, सन् १७४९ से १८६४।
२३ जिनेश्वराष्टक, ? सन् १३००।
२४ अनन्त जिनेश्वराष्टक, ? सन १५००।
२५ अनन्तेन मनेय लाली तिरुमल वेंकटरमण की पत्नी लक्ष्मीदेवी की लोरियाँ श्रीमती चेलुवाबे, सन् १७२५।
२६ तुलाकावेरी माहात्म्य, (आग्नेय पुराणोक्त) श्रीमती चेलुवाबे, सन् १७२५।
२७ अष्टोत्तर शत मंगल गीतावली, गिरिभट्टरतम्मटय १६ वी सदी।
२८ कावेरी पुराण गोरूर नरसिंहाचार्य, १६ वी सदी।
२९ कावेरी माहात्म्य, रंगय्य (मैसूर नरेश के सेनापति) सन् १७२०।
३० गिरिजा देवी सहस्रनाम, (पार्वती की स्तुति) शाङ्गार देशिक, सन् १६५०।
३१ शङ्कराष्टक, नंजुड, (देवलपुर) सन् १८४१।
३२ त्रिलोक्य रत्नामणि स्तोत्र, ?, सन् १३००।
३३ देवी माहात्म्य (अत्यधिक प्रचलित ग्रंथ) । संस्कृत देवी माहात्म्य का अनुवाद। इसमें ७१८ पद्य और १८ सर्ग है। चिदानंदावधूत (ब्राह्मण कवि)।
३४ बगलाम्बा स्तोत्र, (सिद्ध पर्वत निवासिनी अम्बा का स्तोत्र चिदानंदावधूत, सन् १७५०।
३५ पार्वती स्तुति, ? सन् १६५०।
३६ गिरिजा कल्याण, (गिरिजा विवाह) सन् १३८०।
३७ प्रभावती परिणय अलिय लिंगराज, सन् १८२३ १८७४।
३८ गिरिजा कल्याण, अलिय लिंगराज सन् १८२३ १८७४।
३९ जानकी परिणय, सूर्यनारायण, १६ वी सदी।
४० पद्मावती परिणय, बालाचार्य, १६ वी सदी।
४१ मीनाक्षी कल्याण, (मंगल) इड्गूरु रुद्रकवि, १६ वी सदी।
४२ रुक्मिणी परिणय, सो० आर० चेलम्म, १६ वी सदी।
४३ रुक्मिणी परिणय, ए० श्रीनिवास सुब्रमण्यर १६ वी सदी।

४४ सीता कल्याण, श्रीमनो हेनवन कट्टे गिरिराव्वा, सन् १७५० ।
४५ सीता कल्याण, गेरसावे शातय्य सन् १८३० ।
४६ रेणुका माहात्म्य, यल्लो गुडडा कुलकर्णी, २० वी सदी ।
४७ रेणुका माहात्म्य, गु० भी० नामसेवी, २० वी सदी ।
४८ बनशकरी माहात्म्य, (स्कंध पुराण क आधार पर) गलगनाथ, २० वी सदी ।[1]

(ग) तेलुगु मगल-काव्य

१ सर्वेश्वर शतकमु, यथावाक्कुल अ नमय्या, सन् १२४२ ई० के लगभग, कृष्णा नदी के किनारे, सत्रशाला नामक स्थल ।

२ चैनूमल्लु सीममुनु पालकुरिकि सोमनाथ, सन् १३२० ई० के लगभग (समय के बारे में मतभेद है कुछ समालोचकों के अनुसार ११४० ११६६) पालकुरिकि काकतीय गणाग्रो के राज्यकाल में विद्यमान ।

३ वीरनारायण शतकमु रावुरिमजोव कवि, सन् १७३१ ई० भुवनगिरी (तल्गाना) ।

४ रमालिगेश शतकमु अडिदमु सूरकवि, सन् १७१५-८५ ई० विजयनगर, विशाल जिला के आस-पास ।

५ बालसुब्रमहण्य शतकमु वड्डतट्टाकम् नागशास्त्री सन् १७४० के लगभग दक्षिणात्य आंध्र ।

६ सिहाद्रि नारसिह शतकमु गोगुलपाटि कूर्मनाथुडु सन् १७४० विशाख मडल में सिहाचल नामक यात्रा स्थल ।

७ आध्रनायक शतकमु, कासुल पुरुषोत्तम कवि, सन् १७८१ ई०, पेदप्रोलु (कृष्णा जिला) ।

८ रमणीमनोहर शतकमु गगाधर कवि, सन् १८५० ई०

९ ज्ञान प्रसूनाबिका शतकमु शिष्टसव शास्त्री, सन् १८५०, काल हस्ति (त्रिपुर जिले का एक प्रसिद्ध यात्रा-स्थल) ।

१० नदनदन शतकमु वड्डादिमुव्वराय, सन् १८७७ रचनाकाल, जीवन १८५४-१९३८ राजमहेन्द्रवर । गोदावरी नदी के किनारे बसा हुआ है ।

११ कामेश्वरी शतकमु चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्री, सन् १८७०-१९५० कडियमु, (गोदावरी जिला) ।

१२ सूयनारायण शतकमु, अज्ञात, वराहनकट नृसिह कवि ।

१३ विश्वेश्वर शतकमु विश्वनाथ सत्यनारायण, जन्म स०१८९५ विजयवाडा ।

१४ हनुमत्सप्तविंशति, तिनलूरि गोपाल कवि ।

१५ वेंकटाचल विहार शतकमु

---

[1]- भारतीय साहित्य, हिन्दी विद्यापिठ, आगरा विश्व विद्यालय, आगरा जनवरी १९५६ ।

(घ) आन्ध्र के मंगल-काव्य

१ भोगिनी दण्डक, बम्मेर पोतन, १००१-१३८० ई० के मध्य।
२ विघ्नेश्वर दण्डक।
३ श्री राम दण्डक, मादिराजु रामभद्रय्या १६५१-१८७५ ई०।
४ राम दण्डक, प्रादिद सूरन्ना १६५१-१८७५ ई०।
५ नृसिंह दण्डक, वेनुगु लक्ष्मण कवि १६५१-१८७५ ई०।
६ पानरंगा दण्डक।
७ प्राजनेय दण्डक।
८ सूर्यनारायण दण्डक।
९ भास्कर शतक, भास्कर, १००१-१२८० ई० के बीच।
१० श्री काकुलाधनायक।
११ मानस बोध शतक।
१२ सुमती शतक।
१३ कृष्ण शतक।
१४ कुमारी शतक।
१५ भैरव शतक।
१६ दारभाव शतक।
१७ दाशरथी शतक गोपन्ना १६५१-१८७५ ई०।[1]

(ङ) गुजराती मंगल काव्य

१ अष्ट पटराणी नो विवाह, दयाराम।
२ ईश्वर विवाह, गोपीभान।
३ ईश्वर विवाह देवीदास छोटा।
४ ईश्वर विवाह, मुरारि।
५ कानुडा नो विवाह अज्ञात।
६ कृष्ण विवाह, राधा बाई।
७ गोकुलनाथ जी नो विवाह, महीदास।
८ गोपीकृष्ण विवाह, जीवनदास।
९ जानकी विवाह, तुलसीदास।
१० वली नो विवाह अज्ञात।
११ तुलसी नो विवाह अज्ञात।
१२ तुलसी विवाह, गिरधर।

१- भारतीय साहित्य हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, जनवरी १९५९ पृ० सं० १६०-१६१।

१३ तुलसी विवाह, प्रभाशकर ।
१४ तुलसी विवाह, प्रीतम ।
१५ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, हरिदास ।
१६ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, मोनीराम ।
१७ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, प्रेमानन्द (वडा) ।
१८ नरसिंह ना पुत्र नो विवाह, प्रेमान द (छोटा) ।
१९ नागर विवाह, रणछोड ।
२० नाम जती विवाह दयाराम ।
२१ महादेव विवाह, वल्लभ ।
२२ महादेव विवाह, फूद ।
२३ रघुनाथ जो नो विवाह, गोवि-द ।
२४ राधा विवाह, रणछोड ।
२५ राधिका विवाह, राजे कवि ।
२६ राधिका विवाह, द्वारको ।
२७ राम विवाह, इच्छाराम ।
२८ राम विवाह दिवाली बाई ।
२९ राम विवाह प्रभूराम ।
३० रुक्मणी विवाह, त्रिकमदास ।
३१ रुक्मणी विवाह, कृष्णदास ।
३२ रुक्मणी विवाह, गोविन्द दास ।
३३ रुक्मणी विवाह, दयाराम ।
३४ रुक्मणी विवाह, धनजो ।
३५ रुक्मणी विवाह, मुक्तान द ।
३६ रुक्मणी विवाह, रघुनाथ ।
३७ विट्ठलनाथ जी नो विवाह माधवदास ।
३८ विवाह खेल, वल्लभ ।
३९ विवाह खेल, नारायण ।
४० विवाह खेल, उत्तमराम ।
४१ वेणवत्सराज विवाहलउ, अमर, १६०७ लिखित प्रति ।
४२ सामल साह नो विवाह, नरसिंह ।
४३ सामल साह नो विवाह वल्लभ ।
४४ सामलसाह नो विवाह आणार भट्ट ।
४५ शिव विवाह नाकर ।
४६ शिव विवाह छोटम ।
४७ शिव विवाह रणछोड ।

४८ शिव विवाह जग जीवन ।
४९ शिव विवाह, मयाराम ।
५० सत्यभामा विवाह दयाराम ।
५१ सीता विवाह, भालण ।
५२ सूरति विवाह, दयाराम ।
५३ सूरति बाई ना विवाह, धेनाभाई ।
५४ सूरति बाई ना विवाह, धीरो ।
५५ सूरति बाई ना विवाह, निमय राम । [१]

(च) हिन्दी-मंगल-काव्य

१२ १। अन्य भाषाओं की भाँति हिन्दी में भी विवाहमंगल काव्य-लेखन की सुदीर्घ परम्परा रही है और विष्णुदास सूरदास तुलसी तथा नन्ददास आदि अनेक प्रमुख कवियों ने विवाह-मंगल सज्ञक रचनाएं लिखी हैं किन्तु यह काव्य-धारा हिन्दी के साहित्यिक इतिहास-ग्रन्थों में अद्यावधि सर्वथा उपेक्षित रही है। उदाहरण स्वरूप उत्तर भारतीय साहित्य मागरा में हिन्दी मंगल काव्यों का उल्लेख नहीं है और सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्य कोश" [२] के दोनों ही भागों में मंगल-काव्य-रूप का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता। विवाह विषयक काव्यों में भी निम्नलिखित काव्यों का ही परिचय मात्र दिया है—

१ जानकी मंगल, -गो० तुलसीदासजी । [३]
२ पार्वती मंगल -गो० तुलसीदास जी । [४]
३ रामलला नहछू, -गो० तुलसीदास जी । [५]
४ रुक्मिणी मंगल, -विष्णुदास । [६]
५ रुक्मिणी मंगल -नन्ददास । [७]
६ वेलि क्रिसन रुकमिणी री -पृथ्वीराज राठौड़ (स०१६३७)। [८]
७ रुक्मिणी मंगल -नरहरी बंदीजन (स १५६२-१५८५)। [९]
८ रुक्मिणी मंगल -नवलसिंह। (सं० १८७२-१९२७)। [१०]
९ रुक्मिणी परिणय -महाराजा रघुराजसिंह। [११]
१० रुक्मिणी विवाहला -कृष्णदास। (स०१६६२)। [१२]
११ रुक्मिणी मंगल, -हरिनारायण (लि०का० स०१६५४)। [१३]
१२ रुक्मिणी मंगल, -ठाकुरदास (स०१८६४)। [१४]

१- प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा श्री अगरचन्द नाहटा, भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर, पृ० ६०-६२।

२- स० सव श्री धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान) ब्रजेश्वर वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी और रघुवंश (संयोजक) प्रका० ज्ञान-मण्डल लि० वाराणसी।

३- भाग २, पृ० २००। ४- भाग २ पृ० ३१५।

५- भाग २ पृ० ४९१। ६-से १४ - भाग २, पृ० ५०७।

१३ रुक्मिणी मगल, –मानदास, उपनाम कृष्ण जावे । [1]
१४ रुक्मिणी मगल, –रामलाल (लि० का० स० १८६२ लगभग)। [2]
१५ रुक्मिणी मगल, –हरिचन्द द्विजदास, । [3]
१६ रुक्मिणी को ब्याहलो –परम भगत । [4]
१७ स्याम सगाई, –नन्ददास । [5]

१३ १ । उक्त 'हिन्दी साहित्य दान मे अनेक विवाह विषयक एव मगल मलक प्रधान रचनाओ का परिचय नही प्राप्त होता । राजस्थान के मत्स्य जैम छोटे भाग म हुए हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ सर्वेक्षण [6] मे ही इस प्रकार की इस कृतियो का परिचय उपलब्ध होता है । इनका विवरण इस प्रकार है—

(१) जानकी मगल, रामनारायण कृत, पृ० स० १३३, २६६ ।
(२) जानकी मगल, हनुमत कवि, स० १६३४ ।

यह पुस्तक स्वय लेखक न लिपिबद्ध की । इस ग्रन्थ के छन्दों की सख्या २६३ है । कवि नगर निवासी थे, उनका कहना है—"और नगर सब नकत है नगर नगर सुख मौन ।" पृ० ६ ।

(३) पार्वती मगल, रचयिता गुसाई रामनारायण, स० १८३८ ।

पठनार्थ पुजारी नारायण, पत्र स० ३६ । इसी पुस्तक की एक प्रति और भी मिलती है जिसकी पत्र स० ८२ है । यह पुस्तक प० जगन्नाथ जी डीग वाला के अधिकार मे है । प्रति स० १६४७ की लिखी हुई है । पृ० १२४, १३३, १५०, २६६ ।

(४) बलवत जी का विवाह, गणेश कृत, पृ० २०६ ।
(५) महादेवजी को ब्याहलो, रचियता सोमनाथ, सं० १८१३ ।

पत्र सं० ११८ और उल्लास ५ हैं । इसकी शैली ध्रुव विनोद के अनुसार है । महादेव जी के विवाह का वर्णन प्रान्त के जातियो के गीतो के अनुसार है । स्थान स्थान पर प्रकृति वर्णन भी मिलता है । पृ० २६, १२४ १४७, १५० १६८ २६६ ।

(६) राधा मगल, रचियता गोसाई रामनारायण, १८३३ ।

पार्वती मगल और जानकी मंगल की तरह लिखी गई यह पुस्तक एक सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है जिसमे मंगलाचरण भूमिका, गुरु व देवा आत्म परिचय आदि हैं । पुस्तक मे ११ अध्याय हैं । इसमें दिये गये वैवाहिक वर्णन् बहुत सजाव हैं । रामनारायण कामासी का रहने वाला था और यह ग्रन्थ भरतपुर कोतवाली मे लिखा गया था । कवि ने इसकी रचना

---

१ – से ४ हिं० सा० को० भाग २, पृ० ५०७ । ५–वही पृ० ६२७ ।
६ – मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन, ले० डा० मोतीलालजी गुप्त, प्र० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

माल 'बतीस बहुरि उनीस' लिखा है। पृ० स० ६, १२४, १३१, १४३, १४४, १४५,१६९, २६१, २९६।

(७) रुक्मिणी मगल, पृ० २६६।
(८) विनयसिंह जी की पुत्री का विवाह, रामलाल कृत, पृ०स०२०६।
(९) विवाह विनोद रचयिता रामलाल।

विनयसिंह जी की पुत्री बीकानेर के राठौड़ सिरदारसिंह जी के साथ ब्याही गई थी। इस पुस्तक में वैवाहिक कृत्य की बहुत सी बातें हैं। कविता साधारण कोटि की है, "श्री सिरदार महीपती का प्रति हर्षित हुई तनया निज दानी। पृ० स० १७१,२०६,२०७।

(१०) विवाह विनोद, रचयिता गणेश सवत् १८८६।

पुस्तक के केवल ६० पत्र ही मिल सके। महाराज बलवंतसिंह का यह विवाह "डीग के नगर नारे' महलों में भूपति गुरु को सकुटुम्ब बुलाकर दीवान भोलानाथ जी ने सम्पन्न कराया। गुरु विहार के रहने वाले थे। पृ० १७।

१४ १। विवाह-सम्बन्धी प्रधान हिन्दी रचनाओं का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

हिन्दी साहित्य की विवाह-सम्बन्धी प्राचीनतम महत्वपूर्ण रचना नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदे रास' उपलब्ध होती है। अधिकांश विद्वानों ने इस काव्य को हिन्दी के प्रथमकाल की रचना माना है। बीसलदे रास में अजमेर के राजा बीसलदेव का धार के परमार राजा भोज की राजकुमारी राजमती के विवाह का वर्णन है। इस कृति में लोकरीत्यानुसार विवाह का सरस चित्रण है—

माणिक मोती चउक पुराय।
पाव पषाल्या राव का राजमती दोई बीसलराव॥
हुई सोपारी मनि हरष्यो छइ राव। वाजित्र वाजइ नीसाणे घाव॥
गढ माहि गूढी उछली। घरि घरि मगल तारण च्यारि॥[१]
परणवा चाल्यो बीसलराव। पच सखी मिली कलस वदावि॥
मोती का आपा किया। कू कू चदन पाका पान॥
अमली समलो आरती। जाई बघेरइ दिया मिलाण॥[२]

१५ १। महाकवि चन्द कृत पृथ्वीराज रासो में ६९ समय अर्थात् सर्ग हैं इनमें से अनेक सर्ग पृथ्वीराज चौहान के विवाहों से सम्बन्धित हैं जैसे—
१ इछिनी ब्याह कथा, सर्ग सख्या १४।
२ पद्मावती ब्याह कथा सर्ग सख्या २०।

१– बीसलदे रास, ना प्र स०, पृ० ८-६।
२– वही, पृ० १२।

३ पृथा ब्याह कथा, सर्ग सख्या २१।
४ इन्द्रावती ब्याह, सर्ग सख्या ३३।
५ विनय मगल नाम प्रस्ताव, सर्ग सख्या ४५।
६ विनय मगल, सर्ग सख्या ४६।
७ सजोगिता नेम प्रस्ताव, सर्ग सख्या ५०।
८ विवाह सम्यो सर्ग सख्या ६५।

यदि पृथ्वीराज रासो को हिन्दी की प्राचीनतम रचना माना जावे तो हिन्दी का य मे 'मगल'' सज्ञा का प्रयाग "विनय मगल" के रूप म सर्व प्रथम पृथ्वीराज रासो मे ही मिलता है।

पृथ्वीराज रासो मे विभिन्न राजकुमारियो के सौन्दय, नख शिख निरूपण शृगार वर्णन सदेश सेना सहित पृथ्वीराज क आगमन, विरोधी पक्षो से पृथ्वीराज के युद्ध, पृथ्वीराज की विजय, और विवाह आदि क सरस चित्रण हैं। अनेक स्थानो मे पृथ्वीराज न कृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण क आदर्श का अपनाया है, जिसके विषय मे कवि न स्पष्ट रूपण लिखा है—

दूहा— ज्यो रुकमनि कन्हर वरी, उपा वरि सभरि कात।
शिव मडप पच्छिम दिसा, पूजि समय स प्रात ॥४५॥[1]

कवि ने पृथ्वीराज को वासुदेव कृष्ण का अवतार मानते हुए कृष्ण रुक्मिणी विवाह से अनेक विवाह प्रसंगो में प्रेरणा ली है। श्रीमद्भागवत क श्रीकृष्ण रुक्मणी विवाह प्रसग के अनुसार राजकुमारी क विवाह हेतु किसी अन्य राजा से सगाई होना राजकुमारी का पुरोहित अथवा "द्विज' (पक्षी या ब्राह्मण) क साथ पृथ्वीराज को सदेश भेजना, पृथ्वीराज और राजकुमारी के मन्दिर मे मिलन का स्थान निश्चित होना, पृथ्वीराज का मन्दिर से राजकुमारी का हरण करना, विरोधी पक्षो से युद्ध, पृथ्वीराज की विजय और सम्बन्धित राजकुमारी से विवाह आदि क प्रसग सामान्य परिवर्तनों क साथ पृथ्वीराज रासो में चन्द द्वारा चित्रित किये गए हैं। रासो का "पद्मावती समय' उक्त प्रसगो का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

१६ १। भक्तिकाल मे निर्गुण और सगुण दोनो शाखाओ के कवियो न "मगल' रूप म विवाह-वर्णन लिखे हैं। ज्ञानाश्रयी उपशाखा क निर्गुण कवियो ने आत्मा-परमात्मा को एक मानते हुए अद्वैतवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अनेक स्थलो मे इन कवियो ने आत्मा को दुल्हन और परमात्मा का वर क रूप म चित्रित किया है। दुल्हन की भाति आत्मा परमात्मा रूपी वर से विवाह के लिए व्याकुल रहती है। कबीर न मृत्यु को मगलकारी माना

१– पद्मावती विवाह-कथा नागरी प्रचारिणी सभा सस्करण, छन्द स० ४५।

है। मृत्यु के उपरान्त ही आत्मा माया के बंधनों से मुक्त होकर परमात्मा रूपी वर से मिल सकती है—

> जा मरने से जग डरे मो मन बहु आनंद।
> कब मरिहौ कब पाईहौ, पूरण परमानंद॥[1]

कबीर ने आत्मा को सुंदरी के रूप में प्रस्तुत किया है—

> कबीर सुंदरि यों कहै सुणि हो कंत सुजाण।
> वेगि मिलो तुम आइ करि, नहीं तर तजौं पराण।[2]
> दरिया पारि हिंडोलना मेल्या कंत मचाइ।
> सोई नारि सुलषणी, नित पति झूलण जाइ॥[3]

कबीर के नाम से अगाध मंगल नामक कृति भी मिलती है जिसमें योगाभ्यास के साथ आत्मा परमात्मा के मिलन का चित्रण है।[4]

कबीर का अनुसरण करते हुए ज्ञानाश्रयी उपासना के अन्य अनेक निर्गुणी कवियों ने भी आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को वर वधू के रूप में चित्रित किया है।

१७ १। हिन्दी में अनेक सूफी कवियों ने अपने सिद्धांतों के प्रचार हेतु प्रेमाख्यानक काव्यों का निर्माण किया। सूफी सिद्धान्तानुसार ईश्वर को सुन्दरी राजकुमारी के रूप में और बन्दे को राजकुमार के रूप में चित्रित किया गया है। बन्दे के रूप में राजकुमार मार्गदर्शक गुरु के द्वारा ईश्वर रूपी सुन्दरी के रूप-यौवन की प्रशंसा सुनता है तो प्रभावित हो कर सुन्दरी को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। राजकुमारी को प्राप्त करने में अनेक प्रकार की बाधाओं का वर्णन भी किया गया है।

बन्दे के मार्ग में मुख्य बाधा शैतान की होती है। यह बन्दे को भटकाने का प्रयत्न करता है। सच्चा साधक आपत्तियों को सफलतापूर्वक पार करता हुआ सुंदरी रूपी ईश्वर के समीप पहुँच कर उसको प्राप्त करता है।

सूफी कवियों ने उक्त सिद्धान्तों का निरूपण दोहा चौपाई में रचित विवाह सम्बन्धी अवधी काव्यों में किया है। सूफी कवियों में मृगावती (र० का० १५५६) के कर्ता कुतबन मधुमालती (र० का० १५४५) के कर्ता मंझन चित्रावली (र० का० १६१३) के कर्ता उसमान और पद्मावती (र० का० १५६७ लगभग) के कर्ता जायसी प्रमुख है। जायसी ही सूफी मार्गी

१– साखी, सुंदरी को अंग।
२– वही।
३– वही।
४– डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, स० १९५८, पृ० २५०।

हिन्दी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने चित्रकूट (चित्तौड़) के राजा रत्नसिंह का सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती से विवाह, अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण और चित्तौड़ में रत्नसिंह की मृत्यु के पश्चात् पद्मनी के सती होने का सुविस्तृत और सरस निरूपण अपने काव्य में किया है। काव्य के अंत में अपने प्रेमाख्यान के रूपक को आध्यात्मिक बताते हुए इस प्रकार स्पष्ट भी कर दिया है—

> तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
> गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा?
> नागमती यह दुनिया धंधा। बाचा सोई न एहि चित बंधा॥
> राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू॥

१८ १। रामभक्ति शाखा में महाकवि तुलसी (१७वीं वि०) नाभादास (ज० का० सं० १६१२) स्वामी अग्रदास (ज० का० स० १६३२) प्राणचन्द (ज० का० स० १६५७) सेनापति (ज० का० स० १६४६), प्राणचन्द चौहान (स० १६६७) श्रीकृष्ण भट्ट (ज० का० १७६६), महाराज विश्वनाथसिंह (ज० का० स० १७६०), रामगुनाम द्विवेदी (ज० का० स० १८७०) आदि प्रमुख कवि हो गए हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में राम जानकी विवाह का अपनी अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार निरूपण किया है। राम का जानकी से विवाह हेतु प्रतिपक्षियों से किसी प्रकार का युद्ध नहीं करना पड़ा किन्तु स्वयंवर में शिव धनुष को तोड़कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन अवश्य करना पड़ा। राम जानकी विवाह के अवसर पर कोई युद्ध नहीं हुआ, किन्तु राम-जानकी विवाह, राम रावण युद्ध का एक कारण अवश्य बना।

१९ १। रामभक्त कवियों में तुलसीदास का स्थान सर्वोच्च है। तुलसीदास के नाम से ३७ कृतियां उपलब्ध हुई हैं।[1] इन कृतियों में से केवल बारह कृतियां प्रामाणिक मानी गई हैं।[2] *महाकवि तुलसी कृत इन्हीं बारह ग्रंथों का प्रकाशन तुलसी-ग्रंथावली के* अन्तर्गत दो भागों में काशी नागरी प्रचारिणी सभा से किया गया है। तुलसी कृत महाकाव्य 'रामचरित मानस' में प्रसंगानुसार राम जानकी विवाह का सरस वर्णन तो है ही। साथ ही तुलसीकृत 'रामललानहछू', पार्वती मंगल और जानकी मंगल' नामक कृतियों द्वारा महाकवि तुलसी ने हमारे साहित्य की विवाह सम्बन्धी मंगल संज्ञक काव्य परम्परा को पुष्ट प्रदान की है।

रामलला नहछू —

---

१ – डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३६६-७१।
२ – क—रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स २०१२, पृ० १४१।
ख—लाला सीताराम, सलेक्शन्स फ्राम हिन्दी लिटरेचर, भाग ३ पृ० ८ से १६।

२० १। रामलला नहछू के रचना काल के विषय में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

मिथिला में रचना किए, नहछू मंगल दोय।
मुनि प्रांचे मन्त्रित किए, सुख पावें सब कोय ॥[1]

वेणीमाधव दास कृत गोसाईं चरित के अनुसार तुलसीदास की मिथिला यात्रा संवत् १६४० के पूर्व हुई थी। इसलिए रामलला नहछू, का र० का० सं० १६४० से पूर्व निश्चित होता है। यह तुलसी की प्रारम्भिक तथा अपरिमार्जित रचना है। यह विवाह के अवसर पर गाने के लिए लिखी गई है। इसका निर्माण मानस' से बहुत पहले का ज्ञात होता है।

२१ १। रामलला नहछू में कवल बीस छन्द सोहर जाति के हैं। इनमें बारह और दस के विश्राम से २२ मात्राएँ हैं। अवध और बिहार में विवाह के अवसर पर नहछू गाने की परम्परा है। तुलसीदास जी ने इसे वास्तव में विवाह के समय पर नहछू के स्थान पर गाने के लिए बनाया है।[2] इस कृति का उदाहरण निम्न लिखित है—

आज अवधपुर आनन्द नहछू राम क हो।
चलहु नयन भरि देखिय सोभा धाम क हो ॥
गोद लिहे कौसल्या बैठि रामहि वर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आंचर हो ॥[3]

पार्वती मंगल—

२२ १। पार्वती मंगल के रचना-काल के विषय में भी वेणीमाधवदास ने लिखा है—

मिथिला में रचना किए नहछू मंगल दोय।
मुनि प्रांचे मन्त्रित किए, सुख पावें सब कोय ॥[4]

तदनुसार पार्वती मंगल का रचना काल १६४० से पूर्व निश्चित होता है। तुलसीदास ने स्वयं पार्वती मंगल का रचना काल इस प्रकार दिया है—

जय संवत फागुन सुदि पाचे गुरु दिनु।
अस्विनि विरचेउ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु ॥[5]

---

१ – वेणीमाधवदास कृत गोसाईं चरित छन्द सं० ६४।
२ – श्यामसुन्दरदास और डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३१ पृ० ६६।
३ – रामलला नहछू छन्द १३।
४ – गोसाईं चरित्र छन्द सं० ६४।
५ – पार्वती मंगल, छन्द सं० ५।

सुधाकर द्विवेदी और डा० जार्ज ग्रियर्सन ने स० १६४३ का जय सवत् होना लिखा है। [1] इसलिए पार्वती मगल का रचनाकाल भी सवत् १६४३ ही है। यह ग्रन्थ १४८ मगल अर्थात् अरूण छदो मे और १६ हरिगीतिका छदों मे पूर्ण हुआ है अर्थात् इसकी पूर्ण छद सख्या १६४ है। मगल छद में ११ और ६ के विश्राम से २० मात्राए हैं और हरिगीतिका छद म सोलह और बारह प विश्राम स २८ मात्राऐ हैं। पार्वती मगल में ब्राह्मण के वेश में शिवजी द्वारा पार्वती की परीक्षा लेन और शिव-पार्वती के विवाह का रोचक वर्णन है। विवाह सम्बन्धी लौकिक प्रथाओं के चित्रण स काव्य म यथार्थ का समावेश हुआ है। पार्वती मगल की रचना अवधी भाषा म हुई है।

जानकी मगल—

२३ १। वेणीमाधव दास के मतानुसार जानकी मगल की रचना भी सवत् १६४० से पूर्व सभव है।[2] वेणीमाधव दास अपने कथन म स्पष्ट नही है। 'नहछू मगल दोय' से नहछू और मगल दो रचनाओं का भी बोध होता है, ऐसी अवस्था मे मगल मे तात्पर्य जानकी मगल लिया जाय अथवा पार्वती मगल यह निश्चित नही होता। नहछू मगल दोय से नहछू और दोनो मगल अर्थात् पार्वती मगल व जानकी मगल लेने पर ही स्पष्ट अर्थ का बोध होता है। डा० रामकुमार वर्मा न जानकी मगल के रचनाकाल के विषय मे लिखा है "जानकी मगल और पार्वती मगल सम्पूर्ण सादृश्य रखन के कारण एक ही काल की रचनाए मानी जानी चाहिए। कथा शैली और वर्णन शैली तथा छद प्रयोग मे दोनो समान हैं। अत जानकी मगल की रचना भी सवत् १६४३ मे माननी चाहिए। [3] यह आवश्यक नहीं है कि कोई कवि सादृश्य रखने वाली रचनाए एक ही समय मे करे। ऐसी अवस्था में डा० वर्मा का मत युक्ति संगत नहीं लगता।

२४ १। जानकी मगल में राम और जानकी का विवाह १९२ अरुण अर्थात् मगल छदो में और २४ हरिगीतिका छदो में अर्थात् २१६ छदों मे वर्णित है। इसमें चार मगल छदों के उपरान्त एक हरिगीतिका छद का क्रम रखा गया है। पार्वती मगल की कथा मानस में वर्णित शिव पार्वती विवाह प्रसग मे नही मिलती उसी प्रकार जानकी मगल और मानस के राम जानकी विवाह प्रसग में भी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। मानस की भांति जानकी मगल म पुष्पवाटिका प्रसग जनकपुर वर्णन और लक्ष्मण के दर्प का निदर्शन नही है। साथ ही परशुराम का आगमन भी मानस की भांति सभा म नही बताकर बरात के लौटते समय मार्ग में बताया गया है। जानकी मगल की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण क अनुरूप है।

---

१ – इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग २२ (१८९३ ई०), पृ० १५-१६।

२ – मूल गोसाईं चरित् छद स० ६४।

३ – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, सवत् १९५८, पृ० ३७८।

२५ १। तुलसीदास ने रामचरित मानस में प्रसंगानुसार शिव पार्वती विवाह और राम जानकी विवाह वर्णन् का समावेश किया है।[1] मानस को विवाह-प्रधान काव्य नहीं कहा जा सकता किन्तु इसमें आया हुआ राम जानकी विवाह वर्णन किसी स्वतंत्र रचना से कम नहीं है। कवि ने पुष्पवाटिका प्रसंग का समावेश कर नायक नायिका में पूर्वानुराग प्रदर्शित किया है। धनुष भंग के प्रसंग में नायक की शक्ति का प्रदर्शन भी समुचित रूप से हुआ है। महाकवि तुलसी ने भगवान राम के द्वारा रावण और परशुराम जैसे शूरवीरों का गर्व खण्डन जनक की सभा में बताकर मौलिक सूझ का परिचय दिया है।

२६ १। कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने कृष्ण भक्ति के सिद्धान्तानुसार श्रीकृष्ण के बालरूप वर्णन को प्रधानता दी है। इन कवियों ने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं अर्थात् शकटासुर वत्सासुर अघासुर धेनुकासुर प्रलम्भासुर, और कंस वध सम्बन्धी लीलाओं के साथ ही पूतना वध कालीय दमन गोवर्धन धारण रासलीलादि प्रसंगों को ही विशेष महत्व दिया है। श्रीकृष्ण ने सोलह हजार एक सौ आठ विवाह किये थे किन्तु सभी गोकुल छोड़ने के पश्चात् ही इसलिए कृष्णभक्ति सम्प्रदाय के कवि इन विवाहों का विस्तृत निरूपण करने का अवसर नहीं प्राप्त कर सके।

२७ १। श्रीमद्भागवत में प्रसंगानुसार श्रीकृष्ण के विवाहों का उल्लेख है और श्रीमद्भागवत ही कृष्ण भक्त कवियों का प्रधान प्रेरणा स्रोत है इसलिए कतिपय कवियों ने श्रीकृष्ण के विवाहों और उनकी पटरानियों के विषय में मंगल अवश्य दिये हैं।

२८ १। श्रीमद्भागवत के आधार पर ब्रजभाषा में भक्ति परक काव्य रचना करने वाले प्रथम कवि विष्णुदास हुए जिन्होंने सूरदास के जन्म से पचास वर्ष पूर्व और वल्लभाचार्य के वृन्दावन आगमन के नब्बे वर्ष पूर्व अपनी रचनायें प्रस्तुत की। अब तक हमारे साहित्यिक इतिहासकार वल्लभाचार्य और सूरदास को ही ब्रजभाषा में काव्य लेखन प्रारम्भ करने कराने का श्रेय देते रहे हैं। विष्णुदास की कृतियां इस प्रकार हैं – (१) महाभारत कथा (२) रुक्मिणी मंगल (३) स्वर्गारोहण और (४) स्नेहलीला (भ्रमरगीत)। विष्णुदास द्वारा प्रारम्भ की गई मंगलकाव्य और भ्रमर गीत प्रसंग लेखन परम्परा का अनुसरण सूरदास तथा नन्ददास आदि कृष्ण भक्तों ने ही नहीं किया अपितु आंशिक रूप में महाकवि तुलसी ने भी किया। विष्णुदास ग्वालियर नरेश डूंगरेन्द्रसिंह (राज्यारोहणकाल १४८१ वि०) के समकालीन थे और इनका रचनाकाल वि०सं० १४९२ है।[2]

२९ १। कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास प्रमुख हैं। सूरदास की महान् रचना सूरसागर है जिसमें श्रीमद्भागवत के आधार पर ब्रजभाषा पद्यों में श्रीकृष्ण का आख्यान वर्णित है। सूरदास की एक कृति 'ब्याहलो' भी उपलब्ध हुई है।[3] ब्याहलो का पद्य संख्या २३ है किन्तु इस कृति की प्रामाणिकता नहीं सिद्ध होती।

---

१ – बालकाण्ड।

२ – काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट, सन् १९१२-१४ पृ० २५२।

३ – वही सन् १९०६-८, पृ० ३२३।

३० १। "सूरसागर" में श्रीमद्भागवत का आधार ग्रहण किया गया है किंतु श्री कृष्ण सम्बन्धी प्रसगों को ही विस्तार दिया गया है। उदाहरण स्वरूप प्रथम और षष्ठ स्कन्धो मे श्रीकृष्ण सम्ब धी कथा नही है इसलिए इनमे केवल चार चार पद हैं। सूरसागर के दशम स्क ध मे कृष्णाख्यान का समावेश है इसलिए इसके पूर्वार्द्ध म ३४६४ पद और उत्तरार्ध में १३८ पद हैं। पूर्वार्द्ध मे अधिक पद सख्या का कारण यह है कि वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित सूरदास बाल श्रीकृष्ण के उपासक थे जिनके चरित्र का समावेश इस दशम सर्ग के पूर्वार्द्ध मे हुआ है। उत्तरार्द्ध मे द्वारिका गमन से अ त तक का श्रीकृष्ण का चरित्र है जिसका वर्णन सक्षिप्त रूप में हुआ है। दशम सर्ग के उत्तरार्द्ध मे ही श्रीकृष्ण के अनेक विवाहो का वर्णन किया गया है, जिनमे रुक्मिणी विवाह पर आधारित 'रुक्मिणी मगल" मुख्य है।

३१ १। वल्लभ सम्प्रदाय के अन्तर्गत गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अष्टछाप नामक कवि मण्डल की योजना की। अष्टछाप मे सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्द दास, कुम्भनदास, चतुर्भुज दास छीतस्वामी और गोविन्द स्वामी का समावेश किया। नन्ददास ने "रुक्मिणी मगल" नामक कृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक काव्य लिखा। इसमे ६० पद्यो का समावेश हुआ है।[1] नन्ददास की विवाह विषयक अन्य रचना ६३ पद्य परक 'श्यामा श्याम सगाई' है। इस रचना में श्यामा और श्याम की सगाई का वर्णन है।[2]

३२ १। अकबर के दरबार मे नरहरि बन्दीजन नामक कवि थे जिनका रचित "रुक्मिणी मगल' प्राप्त होता है। कालान्तर में अनेक कवि विवाह मगल सज्ञक काव्य लिखते रहे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थ सर्वेक्षण, शिवसिंह सरोज, मु शी देवीप्रसाद, जोधपुर के लेखो और डा० ग्रियर्सन के "माडन वर्नाकूलर लिटरेचर आदि के आधार पर प्रस्तुत मिश्रब धु विनोद" के अनुसार हिन्दी एव राजस्थानी विवाह मगल सज्ञक रचनायें इस प्रकार हैं–

१ अगाध मगल, कबीर, कवि सख्या (ऊ १५८)।[3]
२ अनिरुद्ध विवाह, फलचन्द्र, कवि स० (२२३०)।[4]
३ अनिरुद्ध स्वयवर, फलचद, कवि संख्या (ज०पू० २ ४३)।[5]
४ आदिमगल, महाराजा विश्वनाथसिंह, कवि स० (१७८४ १)।[6]
५ आनन्द मगल, मनीराम कवि स० (छ २६०)[7]
६ उषा अनिरुद्ध, रामदास, कवि स० (६७६ १)।[8]

१—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट १६१२,१३,१४, १६०६,७ व ८ और १६१७,१८ व १६।
२—वही। ३—पहला भाग, पृ० २२०।
४—तृतीय भाग, पृ० १२२५। ५—प्रथम भाग पृ० ८।
६—तृतीय भाग पृ० १०२३। ७—प्रथम भाग १२।
८—द्वितीय भाग पृ० ६१६।

२७ पार्वती मगल, अयोध्यानाथ शर्मा, कवि स० (४४४०)। [1]

२८ व्याहलो, ध्रुवदास, कवि सख्या (२७६)। [2]

२९ व्याहलो, रसिक बिहारी दास, कवि स० (३७४)। [3]

३० व्याह विनोद, गणेश कवि स० (२०२८ १)। [4]

३१ बना, रघुवरशरण, कवि स० (२३०२ २)। [5]

३२ बाल विवाह खगबहादुर, कवि स० (२२४१)। [6]

३३ भवानी मगल, चतुर्भुजदास स्वामी, कवि स० (३८४६)। [7]

३४ मगल, कृष्णदास कवि स० (६८८)। [8]

३५ मगल, लालूदास स्वामी, कवि स० (१११ १)। [9]

३६ मगल पचासा जवाहिरसिंह कायस्थ, कवि स० (१२६७)। [10]

३७ मगल मुहूर्त, रामानद शर्मा, कवि स० (४४६१)। [11]

३८ मगलेश बदरीनारायण चौधरी, कवि स० (२३४३)। [12]

३९ मगलसार, स्वामी चतुर्भुजदास (अष्ट छाप वाले नही) कवि स० (२८०)। [13]

४० मगलशतक, रामसखे, कवि स० (८६०)। [14]

४१ मगलशतक, त्रिलोचन झा कवि स० (३७४०)। [15]

४२ युगल मगल स्तोत्र, बदरीनारायण चौधरी, कवि स० (२३४३)। [16]

४३ रुक्मिणी जी री व्याहला, पदम भगत, कवि स० (२४६)। [17]

४४ रुक्मिणी मगल, मिहिरचद, कवि स० (३३८ १)। [18]

४५ रुक्मिणी हरण, चक्रपाणि व्यास, कवि स० (३६ २)। [19]

४६ रुक्मिणी मगल, हीरालाल कायस्थ। [20]

४७ रुक्मिणी मगल, हित रामकृष्ण कवि स० (७४७)। [21]

४८ रुक्मिणी हरण, महाराजा रामसिह जी, कवि स० (६०० ३)। [22]

---

१ – चतुर्थ भाग, पृ० ६०३।
२ – द्वितीय भाग, पृ० ४०१।
३ – द्वितीय भाग, पृ० ४५६।
४ – तृतीय भाग, पृ० ११०२।
५ – तृतीय भाग, पृ० ११८८।
६ – तृतीय भाग, पृ० १२२८।।
७ – चतुर्थ भाग, पृ० ३११।
८ – द्वितीय भाग पृ० ८०६।
९ – पहला भाग, पृ० ३३४।
१० – द्वितीय भाग, पृ० ६६४।।
११ – चतुर्थ भाग, पृ० ६०१।
१२ – तृतीय भाग, पृ० १२४८।
१३ – [द्वि]तीय भाग, पृ० ४०२।
१४ – द्वितीय भाग, पृ० ७५०।
१५ – चतुर्थ भाग, पृ० २६०।
१६ – तृतीय भाग, पृ० १२४८।
१७ – पहला भाग, पृ० ४४१।
१८ – पहला भाग पृ० ४००।
१९ – पहला भाग, पृ० २४२।
२० – पहला भाग, पृ० ४२८।
२१ – द्वितीय भाग, पृ० ६८५।
२२ – चतुर्थ भाग, पृ० ५२।

२७ पार्वती मगल, अयोध्यानाथ शर्मा, कवि स० (५४०) ।[1]

२८ व्याहलो, ध्रुवदास, कवि संख्या (२७६) ।[2]

२९ व्याहलो, रसिक बिहारी दास, कवि स० (३७४) ।[3]

३० व्याह विनोद, गणेश कवि स० (२०२८ १) ।[4]

३१ बना, रघुवरशरण, कवि स० (२३०२ २) ।[5]

३२ बाल विवाह खगबहादुर, कवि स० (२२४१) ।[6]

३३ भवानी मगल, चतुर्भुजदास स्वामी, कवि स० (३८४६) ।[7]

३४ मगल, कृष्णदास कवि स० (६८८) ।[8]

३५ मगल, लालूदास स्वामी, कवि स० (१११ १) ।[9]

३६ मगल पचासा जवाहिरसिंह कायस्थ, कवि स० (१२६७) ।[10]

३७ मगल मुहूर्त, रामानन्द शर्मा, कवि स० (४४६१) ।[11]

३८ मगलेश, बदरीनारायण चौधरी, कवि स० (२३४३) ।[12]

३९ मगलसार, स्वामी चतुर्भुजदास (अष्ट छाप वाले नहीं) कवि स० (५८०) ।[13]

४० मगलशतक, रामसखे, कवि स० (८६०) ।[14]

४१ मगलशतक, त्रिलोचन झा कवि स० (३७६०) ।[15]

४२ युगल मगल स्तोत्र, बदरीनारायण चौधरी, कवि स० (२३४३) ।[16]

४३ रुक्मिणी जी रो व्याहला, पदम भगत, कवि स० (२४६) ।[17]

४४ रुक्मिणी मगल, मिहिरचद, कवि स० (३३८ १) ।[18]

४५ रुक्मिणी हरण, चक्रपाणि व्यास, कवि स० (३९ २) ।[19]

४६ रुक्मिणी मगल, हीरालाल कायस्थ ।[20]

४७ रुक्मिणी मगल, हित रामकृष्ण कवि स० (७४७) ।[21]

४८ रुक्मिणी हरण, महाराजा रामसिंह जी, कवि स० (६०० ३) ।[22]

---

१ – चतुर्थ भाग, पृ० ६०३ ।
२ – द्वितीय भाग, पृ० ४०१ ।
३ – द्वितीय भाग, पृ० ४५६ ।
४ – तृतीय भाग, पृ० ११०२ ।
५ – तृतीय भाग, पृ० ११९८ ।
६ – तृतीय भाग, पृ० ११९८ ।।
७ – चतुर्थ भाग, पृ० ३११ ।
८ – द्वितीय भाग, पृ० ८०६ ।
९ – पहला भाग, पृ० ३३४ ।
१० – द्वितीय भाग, पृ० ६६४ ।
११ – चतुर्थ भाग, पृ० ६०६ ।
१२ – तृतीय भाग, पृ० १२४८ ।
१३ – द्वितीय भाग, पृ० ४०२ ।
१४ – द्वितीय भाग पृ० ७२० ।
१५ – चतुर्थ भाग, पृ० २६० ।
१६ – तृतीय भाग, पृ० १२४८ ।
१७ – पहला भाग, पृ० ८४१ ।
१८ – पहला भाग पृ० ४०० ।
१९ – पहला भाग, पृ० २४२ ।
२० – पहला भाग, पृ० ४२८ ।
२१ – द्वितीय भाग पृ० ६८५ ।
२२ – चतुर्थ भाग, पृ० ५२

७ उषा हरण, हरनाथ झा, कवि सं० (२२१७)।[१]

८ उषा परिणय, भारतशाह, कवि सं० (छ-१८८)।[२]

९ कृष्ण विवाह उत्कण्ठा, श्रीहरिगुरु रामदासजी, कवि सं० (७२९)।[३]

१० गुणविजय विवाह, मुरारीराम (राम), कवि सं० (१६१४)।[४]

११ गौरा परिणय नाटक, जाग झा मैथिल कवि सं० (१०३०)।[५]

१२ गौरी स्वयंवर भगवानदास कवि सं० (१३२०)।[६]

१३ जानकी जू को विवाह मणिमंडन मिश्र कवि सं० (३५८)।[७]

१४ जानकी जू को मंगलाचरण, रघुवर शरण, कवि सं० (छ-३०६ग)।[८]

१५ जानकी मंगल अयोध्यानाथ शर्मा कवि सं० (४४४०)।[९]

१६ जानकी मंगल रामनाथ कवि सं० (२०८७)।[१०]

१७ जानकी मंगल, शीतलाप्रसाद तिवारी, कवि सं० (२५७८)।[११]

१८ जानकी मंगल, परमानन्द प्रधान, कवि सं० (छ प १ ७९)।[१२]

१९ जानकी स्वयंवर हनुमान प्रसाद वैद्य कवि सं० (४०६२)।[१३]

२० जानकी स्वयंवर, ठाकुरप्रसाद, कवि सं० (२४५२)।[१४]

२१ द्रौपदी स्वयंवर, रामजी शर्मा, मथुरानी कवि सं० (४७६६)।[१५]

२२ धनुष भंग मन्न द्विवेदी कवि सं० (१८६१)।[१६]

२३ धनुष यज्ञ रामनाथ प्रधान कवि सं० (१२४५)।[१७]

२४ धनुष यज्ञ, (नाटक) शिवबालकराम पांडे, कवि सं० (४०५८)।[१८]

२५ नेमिनाथ राजल विवाह विनोदीलाल, कवि सं० (५८२ १)।[१९]

२६ पार्वती परिणय, सदाशिव दीक्षित कवि सं० (४२१८)।[२०]

---

१ – तृतीय भाग पृ० ११३५।
२ – पहला भाग पृ० १७।
३ – द्वितीय भाग, पृ० ६६०।
४ – तृतीय भाग, पृ० १०७६।
५ – द्वितीय भाग, पृ० ८१६।
६ – तृतीय भाग, पृ० १२४१।
७ – द्वितीय भाग पृ० ४८३।
८ – पहला भाग, पृ० ५३।
९ – द्वितीय भाग पृ० ६०३।
१० – तृतीय भाग, पृ० १२३४।
११ – तृतीय भाग, पृ० १३११।
१२ – पहला भाग, पृ० ६।
१३ – द्वितीय भाग, पृ० ८३३।
१४ – तृतीय भाग, पृ० १२६५।
१५ – द्वितीय भाग, पृ० ५१४।
१६ – चतुर्थ भाग, पृ० ३४५।
१७ – द्वितीय भाग, पृ० ६२६।
१८ – चतुर्थ भाग पृ० ४३२।
१९ – द्वितीय भाग पृ० ५१५।
२० – चतुर्थ भाग पृ० ४६८।

२७ पार्वती मंगल, अयोध्यानाथ शर्मा, कवि स० (४४४०) ।[1]

२८ ब्याहलो, ध्रुवदास, कवि सख्या (२७६) ।[2]

२९ ब्याहलो, रसिक बिहारी दास, कवि स० (३७४) ।[3]

३० ब्याह विनोद, गणेश कवि स० (२०२८ १) ।[4]

३१ बना, रघुवरशरण, कवि स० (२३०२ २) ।[5]

३२ बाल विवाह खगबहादुर, कवि स० (२२४१) ।[6]

३३ भवानी मगल, चतुर्भुजदास स्वामी, कवि स० (३८४६) ।[7]

३४ मगल, कृष्णदास कवि स० (६८८) ।[8]

३५ मगल, लालूदास स्वामी, कवि स० (१११ १) ।[9]

३६ मगल पचासा, जवाहिरसिंह कायस्थ, कवि स० (१२६७) ।[10]

३७ मगल मुहूत, रामानन्द शर्मा, कवि स० (४४६१) ।[11]

३८ मगलोत्सव, बदरीनारायण चौधरी, कवि स० (२३४३) ।[12]

३९ मगलसार, स्वामी चतुर्भुजदास, (भ्रष्ट छाप वाले नही) कवि स० (२८०) ।[13]

४० मगलशतक, रामसखे, कवि स० (८६०) ।[14]

४१ मगलशतक, त्रिलोचन झा कवि स० (३७४०) ।[15]

४२ युगल मगल स्तोत्र, बदरीनारायण चौधरी, कवि स० (२३४३) ।[16]

४३ रुक्मिणी जी री ब्याहलो, पदम भगत, कवि स० (२४६)।[17]

४४ रुक्मिणी मगल, मिहिरचद, कवि स० (३३८ १) ।[18]

४५ रुक्मिणी हरण, चक्रपाणि व्यास, कवि स० (३६ २) ।[19]

४६ रुक्मिणी मगल, हीरालाल कायस्थ ।[20]

४७ रुक्मिणी मगल, हित रामकृष्ण कवि स० (७४७) ।[21]

४८ रुक्मिणी हरण, महाराजा रामसिंह जी, कवि स० (६०० ३) ।[22]

---

१ – चतुर्थ भाग, पृ० ६०३ ।
२ – द्वितीय भाग, पृ० ४०१ ।
३ – द्वितीय भाग, पृ० ४५६ ।
४ – तृतीय भाग, पृ० ११०२ ।
५ – तृतीय भाग, पृ० ६६८ ।
६ – तृतीय भाग, पृ० १२२८ ।।
७ – चतुर्थ भाग, पृ० ३११ ।
८ – द्वितीय भाग पृ० ८०६ ।
९ – पहला भाग, पृ० ३३४ ।
१० – द्वितीय भाग, पृ० ६६४ । ।
११ – चतुर्थ भाग, पृ० ६०६ ।
१२ – तृतीय भाग, पृ० १२४८ ।
१३ – द्वितीय भाग, पृ० ४०२ ।
१४ – द्वितीय भाग, पृ० ७५० ।
१५ – चतुर्थ भाग, पृ० २६० ।
१६ – तृतीय भाग, पृ० १२४८ ।
१७ – पहला भाग, पृ० ४४१ ।
१८ – पहला भाग, पृ० ४०० ।
१९ – पहला भाग, पृ० २४२ ।
२० – पहला भाग, पृ० ४२८ ।
२१ – द्वितीय भाग पृ० ६८५ ।
२२ – चतुर्थ भाग, पृ० ५२ ।

६० श्री जानकी स्वयवर, ठाकुरदास, कवि स० (२३६८)।[1]

६१ प्रियासखी जी की गारी, प्रिया सखी, बखत कुवरि महारानी, कवि स० (६३४)[2]

६२ प्रतिपाल-परिणय लक्ष्मणसिंह प्रधान, कवि स० (११६१)।[3]

६३ राधा—मगल, रसिक सुन्दर।[4]

३३ १। हस्तलिखित ग्रथो की नवीन खोज में प्राप्त हुई विवाह—मगल सज्ञक
जस्थानी रचनाए इस प्रकार हैं—

राजस्थानी विवाह मगल काव्य

१ अजित विवाहलउ गाथा ३२, मेरुनन्दन, १५ वी शती।

२ अढारह नाता विवाहलो, हीरानन्द सूरि, १५ वी शती।

३ आदिनाथ विवाहलो, गा० २४५, नीबो, स १६७५ के पूर्व।

४ आदिनाथ विवाहलो गा० १५, क्षेमराज, जैसलमेर भडार, १६वी शती।

५ आदिनाथ विवाहलो, ऋषभ, १७ वी शती।

६ आदिनाथ विवाहलो, गा० २५, रतनचन्द्र, १६वी शती।

७ आर्द्रकुमार विवाहलउ, गा० ४६, सेवक १६वी शती।

८ आर्द्रकुमार विवाहलउ, गा० २५, देपाल, १६ वी शती, सभव है उक्त दोनों रचनाए एक ही हैं।

९ आर्द्रकुमार विवाहलउ, गा० २४, अज्ञात।

१० उदयनन्दिसूरि विवाहलउ, गा० २७, अज्ञात, जसविजयजी सग्रह १६ वी शती।

११ ऋषभदेव विवाह—धवळ, सेवक, १६ वीं शती।

१२ ऋषभदेव विवाह धवल, गा० २७६, श्रीदेव, १६ वी शती।

१३ अन्तरग विवाह, जिनप्रभ सूरि, १४ वी शती।

१४ कीर्तिरत्न सूरि विवाहलो, गा० ५४ कल्याणचन्द्र, १५ वी शती।

१५ कयवन्ना विवाहलो गा० १५, देपाल, १५ वी शती

१६ कृष्ण विवाहलउ, हरदास, १८ वीं शती।

१– तृतीय भाग पृ० १२८६। २ –द्वितीय भाग, पृ० ५०१।

३ – द्वितीय भाग, पृ० ८३१। ४ – प्रथम भाग पृ० ६२।

१७ गुणरत्न सूरि विवाहलो गा० ५०, पद्म मंदिर, १६ वी शती।
१८ चन्द्रप्रभ विवाहलउ, गा० ४१, उदयवर्धन, १६८४।
१९ जबू अन्तरग विवाहलो, गा० ६३, सहजसुन्दर, १५७२।
२१ जम्बूस्वामी विवाहलो, गा० १५, अज्ञात।
२० जम्बूस्वामी-विवाहलो, गा० ३५ हीरानद सूरी, स० १४८५।
२२ जिनचन्द्र सूरि विवाहलो, गा० ३५, सहजज्ञान, स० १४०६।
२३ जिनेश्वरसूरि विवाहलो, गा० ३३, सोममूर्ति, स० १३३१।
२४ जिनोदयसूरि विवाहलो, गा० ४४, मेरुनंदन, सं० १४३२।
२५ नेमिनाथ विवाहलो, अज्ञात।
२६ नेमिनाथ विवाहलो, धवल ढाल ४४, ब्रह्मविनय देवसूरि, स० १६१५।
२७ नेमिनाथ विवाहलो, महिमसुन्दर स० १६६५।
२८ नेमिनाथ विवाहलो, गरबा ढाल २२, वीर विजय, स० १८६०।
२९ नेमिनाथ विवाहलो, ऋषभविजय, १८८६।
३० नेमिनाथ विवाह केवलचन्द्र, १९२९।
३१ पार्श्वनाथ विवाहलो, गा० ३६ ६१ अज्ञात, स० १४१२ वै० सु० ११।
३२ पार्श्वनाथ विवाहलो, पेथो, १६ वी शती।
३३ पार्श्वनाथ विवाहलो, गा० ८, क्षेमराज-जैसलमेर भंडार, १६ वी शती।
३४ पार्श्वनाथ विवाहलो ढाल ४६, ब्रह्मविनयदेव सूरि, स० १६१७ सावण।
३५ पार्श्वनाथ विवाहलो, रग विजय, स० १८६०।
३६ पार्श्वनाथ विवाहलो, गा० ६१, विजयरत्नसूरि भण्डार १८वी शती।
३७ पिथलगच्छ गुरु विवाहलो, गा० ५, अज्ञात, १६वी शती।
३८ मगलकलश विवाहलउ, गा० १७०, धनराज, स० १४९०।
३९ महावीर विवाहलउ, कीर्तिराज, १५ वी शताब्दी।
४० महावीर विवाहलउ, गा० ३२२, अज्ञात अनतनाथजी भण्डार, १७वी शती।
४१ वीरचरित्र विवाहलो, ढाल ३७, ब्रह्मविनयदेव सूरि, १७वी शताब्दी।
४२ विवाहलउ, गा० २५, अज्ञात, १५वी शताब्दी।
४३ शालिभद्र विवाहलो, गा० ४४, लक्ष्मण, स० १५६८ लिखित।
४४ शांतिनाथ विवाहलउ, हर्ष धर्म, १६वी शताब्दी।
४५ शान्तिनाथ विवाहलउ धवल, आनन्द स० प्रमोद, स० १५९१
४६ शान्तिनाथ विवाहलउ, सहजकीर्ति, स० १६७८।

४७ शान्तिनाथ विवाहलउ, ब्रह्मविनयदेव सूरि, १७ वीं शती।

४८ सुपार्श्व जिन विवाहलउ धवल ३४, विनयदेव सूरि, स० १६३२।

४९ हेम विमल सूरि विवाहलउ गा० ७१ १६वी शताब्दी।

५० सुमति साधु सूरि विवाहलउ, गा० ८१ लावण्यसमय, १६ वी शताब्दी।

५१ श्री महावीर विवाहलउ, हर्ष सयमसूरि गुरु शिष्य स० १५१८।

५२ शान्तिनाथ विवाहलउ।

५३ शान्ति विवाहलउ, गा० २७, तपोरत्न, १६वी शती।

५४ महादेव पार्वती री वेल, किसनाजी, वि०स० १६६० १७००।

५५ रुक्मिणी मगल।[1]

३४ १। उक्त रचनाओ के अतिरिक्त विवाह मगल विषयक निम्न लिखित रचनायें और प्राप्त हुई हैं —

१ ईश्वर विवाह, देवीदास, लि० का० सं० १६१८ ज्येष्ठ शुक्ला २।[2]

२ परणा रुक्मिणी री, अज्ञात कवि कृत।[3]

३ कानजी विवाहलो, अज्ञात कवि कृत।[4]

४ किसन किलोल, र० का० स० १७८७।[5]

५ कृष्णजी रा विवाहलो, अज्ञात जैन कवि कृत लि० का० स० १७८६।[6]

६ कृष्ण जी री वेलि, कर्मसी सासला, लि० का० स० १६३४।[7]

७ कृष्ण रुक्मिणी मगल, कायस्थ मवरचंद मूलचदोत कृत, स १९०६–मेडता।[8]

८ गौर स्यावलो, सत गोवर्धन।[9]

९ जानकी मगल महताबसिंह अलख, स० १९०९ कार्तिक कृष्णा १० रविवासरे।

---

१ श्री अगरचन्द जी नाहटा, बीकानेर की सूची, प्राचीन काव्यों की रूपपरम्परा, पृ० ५८ - ६३।

२ राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग १, पृ० ५।

३–४ लेखक के निजी सग्रह में।

५–श्री अगरचन्द नाहटा, मरु-भारती, वर्ष १०, अङ्क २, जुलाई १९६२।

६–राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

७–अनुप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।

८–राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर।

९–श्री सूर्यशंकर पारीक का निबन्ध, वरदा, बिसाऊ, वर्ष ४, अङ्क २, पृ० ६४।

१० महादेव विवाहलो, कर्ता अज्ञात।[1]

११ रामदेव जी को व्यावलो, प० पूनमचदजी सुखवाल कृत।[2]

१२ रुक्मिणी कृष्णजी रो रासो, तिमरदास कृत।[3]

१३ रुक्मिणी बारामासिया, रूलोराम पुजारी।[4]

१४ रुक्मिणी मगल, केसोराय, वि०स० १७५०।

१५ रुक्मिणी मगल, समय सुन्दर।[5]

१६ रुक्मिणी मगल, रूपमति कृत।[6]

१७ रुक्मिणी मगल, सहसमल कृत, वि० स० १७०५।[7]

१८ रुक्मिणी मगल, हृदयराम कृत।

१९ रुक्मिणी मगल, प्रियादास कृत।[8]

२० रुक्मिणी मगल, इन्दरमन कृत।[9]

२१ रुक्मिणी मगल, हीरामणि कृत।

२२ रुक्मिणी मगल, ऊदो।[10]

२३ रुक्मिणी मगल, महाचद द्विज, र० का० वि० स० १७७९, पौष शुक्ला १, सोमवार।

२४ रुक्मिणी मगल रूयाल, प० बन्सीधर शर्मा।[11]

१–लेखक का निजी सग्रह, यह ग्रन्थ महादेव–विवाहलों से भिन्न एक लघु रचना है।

२–प्रकाशक शिवदयाल लखारा, बुकसेलर, मुकाम लाम्बिया, पोस्ट आनन्दपुर (कालू मारवाड)।

३–जयपुर ग्रथ–भण्डार सूची, श्री कासलीवाल की भूमिका, पृ० ४३–४४।

४–क–श्री हाङ्का भजन संग्रह, भाग १ हिन्दी पुस्तक एजेन्सी कलकत्ता। ख–रुक्मिणी मगल, हिन्दी पुस्तकालय, मथुरा।

५–राजस्थान प्राच्य–विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रथांक १८५९३।

६–श्री दीनदयाल ओझा का निबन्ध वरदा, बिसाऊ, अक्टूबर १९६३।

७–राजस्थान भारती, बीकानेर।

८–पत्र सं० ९८, राजस्थान प्राच्य–विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रथाक १२६००

९–अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

१०–प्राचीन काव्यों की रूप परम्परा, श्री अगरचन्द नाहटा, पृ० ६३।

११–प्रकाशक, प० बन्सीधर शर्मा, किशनगढ़।

२५ रुक्मिणी मगल, उमादत्त । १
२६ रुक्मिणी रास, नन्दलाल, र० का० लि० स० १८७६ । २
२७ रुक्मिणी विलास, ब्रजदत्त लि०का०स० १८६६, फाल्गुन कृष्णा४ ।३
२८ रुक्मिणी विवाहलो प्रथम अज्ञात कवि कृत । ४
२९ रुक्मिणी विवाहलो, द्वितीय, अज्ञात कवि कृत । ५
३० रुक्मिणी हरण कु भोजी मूला । ६
३१ रुक्मिणी हरण, विट्ठलदास स० १८११, फागुण वदी ६, अदीतवार, लिखी । ७
३२ रुक्मिणी हरण रत्नभूषण । ८
३३ रुक्मिणी हरण, सावलदास बारहठ । ९
३४ रुक्मिणी हरण अज्ञात कवि कृत, प्रथम । १०
३५ रुक्मिणी-हरण, अज्ञात कवि कृत द्वितीय । ११
३६ रुक्मिणी हरण सूर कृत, वि० स० १९०४ में लिपि कृत । १२
३७ रुक्मिणी हरण, सायाजी झूला [वि० स० १६३२ १७०३]। १३
३८ शिवजी रो विवाहलो रामुराम, जोधपुर निवासी कृत वि० १९०७ । १४
३९ हरजी रो हुडमडी, अज्ञात कवि कृत । १५

१–रुक्मिणी मगल गीतावली, प० कृष्णानन्द व्यास कलकत्ता द्वारा प्रकाशित ।
२–जिन चारित्र सग्रह, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा बीकानेर ।
३–पत्र स० १०३ ।
४ – लेखक के निजी सग्रह में ।
५ – लेखक के निजी सग्रह में ।
६ – चारणो अने चारणी साहित्य, श्री झवेरचद मेघाणी पृ० १८८ ।
७ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ग्रन्थांक २०१२९, ग्रन्थ बीठलदास रो कह्यो, अमरकोट सोढ़ाँ रे रहितो ।
८ – जयपुर ग्रथ भण्डार सूचि, श्री कासलीवाल जैन अतिशय क्षेत्र महावीर जी, जयपुर ।
९ – राजस्थानी शोध सस्थान, जोधपुर ।
१०–११ – लेखक के निजी सग्रह में ।
१२– राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थांक प्र० ८७८ ।
१३ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से लेखक के सम्पादन मे प्रकाशित ।
१४ – पत्र स०, १५, र० का० १९०७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ११०४ ।
१५ – लेखक के निजी सग्रह मे । यह विवाह के अवसर पर गाई जाती है ।

३५ १। विवाह सनक काव्यो की परम्परा राजस्थानी साहित्य मे चौदहवी शताब्दी से प्रारम्भ होती हैं। विवाह सज्ञक राजस्थानी रचनाओं में आगमिक गच्छीय जिन प्रभसूरि कृत "अ तरग विवाह" प्राचीनतम माना गया है। [1] "अ तरग विवाह" में प्रमाद को पत्तन अर्थात् नगर के रूप में, जीव को वर के रूप,में चतुर्विध स घाओ का जानउत्र अर्थात् बारातियो के रूप में और शीलागो को वाहनो के रूप में चित्रित किया गया है। कथा के अन्त मे जीव रूपी वर को मुक्ति से विवाह करवा कर सिद्धपुरी पहु चा दिया गया है। इस कृति के आदि अ त इस प्रकार हैं—

प्रारम्भ—पमाय गुण अणु पाटण तहि, अहे भवि योजिउ निरुवमु वसए।
चउविह सघु जान उत्रकीय, अहे वाहण सहस सीलग ॥१५॥

अ त—ईणि परि परि गए जो अजगि, अहे लहइ सो सिद्धि पुरिवासु ।
मगलिकु वीर जिण प्रभह अहे मगलिकु च चउवीह सघ ए ॥[2]

३६ १। इस काव्य की पुष्पिका से प्रकट होता है कि यह काव्य राग वस त में गेय है, साथ ही इसको विवाह और धवल दोनों ही सज्ञाऍ दी गई हैं। [3]"धवल' मना भी "मगल" सज्ञा की तरह विवाह सम्ब धी काव्यों के लिए प्रयुक्त होती रही है। परवर्ती सहज सु दर कृत "जम्बू अ तरग विवाहलो' भी इसी प्रकार का काव्य है। तदुपरान्त सवत् १३३१ मे रचित सोममूर्ति का ' जिनेश्वर सूरि सयम श्री विवाह वर्णन रास' उपलब्ध होता है। इस रास में जिनेश्व र सूरि नामक खरतर गच्छीय आचार्य का दीक्षा वर्णन करते हुए कवि ने दीक्षा कुमारी अथवा सयम श्री को क या मानते हुए विवाह का रूपक प्रस्तुत किया है। जिनेश्वर सूरि मरुकोट अर्थात् मारवाड के नेमिच द्र भण्डारी के पुत्र थे। इनका मूल नाम अम्बड कुमार था और इनका ज म वि० स० १२४५ में हुआ था। अम्बड कुमार की दीक्षा जिनिपत्ति सूरि द्वारा खेड नगर मे सम्पन्न होती है, जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

अभिनव ए चालिय जानउत्र, अबड तणई वीवाहि।
आपुणु ए घम्मह चक्कवइ, हुयउ जानह माहि ॥१६॥
आवही आवहि रग भरी, पच महव्वयराय ।
गायहि गायहि महुर सरि, अटठय महव्वयराय ॥१७॥

१ – क-ताड़ पत्रीय प्रति, वि० स० १३०० के लगभग लिखित जन ग्र थ भण्डार, पाटण।
ख–श्री अगरच द नाहटा प्राचीन काव्यो की रूप–परम्परा पृ० ४८ ४९।

२ – वही।

३ – "अ तरग विवाह धवल वसत रागेण भणनीय।" वही।

अद्वार सह सह रहयरह, जाजिम तहि सीलंग ।
चालहि चालहि रंति मुइ, वेगहि चग तुरग ॥१८॥

कारइ कारइ नेमिचदु भंडारिउ उच्छाहु ।
बाधइ बावइ जान देवि लपमिणि हरणु प्रवाहु ॥१९॥

कुसलिहि खेमिहि जानउत्र, पहुतिय मेह मज्झारि ।
अद्धवु हूयउ अइ पवरो, नाचहि फर फर नारि ॥२०॥

जिणवइ सूरिण मुणिपवरो, देसण अमिय रसेण ।
करिय जीमणवार तहि जानह हरिम भरेण ॥२१।

सत जिणसर वर भुवणि, मढिय नदि सुवेहि ।
वर सहि मविया दाण जति जिम गयणगणि मेह ॥२२॥

तहि अगिया रीव निलजए, झाणानल पजलति ।
तउ सवेगिहि निम्मयउ, हथलेवउ सुमुहुत्ति ॥२३॥

इणि परि अ यहु वर कुमरो, परिणइ सजम नारि
वाजइ नदीव तूर घणा गूडिय घरघर बारि ॥२४॥ [1]

२७ १। इसी प्रकार का एक "विवाहलो काव्य उपाध्याय मेरुनन्दन गणि कृत "जिनोदयसूरि विवाहलउ" उपलब्ध होता है जिसमें विवाह कराने वाले जोशी के स्थान पर गुरु की योजना की गई है। [2] उदयनन्द सूरि विवाहलो का रचना काल चौदहवी से सोलहवी सदी के बीच में निर्धारित किया गया है। उदयनन्द सूरि का मूल नाम राउल था। विवाह के विषय मे वे कहते हैं—

> संजम सिरि स्वय वरि वहिये ।
> बीजो सवि कन्या परिहरिये ॥ [3]

जोशी को आमन्त्रित कर उससे विवाह मुहूर्त पूछा जाना है और घर मे विवाहोत्सव प्रारम्भ होता है। सम्बन्धियो और परिचितों को कुकुमपत्रिकायें भेजी जाती हैं। इस काव्य मे धवल, मगल और बधावा गाने का, विवाह मडप मगल वाद्य, बन्दीजन, स्नान, उबटन, मजन, वस्त्राभूषण, वरयात्रा, नृत्य आदि का सरस चित्रण हुआ है। लग्न का समय आने पर गुरु वर को साधु वेश प्रदान कर सयम श्री से दीक्षित करते हैं।

३८ १। आदिनाथ, अजितनाथ, शांतिनाथ, चन्द्रप्रभु, नेमिनाथ और महावीर आदि

---

१ – ऐतिहासिक जन काव्य सग्रह श्री अगरचन्द भवरलाल नाहटा, पृ० ३७७।
२ – ऐतिहासिक जन काव्य सग्रह, सम्पादक—श्री अगरचन्द भवरलाल नाहटा, पृ० ३६०।
३ – ऐतिहासिक जन काव्य सग्रह, स० अगरचन्द भवरलाल नाहटा, पृ० ३६०।

के प्राचीन विवाहले भी उपलब्ध होते हैं जिनका रचना काल १५ वी से २० वी सदी तक माना गया है। [1]

३६ १ । उक्त विवेचन से प्रकट होता है कि हमारे साहित्य मे विवाह सम्बन्धी मान्या की सुदीर्घ परम्परा अन्त सलिला के रूप में उपलब्ध होती है। मानव-जीवन में विवाह एक विशेष आनन्द और उल्लास का अवसर होता है। विवाह के अवसर पर वर और वधु दोनों ही पक्षा के परिजन और परिचित व्यक्ति अनेक दिनों तक उत्सव को आयोजना करते हैं। विवाहोत्सव में नृत्य, सगीत और काव्यरूपी त्रिवेणी का सगम होता है तथा अनेक व्यक्तियो को उल्लासयुक्त हार्दिक अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है।

४० १ । हमारे कवियों ने विवाह सम्बन्धी प्रसगो में विशेष रुचि ली है। नायक नायिकाओ के विवाहो का वर्णन हमारे कवियो ने पूर्ण हार्दिकता के साथ किया है। अनेक काव्यो में विवाह प्रसग प्रासगिक कथा के रूप में सनिविष्ट हुआ है। साथ ही विवाह सम्बन्धी अनेक स्वत त्र रचनाए भी उपलब्ध होती हैं। हमारे कवियो को विवाह के अवसर पर होने वाले प्रेमालापों, सदेशो के आदान प्रदान, सेनाओं के प्रयाण, युद्ध, पाणिग्रहण, नायक-नायिका मिलन, नख शिख वर्णन, षट्ऋतु वर्णन आदि प्रसगों में आत्माभिव्यक्ति का अनूठा अवसर उपलब्ध होता रहा है। विवाह सम्बन्धी प्रसगों में कवियो को रुचिगत विविध प्रकार की मार्मिक अभिव्यक्ति के अवसर मिल जाते हैं जिनमें शात, शृगार और वीर आदि रसों की निष्पत्ति सम्भव होती है।

४१ १ । सक्षेप में लेखन है कि निम्नलिखित कारणा से विवाह सम्बन्धी अवसर कवियो के लिए विशेष रुचिप्रद हुए हैं—

[१] नायिका की बाल लीला, वयःसधि, नख शिख निरूपण, प्रिय नायक के प्रीत सदेश प्रेषण, नायक नायिका मिलन, प्रेमालाप, षट्ऋतु आदि के वर्णन का प्रसग प्राप्त होना।

[२] भक्त कवियो के लिए नायक के प्रति और अन्य देवी देवताओ के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के प्रसगो की प्राप्ति होना।

[३] वीर रस के कवियो को युद्ध के लिए भूमिका प्राप्त होना, सेना की साज सज्जा अश्व गज इत्यादि वाहनो, विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रो, सैनिको की वेशभूषाओं, रण वाद्यो, सेना प्रयाण, शस्त्रास्त्रो के प्रहार, वीरो की हुकार, कायरो की भाग-दौड, घायलो की कराहट, शिव, काली, भूत प्रेतो, योगिनियों आदि की लालाओ, जलचर पशु पक्षियो, दुर्ग भेदन और विजयोपरात आनन्ददायक परिस्थितियो के चित्रण का अवसर प्राप्त होना।

---

१ – प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा, श्री अगरचन्द नाहटा, पृ० ५२।

[४] विवाह प्रसंग में निहित नर नारियों की आनन्दपूर्ण अभिव्यक्ति, वस्त्रा भूषणों, और विविध शृंगारों का वर्णन, नगर, हाट, घर, द्वार और आंगन की साज सज्जा, दीपमालिका, आतिशबाजी, सामूहिक भोज आदि के प्रसंग उपलब्ध होना।

[५] कवियों को विवाह रूपक के अन्तर्गत वर वधु के रूप में परमात्मा आत्मा,[१] साधु-संयमश्री[२] और वीर विजयश्री[३] आदि के वरण वर्णन के अवसर उपलब्ध होना।

४२ १। इस प्रकार हमारे कवियों को विवाह दर्शन इतने प्रिय रहे हैं कि पशु पक्षियों,[४] साग सब्जियों[५] और फल फूलों[६] आदि में काल्पनिक विवाह दर्शन भी उपलब्ध होते हैं।

---

१ – क – दुलहिनी गावहु मंगलाचार। पद, कबीरदास।
ख – गावहु गावहु वाणी बिवेक विचार। पद, गुरु नानक, आदि।
२ – क – जिनेश्वर-सूरि दीक्षा विवाह वर्णन रास, सोममूर्ति कृत, जैन गुर्जर कवियो मो० द० देसाई, भाग १ पृ० ७।
ख – जिनोदयसूरि विवाहलउ, मेरुनन्दन कृत, वही, पृ० १८ १९।
ग – सुमति सूरि विवाहलो, लावण्यसमय कृत, वही, पृ० ८५।
३ – राठौड़ रतनसी खींवावत री वेल, दूदो, स० १६१४ लगभग स० श्री नारायणसिंह भाटी, राज० शो० स०, जोधपुर।
४ – जनावर नी जान, नवलराम कृत और पक्षीओ नो विवाह, गुजराती साहित्य ना स्वरूपो, पद्य विभाग, प्रो० मजूमदार, पृ० ३९५।
५ – क – बेंगण ने वर घोड़े, वही पृ० ३९६।
ख – 'करेला री आई है बरात' लेखक का निजी संग्रह।
६ – केला री हुई है सगाई, वही।

द्वितीय अध्याय

श्रीकृष्ण चरित्र और श्रीकृष्ण–रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी काव्यों के प्रेरणा स्रोत

१–श्रीकृष्ण–चरित्र

२–श्री कृष्ण–रुक्मिणी–विवाह सम्बन्धी काव्यो के प्रेरणा स्रोत

(क) श्रीमद्भागवत का श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन

(ख) विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण का श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन

(ग) श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी संस्कृत रचनाए

(घ) श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी अपभ्रंश एवं जैन रचनाए

(ङ) श्रीकृष्ण रुक्मिणी-विवाह विषयक ब्रज भाषा की रचनाए —

(१) विष्णुदास कृत रुक्मिणी मगल
(२) महाकवि सूरदास कृत रुक्मिणी मगल
(३) कविवर नन्ददास कृत रुक्मिणी मगल
(४) नरहरि महापात्र कृत रुक्मिणी मगल
(५) रघुनाथ सिंह कृत रुक्मिणी परिणय
(६) श्री कृष्णानन्द व्यास कृत सगीत रुक्मिणी मगल
(७) प्रभुदास कृत रुक्मिणी मगल

(च) कृष्ण रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों की प्रेरक परिस्थिति

द्वितीय अध्याय

श्रीकृष्ण-चरित्र और श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों के प्रेरणा-स्रोत ।

(१) श्री कृष्ण–चरित्र

१ २। भगवान् श्रीकृष्ण के अद्भुत् चरित्र में अनेक बाल लीलाओं का चापल्य रास लीला की रसिकता, वंशीवादन और ग्वाल नृत्य का कला प्रेम, कुंजबिहार का शृंगार, गोप लीलाओं का माधुर्य, शकटासुर, वत्सासुर, अघासुर धेनुक, प्रलम्बासुर, बकासुर और कंस आदि का मारने की वीरता, श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान, महाभारत की नीतिज्ञता तथा राजसी ऐश्वर्य आदि लौकिक एवं अलौकिक तत्व हैं अतएव इससे अनेक कवि कोविद और कलाकार युग युगान्तर से प्रेरित होते रहे हैं। श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म परमेश्वर होते हुए भी मानवी रूप धारण कर विभिन्न लीलाओं का प्रसार करने वाले हैं, आजीवन गृहस्थ रूप में रहते हुए भी योगेश्वर हैं और देवराज इन्द्र को पराजित करने में समर्थ होते हुए भी नीतिवश रण छोड हैं। श्रीकृष्ण की समकक्षता में कोई अन्य चरित्र नहीं प्रस्तुत किया जा सकता जिसमें सर्वांगीण प्रभाव से युक्त ऐसी विविधता हो।

२ १ २। भारतीय साहित्यिक परम्परा के साथ ही सगीत, चित्रकला, नृत्य, शिल्प, स्थापत्य वेश भूषा, साज सज्जा और सम्पूर्ण भारतीय दर्शन एवं विचार धारा पर श्रीकृष्ण का प्रभाव स्पष्टरूपेण लक्षित होता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण भारतीय जनता के लिए एक अजस्र प्रेरणा-स्रोत हैं और लोक रक्षक के साथ ही लोकरंजक रूप में प्रतिष्ठित हैं।

३ २। श्रीकृष्ण नाम का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में एक स्तोता ऋषि के रूप में प्राप्त होता है। यहा श्रीकृष्ण सोमपान के लिए अश्विनिकुमारों का आह्वान करते हुए बताये गये हैं —

"आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छत युवम्। मध्व सोमस्य पीतये ॥१॥
इम मे स्तोममश्विनेम में शृणुत हवम्। मध्व सोमस्य पीतये ॥२॥
अय वा कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू। मध्व सोमस्य पीतये ॥३॥
शृणुत जरितुहव कृष्णस्य स्तुवतो नरा। मध्व सोमस्य पीतये ॥४॥
छर्दिर्यन्तमदाभ्य विप्राय स्तुवते नरा। मध्व सोमस्य पीतये ॥५॥
गच्छत दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना। मध्व सोमस्य पीतये ॥६॥
युञ्जाथा रासभ रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू। मध्व सोमस्य पीतये ॥७॥

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेनायातमश्विना । मध्व सोमस्य पीतये ॥८॥
इमे गिरो नासत्याश्विना प्रावत युवम् । मध्व सोमस्य पीतये ॥९॥ [1]

अर्थात् अश्विनिकुमारो ! मेरा आह्वान सुन कर मेरे यज्ञ में हर्षप्रद सोम के पास आओ ॥१॥
हे अश्विद्वय ! इस हर्ष प्रदायक सोम को पीने हेतु मेरे स्तोत्र रूप आह्वान को सुनो ॥२॥
हे अश्विद्वय ! तुम अन्न-धन स सम्पन्न हो। मैं कृष्ण ऋषि तुम्हें हर्ष प्रदायक सोम के लिये आह्वान करता हू ॥३॥
अश्विद्वय, हर्षप्रदायक सोम को पीने हेतु मुझ कृष्ण का आह्वान सुनो ॥४॥
हे अश्विद्वय ! मुझ विद्वान् स्तोता कृष्ण ऋषि के लिये हर्ष प्रदायक सोम के निमित्त आओ ॥५॥
हे अश्विद्वय ! मुझ हविदाता के घर मे हर्ष प्रदायक सोम को पीने हेतु आगमन करो ॥६॥
हे अश्विनिकुमारो ! हर्षप्रदायक सोम के लिए दृढ़ भागों वाले रथ में घोड़े जोतो ॥७॥
हे अश्विद्वय ! तीन फलकों वाले त्रिकोण रथ पर हर्ष प्रदायक सोम पीने हेतु आओ ॥८॥
हे अश्विद्वय ! मेरी स्तुति रूपी वाणी के प्रति आकृष्ट हो कर सोम पीने हेतु शीघ्र आगमन करो ॥९॥

४ २। ऋग्वेद में ही श्रीकृष्ण के पुत्र विश्वक का भी उल्लेख है—

अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभि ।
पशु न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्व ददथुर्विश्वकाय ॥२३॥ [2]

अर्थात् हे अश्विनेवो ! तुम्हारी रक्षा चाहने वाले श्रीकृष्ण ऋषि के पुत्र विश्वक को तुमने पशु के समान खोए हुए पुत्र विष्णापू स मिला दिया।

५ २। ऋग्वेद में कृष्ण को एक स्थान पर दैत्य बताते हुए इन्द्र द्वारा कृष्ण की प्रजा के विनाश का वर्णन हुआ है। यहाँ कृष्ण से इन्द्र की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है—

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो य कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषण वज्रदक्षिण मरुत्वन्त सख्याय हवामहे ॥१॥ [3]

अर्थात् हे मित्रो ! इस प्रसन्न हुए इन्द्र के निमित्त अन्नयुक्त स्तुतिया अर्पण करो जिसने राजा "ऋजिश्वा के साथ कृष्ण दैत्य की प्रजाओं का विनाश किया। हम उस वज्रधारी, वीयवान् इन्द्र का मरुतो सहित रक्षा के लिये आह्वान करते हैं।

६ २। कृष्ण और इन्द्र को एक दूसरे से बढ़ कर बताने का विवाद कालान्तर में अनेक

१—ऋग्वेद मण्डल ८ वां, सूक्त ८५ वां (मन्त्र १ से ९) गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
२—ऋग्वेद, मण्डल, १, सूक्त ११६, मन्त्र २३, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
३—ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १०१, मन्त्र १, गायत्री तपोभूमि मथुरा।

शताब्दियों तक चलता रहा। अन्त में श्रीमद्भागवत्कार ने गोवर्द्धन पर्वत-धारण जैसे प्रसगों में श्रीकृष्ण की महत्ता इन्द्र से बढ़कर ही नहीं सर्वोपरी रूप मे प्रकट की।

७ २। देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण का नाम सर्व प्रथम छान्दोग्य उपनिषद् मे प्राप्त होता है जहा घोराङ्गिरस देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण का विशेष ज्ञान प्रदान करते हैं।[1] देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण की महत्ता सर्वप्रथम महाभारत में प्रतिपादित होती है। महाभारत-युद्ध के लिये अर्जुन इन्द्र की अपेक्षा श्रीकृष्ण के सहयोग को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। अर्जुन श्रीकृष्ण को इन्द्र से अधिक पराक्रमी बताते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने भोज राजाओं को नष्ट किया, रुक्मिणी का हरण किया, नग्नजित के पुत्रों को पराजित किया, राजा पाण्डव का सहार किया, काशी नगरी का उद्धार किया, निषाद-राज एकलव्य का वध किया और उग्रसेन के पुत्र सुनाम को मारा। साथ ही अर्जुन कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था मे ही हैहयराज और अन्य राक्षसों को मारा, जलदेवता को परास्त किया तथा इन्द्र के नन्दनवन से सत्यभामा की प्रसन्नता हेतु पारिजात ले आये, आदि।[2]

८ २। जैनमतानुसार वासुदेव, बलदेव और प्रतिवासुदेव में से प्रत्येक की सख्या ९ है। यथा—

वासुदेव-त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ स्वयप्रभ, पुरुषोत्तम, प्रगट, पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण और कृष्ण, बलदेव-अचल, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, शुभमति, रामचन्द्र और बलभद्र, प्रतिवासुदेव-अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, मधुयशा, निशुम्भ, बलय, प्रल्हाद, रावण और जरासध।[3]

९ २। श्री आर० जी० भाण्डारकर का मत है कि वासुदेव कृष्ण सभवत सात्वत जाति के प्रसिद्ध राजकुमार थे और मृत्यु के उपरान्त इसी जाति द्वारा सर्वप्रथम पूज्य हुए। सात्वत जाति के अनुकरण में ही कृष्णोपासना का प्रचार अन्य जातियों में हुआ।[4]

ग्रियर्सन, केनेडी और वेबर आदि विद्वानों ने अपना अनुमान प्रकट करते हुए लिखा है कि क्राइस्ट के बाल-चरित् के अनुकरण में ही गोपाल कृष्ण का बाल-चरित निरूपित किया गया है।[5]

१० २। श्री कृष्ण-चरित्र का पूर्ण विकास श्रीमद्भागवत् महापुराण मे उपलब्ध होता है। श्रीमद्भागवत् में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं को विशेष महत्व दिया गया है किन्तु प्रसगानुसार श्रीकृष्ण के उत्तरकालीन ऐश्वर्यमय स्वरूप अर्थात् महाभारत-कालीन चरित्रों को

१—छान्दोग्य उपनिषद् ३। १७। ४-६।

२—महाभारत, उद्योगपर्व।

३—कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्रम्।

४—ए रिपोर्ट आन सर्च फार सस्कृत मेनुस्क्रिप्टस, १८८३-८४ बम्बई १८८७, पृ० ७४।

५—डॉ० व्रजेश्वर वर्मा, हि० सा०, भाग २ पृ० ३२५।

भी निरूपित किया गया है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत् में ऋग्वेद के स्तोता कृष्ण, सा वना के गोपाल कृष्ण और महाभारत के राजनीतिज्ञ कृष्ण, तीनों ही प्रतिनिधि रूपों का समाश्रित चित्रण हुआ है।

भागवत् के कृ ण पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम हैं एव परम उपास्य हैं। हमारी विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर श्रीमद्भागवत् के कृष्ण का प्रभाव है और यह महान् ग्रन्थ कवि कोविदो भक्तो तथा रसनों का परम प्रिय और उपास्य बन गया है एव धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के दाता रूप मे सुप्रतिष्ठित [1]। श्रीमद्भागवत् के विषय मे लिखा गया है "भागवत ने श्रीकृष्ण चरित्र के माधुर्य का लोगो को रसास्वादन करा कर कृष्णोपासना के वैष्णव पन्थ द्राविड़, महाराष्ट्र गुजरात राजपूताना, उत्तर हिन्दुस्तान और बंगाल मे स्थापित किये।" [1]

११ २। श्रीकृष्णोपासना का पुरातात्विक दृष्टि से प्राचीनतम प्रमाण राजस्थान में माध्यमिक (नगरी चित्तौड़) के वासुदेव मन्दिर सम्बन्धी भग्नावशेषों में नारायण वाटिका से प्राप्त होता है। [2] मथुरा से प्राप्त एक शिला पर वासुदेव को नवजात कृष्ण सहित यमुना पार करते हुये उत्कीर्ण किया गया है। यह मूर्तिपट्ट अनुमानत प्रथम शताब्दी ई० का है। [3] मथुरा से प्राप्त एक अ य शिलापट्ट पर कालियमर्दन का दृश्य प्रदर्शित किया गया है। [4] राजस्थान में मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मण्डोर से एक शिलापट्ट उपलब्ध हुआ है जिस पर श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी गोवर्द्धन धारण माखन चोरी शकटभंजन और कालियमर्दन के दृश्य बताये गये हैं। इस शिला का समय ४ थी व ५ वीं शताब्दी ई० माना गया है। [5] राजस्थान में सूरतगढ़ (बीकानेर) से मिट्टी की ऐसी पट्टिकायें प्राप्त हुई हैं जिन पर गोवर्द्धन धारण और दान लीला के दृश्य बताये गये हैं। इसी प्रकार दक्षिण भारत में बादामी गुफाओं में श्रीकृष्ण जन्म पूतना वध, शकट भंजन, प्रलंब वध, धनुष वध कंस वध आदि के दृश्य प्रदर्शित किये गये हैं जिनका निर्माणकाल ५ वीं ७वीं शताब्दी ईस्वी है। [6]

१२ २। विविध प्रकार के काव्यों म श्रीकृष्ण चरित्र का निरूपण प्रथम शताब्दी ई० से ही प्राप्त होने लगता है। उदाहरण स्वरूप अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ई०) कृत संस्कृत काव्य "बुद्धचरित्' और प्राकृत भाषाबद्ध हाल सातवाहन के काव्य 'गाहा सतसई' मे श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण हुआ है। दक्षिण भारतीय आलवार सन्तों ने भी ४वीं से ९वीं

१—मराठी वाङ्मय का इतिहास, ले० डा० रा० पांगारकर प्रथम खण्ड, पृ० ११०।

२—राजस्थान मे भागवत धर्म का प्राचीन केन्द्र डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, ना० प्र० प० स० २०१४ अंक २-३।

३—इण्डियन आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, वर्ष १९२५-२६।

४—पुरातत्व संग्रहालय मथुरा में यह पट्ट सुरक्षित है।

५—इण्डियन आर्कियोलाजिकल, वर्ष १९०५-६।

६—आर्कियोलोजीकल मेमोयर्स वर्ष १९२-२६।

शताब्दी पद्य त श्रीकृष्ण-सम्बन्धी अनेक भावपूर्ण पदों की रचनायें की। आलवार भक्तों द्वारा रचित चार हजार भावपूर्ण गीत 'प्रबन्ध' नाम से सग्रहीत हैं। इन पदों में विष्णु, नारायण एव वासुदेव और इनके अवतारों के प्रति प्रेम भाव प्रकट किया गया है। भगवान् श्री कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन राधा के रूप मे हुआ है। नाप्पिन्नाइ गोपी का वर्णन राधा के रूप में हुआ है। नाप्पि नाइ को लक्ष्मी का अवतार बताया गया है। सुप्रसिद्ध राजा यशोवर्मा (आठवीं शताब्दी ईसवी) के सभा कवि वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत महाकाव्य 'गउडवहो' के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण की ही स्तुति गान किया है—

> सो जयइ जामइल्लायमाएा मुहलालि वलय परिश्राल।
> लच्छि विवेसतेउर वइ व जोवहइ वएा माल ॥
> बालतणम्मि हरिणो जयइ जसो आए चुम्बिय वयएा।
> पडिसिद्ध नाहि मग्गुद्ध णिग्गय पुण्डरोयव ॥
> एाहरेहा राहा कारणाश्रो करुएा हरन्तु वो सरसा ॥
> वच्छत्थलम्मि कौत्थुह किरणा अन्तीओ कण्हस्स ॥
> त णमह जेण अज्जवि विलूण कण्ठस्स राहुणो वलई
> दुक्ख मनिच्चरियचिय अमूल लहूरुहि सामेहि ॥ [1]

मान स्वयम्भू रचित छन्दानुशासन [2] (९वीं शताब्दी) और कवीन्द्र-वचन समुच्चय (१०वीं शताब्दी) [3] मे श्री कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण हुआ है।

१३ २। जैन आचार्य हेमचन्द्र (१२वीं शताब्दी ई०) ने अपने सुप्रसिद्ध प्राकृत व्याकरण में कतिपय राधा कृष्ण सम्बन्धी पद्य उद्धृत किये हैं। जयदेव ने गीत-गोविन्द में राधाकृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का सरस निरूपण किया, जिसका प्रभाव कालान्तर में अनेक कवियों पर लक्षित होता है।

(२) श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों के प्रेरणा-स्रोत

(क) श्रीमद्भागवत् का कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-वर्णन-

१४ २। श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध मे राजा परीक्षित शुकदेव जी से निवेदन करते हैं— "हमने सुना है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा भीष्मक की परम सुन्दरी कन्या

१—मगलाचरण छ० सं० २०-२३।
२—२-६-१०, २-५-६।
३—छद स० ५१०।

रुक्मिणी का बलपूर्वक हरण किया और उसके साथ राक्षस विधि से विवाह किया।[1] गुरुदेवजी महाराज ! जरासंध और शाल्व आदि को जीतकर रुक्मिणी-हरण करने की कथा हम सुनना चाहते हैं। श्रीकृष्ण की लीलायें स्वयं तो पवित्र है ही सारे संसार के कालुष्य को दूर कर उसको भी पवित्र करने वाली हैं। उनमें ऐसी लोकोत्तर माधुरी है, जिसे दिन रात सेवन करने पर उसमें नित्य नवीन रस मिलता है। ऐसा कौन रसिक और मर्मज्ञ है जो उसे सुनकर तृप्त न हो।"

१५ २। तदुपरान्त श्री शुकदेव जी कहते है कि राजा भीष्मक विदर्भदेश के अधिपति थे। उनके क्रमशः रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मेश और रुक्ममाली नामक राजकुमार हुए। उनकी एक पुत्री थी जिसका नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य पराक्रम, गुण और वैभव की प्रशंसा सुनी। रुक्मिणी के आगे आगत अतिथि प्रायः श्रीकृष्ण की प्रशंसा गाया करते थे। ऐसी अवस्था में रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण का ही पति रूप में वरण करने का निश्चय किया।[3]

१६ २। श्रीकृष्ण ने भी रुक्मिणी के सौन्दर्य गुण, शीलस्वभाव और शुभ लक्षणों की प्रशंसा सुनी तो उससे विवाह करने का निश्चय किया।[4] रुक्मिणी का बड़ा भाई रुक्मी श्रीकृष्ण से द्वेष रखता था इसलिये उसको छोड़कर सभी रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से ही करना चाहते थे। रुक्मी ने रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करने का निश्चय किया। यह जानकर रुक्मिणी ने एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को अपने सन्देशवाहक के रूप में द्वारिका श्रीकृष्ण के समीप भेजा।[5]

१७ २। रुक्मिणी के सन्देश में रुक्मिणी द्वारा श्रीकृष्ण को पति रूप में वरण करने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया गया है। सन्देश में नगर के बाहर कुलदेवी के दर्शन के समय पहुँच कर रुक्मिणी को ले जाने का और राक्षस विधि से पाणिग्रहण का संकेत दिया गया है।[6]

१८ २। श्री कृष्ण रुक्मिणी के प्रति अपने अनुराग को प्रकट करते हुए यथा समय पहुँच कर रुक्मिणी को ले आने का निश्चय प्रकट करते हैं।[7] तदुपरान्त नक्षत्र ही दिन लग्न तिथि जानकर सारथी दारुक द्वारा शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक तीव्रगामी घोड़े अपने रथ में जुतवा कर और ब्राह्मण को साथ लेकर एक रात में विदर्भ देश पहुँच जाते हैं।[8]

---

१ अध्याय ५२ श्लोक सं० १८।
२ अध्याय ५२, श्लोक सं० १९-२०।
३ अध्याय ५२, श्लोक सं० २१-२२।
४ अध्याय ५२ श्लोक सं० २४।
५-अध्याय ५२ श्लोक सं० २६।
६-अध्याय ५२ श्लोक सं० ३७-४३।
७-अध्याय ५३ श्लोक सं० २-३।
८-अध्याय ५३, श्लोक सं० ४-६।

१६ २। तदुपरान्त रुक्मिणी के विवाहोत्सव की तयारी और कुण्डिन नगर की सजावट आदि का वर्णन है।[1] चेदि नरेश राजा दमघोष भी अपने पुत्र शिशुपाल को लेकर अनेक राजाओं और चतुरंगिणी सेना सहित कुण्डिनपुर पहुंचते हैं।[2] विदर्भराज भीष्मक सबका स्वागत करते हैं[3] और सभी राजा शिशुपाल के समर्थन में आवश्यकतानुसार श्रीकृष्ण से युद्ध करने की तैयारी करते हैं।[4]

२० २। बलराम भी श्रीकृष्ण की सहायता हेतु चतुरंगिणी सेना सहित कुण्डिनपुर पहुंच जाते हैं।[5] आगे श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में रुक्मिणी के चिंतातुर होने का वर्णन है।[6] तदुपरान्त ब्राह्मण-देवता आकर रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के आने का संदेश देते हैं और कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को ले जाने की प्रतिज्ञा की है।[7]

२१ २। राजा भीष्मक ने श्रीकृष्ण-बलराम का यह जानकर कि वे विवाह देखने आये हैं, विधिपूर्वक पूजा अर्चना के उपरान्त आतिथ्य-सत्कार किया।[8] विदर्भदेश के नागरिकों ने श्रीकृष्ण के रूप गुण से प्रभावित होकर कामना प्रकट की- 'श्रीकृष्ण ही रुक्मिणी का पाणिग्रहण करें।'[9]

२२ २। आगे रुक्मिणी के अन्तःपुर से प्रस्थान कर देवी-मन्दिर की ओर जाने का और उनकी सुरक्षा का वर्णन है।[10] रुक्मिणी मन्दिर में प्रवेश कर देवी पूजा करती है और श्री कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने की कामना करती है।[11] तदुपरान्त श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी के मोहक सौन्दर्य और शृंगार का निरूपण है जिसको देखकर विरोधी राजा बेसुध हो गये और उनके शस्त्र हाथों से छूट पड़े।[12] इसी समय रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। रुक्मिणी श्री कृष्ण के रथ पर चढ़ना ही चाहती थी कि श्रीकृष्ण ने स्वयं विरोधियों की भीड़ में से उनको उठा कर रथ में बैठा दिया। तदुपरान्त श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर बलराम और अपनी सेना सहित वहां से चल दिये और राजागण अपने आप को धिक्कारते हुए रह गये।[13]

२३ २। तत्पश्चात् शिशुपाल के समर्थक राजाओं की पराजय और श्रीकृष्ण रुक्मिणी-परिणय का वर्णन हुआ है। श्री शुकदेव जी परीक्षित को श्री कृष्ण और विरोधी राजाओं के मध्य होने वाले युद्ध का वर्णन् करते हुए बताते हैं कि राजाओं ने कृष्ण पर आक्रमण किया और रुक्मिणी ने चिंता प्रकट की तो श्रीकृष्ण ने तुरन्त ही राजाओं को

१-अध्याय ५३ श्लोक संख्या ७-१३।
२-अध्याय ५३ श्लोक संख्या १४-१५।
३-अध्याय ५३, श्लोक संख्या १६।
४-अध्याय ५३, श्लोक सं० १७-१९।
५-अध्याय ५३ श्लोक सं० २०-२१।
६-अध्याय ५३, श्लोक सं० २२-२६।
७-अध्याय ५३ श्लोक सं० २७-३०।
८-अध्याय ५३ श्लोक सं० ३२-३४।
९-अध्याय ५३ श्लोक सं० ३६-३८।
१०-अध्याय ५३, श्लोक सं० ३९-४३।
११-अध्याय ५३, श्लोक सं० ४४-५०।
१२-अध्याय ५३, श्लोक सं० ५१-५३।
१३-अध्याय ५३, श्लोक सं० ५४-५७।

पराजित कर भगा दिया। [1] आगे जरासंध शिशुपाल को समझाते हैं कि श्रीकृष्ण से वे १७ बार पराजित हुए किन्तु प्रयत्नशील रहने से १८ वीं बार विजयी बने। [2] शिशुपाल उदास होकर युद्ध से बचे हुए साथियों सहित अपनी राजधानी को लौट गया। [3]

२४ २। रुक्मी ने एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा किया। रुक्मी ने श्रीकृष्ण को ललकार कर आक्रमण किया किन्तु श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए उसके सभी शस्त्र काट गिराये। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी की प्रार्थना पर रुक्मी को मारने का विचार छोड़ कर उसकी दाढ़ी मूछ और मस्तक के केश मूड कर उसको उसी के दुपट्टे से बांध दिया। [4]

२५ २। बलराम ने रुक्मी की दयनीय अवस्था में देखा तो उसको मुक्त कर दिया और रुक्मी के प्रति किये गये व्यवहार को निन्दनीय बताया। [5] तदुपरान्त बलराम ने रुक्मिणी के आगे क्षात्र धर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि तुम्हारे भाई प्राणियों के प्रति दुर्भाव रखते हैं इसलिए हमने उनके मंगल हेतु ही समस्त कार्य किया है। तुम अज्ञानियों की भांति इस कार्य को अमंगल मत मानो। यह शरीर नाशवान है और अहं के कारण आत्मा को जन्म मृत्यु के चक्कर में पड़ना होता है आदि। रुक्मिणी ने तदुपरान्त विवेक बुद्धि से अपने दुख का समाधान किया। [6] रुक्मी ने अपमानित और निराश होकर भोजकट नामक नवीन नगरी का निर्माण किया और वहीं रहने लगा क्योंकि उसने श्रीकृष्ण को मारकर अपनी बहिन को लौटा कर ही कुण्डिनपुर में प्रवेश करने की प्रतिज्ञा की थी। [7]

२६ २। श्री कृष्ण ने द्वारिका लौट कर विधि पूर्वक रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया। द्वारिका में श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह के अवसर पर उत्सव हुए और रुक्मिणीहरण की गाथा गाई जाने लगी। द्वारिकावासी लक्ष्मी को रुक्मिणी के रूप में लक्ष्मी पति भगवान् श्रीकृष्ण के साथ देखकर आनन्दित हुए। [8]

२७ २। तदुपरान्त प्रद्युम्न जन्म की कथा वर्णित है। इस अध्याय के प्रारम्भ में वर्णन है कि कामदेव भगवान वासुदेव के ही अंश हैं। इन्होंने रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर अपना प्रद्युम्न-नाम प्रसिद्ध किया। [9]

२८ २। प्रद्युम्न जब दस दिन के हुए तब शम्बरासुर इन्हें अपना शत्रु जानकर छद्मवेश में उठा ले गया और समुद्र में फेंक आया। समुद्र में एक मगर मच्छ ने प्रद्युम्न को

१–अध्याय ५४, श्लोक सं० १–९।
२–अध्याय ५४ श्लोक सं० १०–१६।
३–अध्याय ५४, श्लोक सं० १७।
४–अध्याय ५४, श्लोक सं० १८–३५।
५–अध्याय ५४, श्लोक सं० ३६–३६।
६–अध्याय ५४, श्लोक सं० ४०-५०।
७–अध्याय ५४ श्लोक सं० ५१–५२।
८–अध्याय ५४, श्लोक सं० ५३।
९–अध्याय ५५, श्लोक सं० ५४–६०।

निगल लिया। मछुआ ने सयोग से उसी मच्छ को पकडा और शम्बरासुर को समर्पित किया। रसोइयो ने मच्छ का काटते समय उसके पेट मे बालक प्राप्त किया तो उस बालक को शम्बरासुर की दासी मायावती ने ले लिया। नारद मुनि ने आकर स्वामी का प्रद्युम्न सम्बन्धी वृत्तान्त कह सुनाया।[1] यह मायावती कामदेव का पत्नी रति ही थी। प्रद्युम्न के युवा होने पर मायावती उनके आगे कामिनी सदृश हाव भाव प्रदर्शित करने लगी।[2] प्रद्युम्न ने उसको अपनी माता के समान समझ कर भर्त्सना की। मायावती ने नारद द्वारा सुनी हुई घटनाएं बताकर प्रद्युम्न को सभी प्रकार की मायाओ का नाश करने वाली 'महामाया' नामक विद्या दी।[3] प्रद्युम्न ने महामाया विद्या प्राप्त कर शम्बरासुर को ललकारा। प्रद्युम्न पर शम्बरासुर ने क्रोधित होकर अपनी गदा चलाई। प्रद्युम्न ने भी अपनी गदा चलाकर उसकी गदा को गिरा दिया। तब शम्बरासुर आकाश में उड़कर शस्त्रो की वर्षा करने लगा। प्रद्युम्न जी ने महामाया का प्रयोग कर शम्बरासुर की अनेक मायाओ का विनाश किया और शम्बरासुर का अपनी तलवार से वध किया।[4] तदुपरान्त मायावती प्रद्युम्नजी को लेकर आकाशमार्ग से द्वारिका चली गई।[5] रुक्मिणी और अन्त पुर की अन्य नारियां इस नव दम्पति को देखकर आश्चर्य चकित हो गई। रुक्मिणी अपने खोए हुए पुत्र का ध्यान करने लगी।[6] इसी समय नारदजी ने आकर सबको शम्बरासुर-सम्बन्धी कथा सुनाई।[7]

२६ २। प्रद्युम्न को देखकर सभी बहुत आनन्दित हुए। प्रद्युम्न का रूप-सौन्दर्य श्रीकृष्ण से मिलता हुआ था अतएव अन्त पुर में स्त्रियो को कभी कभी भ्रम भी हो जाता था। प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के अश और कामदेव के अवतार थे इसलिये यह आश्चर्य की बात नही थी।[8]

३० २। श्रीकृष्ण रुक्मिणी सवाद के अन्तर्गत वर्णन है कि एक समय श्री कृष्ण ने रुक्मिणी से कहा—'मैंने जरासन्ध और शिशुपालादि का गर्व भंजन करने हेतु ही तुम्हारा हरण किया है। मैं एक सामान्य पुरुष हू और मेरे पास कोई बडा राज्य नही है। इसलिए अब तुमको अपनी इच्छानुसार पति का वरण कर लेना चाहिए।"

३१ २। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण की महानता बताते हुए उनके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की। श्रीकृष्ण ने भी रुक्मिणी के अगाध प्रेम के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट की।[9]

(ख) विष्णुपुराण और हरिवंश-पुराण का श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-वर्णन

३२ २। विष्णुपुराण[10] और हरिवंशपुराण[11] मे वर्णित रुक्मिणी हरण प्रसग

१–अध्याय ५५, श्लोक स० ३–६। २–अध्याय ५५, श्लोक स० ७–१०।
३–अध्याय ५५, श्लोक सं० ११–१६। ४–अध्याय ५५, श्लोक स० १७–२३।
५–अध्याय ५५ श्लोक स० २४–२५। ६–अध्याय ५५ श्लोक स० २६–३४।
७–अध्याय ५५, श्लोक स ३५–३७। ८–अध्याय ५५, श्लोक स० ३८–४०।
९–दशमस्कध अध्याय ६०। १०–अ श ५ ६, अध्याय ३८।
११–अध्याय ५६ ६०।

में श्रीमद्भागवत जैसी सुविस्तृत कथा याजना और रोचकता नही है। विष्णुपुराणगत कथा में यह विशेषता है कि रुक्मैया श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण के पश्चात् युद्ध मे जाते समय श्रीकृष्ण का पराजित किये बिना कुन्दनपुर मे नही प्रवश करन की प्रतिज्ञा करता है। विष्णु पुराण मे रुक्मैया का श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये दण्ड का वणन नही है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण रुक्मिणी का राक्षस विवाह हाने की ओर सकत मात्र है कि तु विष्णुपुराण[1] में इस विवाह को स्पष्ट ही राक्षस विवाह लिखा गया है—

> निर्जित्य रुक्मिणा सम्यगुपयेमेह रुक्मिणीम्।
> राक्षसेन विवाहेन सप्राप्ता मधुसूदन ॥

३३ २। रुक्मिणी के गभ से प्रद्युम्न के उत्पन्न होन का प्रसग भी विष्णु पुराण मे वर्णित है। इस पुराण मे रुक्मिणी को श्रीकृष्ण की आठो पटरानियो मे प्रमुख बताते हुए श्रीकृष्ण की देह क साथ हो रुक्मिणी का दाह सस्कार सूचित किया गया है—

> अष्टौ महिष्य कथिता रुक्मिणी प्रमुखास्तु या।
> उपगुह्य हरेर्देह विविशुस्ता हुताशनम् ॥ [2]

३४ २। हरिवशपुराण क अनुसार श्रीकृष्ण और बलराम रुक्मिणी का विवाह देखने हेतु कुन्दनपुर में आते हैं। इन्द्राणी के मन्दिर मे पूजन क लिये आगत रुक्मिणी क रूप सौन्दय पर मुग्ध हो कर श्रीकृष्ण बलदेव के परामर्शानुसार मन्दिर क बाहर रुक्मिणी का हरण करत हैं। रुक्मया श्रीकृष्ण से युद्ध म पराजित हो कर अभयदान को प्रार्थना करता है और श्रीकृष्ण क क्षमादान पर कुन्दनपुर म प्रवश नही करने क विचार स अपने निवास हेतु भोजकटपुर का निर्माण करता है। हरिवशपुराणगत प्रसग का दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) रुक्मिणी हरण[3] और (२) रुक्मया की पराजय।[4]

३५ २। श्रीमद्भागवत् वैष्णव भक्तों का प्रधान उपास्य ग्रन्थ है और समस्त वैष्णव-सम्प्रदायो का आधार रूप है। महाभारत मे मानव धम का सम्यक् निरूपण करने क उपरान्त भी महर्षि व्यास को शान्ति लाभ नहीं हुआ तो देवर्षि नारद क निर्देशानुसार व्यास जी न भगवान् की प्रममयी लीलाओ का वर्णन कर अनन्त प्रमरस क आधार भगवान में सम्पूर्ण रूप म आत्म समर्पण की दृष्टि से श्रीमद्भागवत् की रचना की।[5] भारतवष में मुस्लिम विजताओ न इस्लाम क सिद्धान्तो क अनुसार शासन सचालन कर हिन्दू धर्म और सस्कृति का उच्छेद करना चाहा तो हमारे धर्माचार्यों न श्रीमद्भागवत् स प्ररित होकर हो देश

१–दशमस्कध अध्याय ५२, श्लो० १८। २–अ श ६ अध्याय ३८, श्लो० २।
३–अध्याय ५६। ४–अध्याय ६०।
५–श्रीमद्भागवत् प्रथम अध्याय, ५।८।६।४०।

में भक्ति धारा प्रवाहित की और सम्यकरूपेण मार्गदर्शन कर जनता को आश्वस्त किया। श्रीमद्भागवत में सर्वजन सुलभ भक्ति का, पूर्णब्रह्म परमेश्वर की विविध लीलाओं के साथ सरस वर्णन हुआ है और भगवान् के रासमय एवं भावपूर्ण कीर्ति गान के कारण ही श्रीमद् भागवत का व्यापक प्रचार हुआ है।

ग श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी संस्कृत रचनाएं —

३६२। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसंग में शृंगार, भक्ति और वीरता-सम्बन्धी अनेक मार्मिक भावों का समावेश हुआ है इसलिए श्रीमद्भागवतादि पुराणों के आधार पर संस्कृत में अनेक रचनाएं हुईं। यथा—

(१) रुक्मिणी-कल्याण नाटक, चूडामणि कृत।[१]

(२) रुक्मिणी-चम्पू, घनश्याम-पुत्र गोवर्द्धन कृत।[२]

(३) रुक्मिणी-नाटक, सरस्वतीनिवास कृत।[३]

(४) रुक्मिणी-परिणय नाटक रामचन्द्र कृत।[४]

(५) रुक्मिणी परिणय वरद कवि कृत।[५]

(६) रुक्मिणी-विजय काव्य।[६]

(७) रुक्मिणी विजय वादिराज तीर्थ कृत।[७]

---

१ – लिस्ट्स ग्राफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लायब्रेरीज ग्राफ सदन इण्डिया, गस्टाव ओपेर्ट, वो० १, मद्रास १८८० ई० स० २९८८, ३४७१ वो० २, मद्रास १८८५ ई० स० १६०००, ६६०० टीकाएं, वो० १ स० ५४७२, वो० २ स ६००१।

२ – कर्ता की परम्परा टीका में उद्धृत केटलोगस केटलोगोरम, एन अल्फाबेटिकल रजिस्टर ग्राफ संस्कृत वर्कस एण्ड ग्राथर्स, थिओडोर ओफ्रेक्ट, भाग १, फ्रें ज स्टेनर वरलोग जी० एम० बी० एच० विएस्बडेन, पृ० ५२७।

३ – क – वही। ख – केटलाग ग्राफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स एक्जिस्टिंग इन दी सेन्टल प्रोविन्सेज, स० एफ० कीलहान, नागपुर १८६४ ई०, सं० ७४।

४ – ग्रापेट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ संग्रह सूची, स० २६६० ४५७।

५ – ए क्लासिफाइड इंडेक्स टू दी संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दी पेलेस एट तंजोर, स० ए० सी० बर्नेल लंदन, १८८० ई० स० १७२ बी०।

६ – ओपेर्ट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ संग्रह सूची भाग १ सं० २५३४, भाग २, सं० ५५५६, टीका १, स० २६८६।

७– क– रिपोर्ट ग्रान दी सर्च फार संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दी बाम्बे प्रेसीडेंसी ड्यूरिंग दी ईयर १८८२ ८३, ग्रार० जी भंडारकर बाम्बे १८८४, सं० ६३२।

ख– ग्रापेट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ संग्रह सूची, वो० २, स० ५५८।

(८) रुक्मिणी स्वयंवर काव्य।[1]

(९) रुक्मिणीहरण नाटक, शेष चिंतामणि कृत।[2]

(१०) रुक्मिणी कल्याण-नाटक, राजचूडामणि कृत।[3]

(११) रुक्मिणी परिणय काव्य, लक्ष्मणपुत्र गोविन्द कृत।[4]

(१२) रुक्मिणी परिणय नाटक, रामवर्मन कृत।[5]

(१३) रुक्मिणी परिणय नाटक कवि कार्तिकसिंह कृत।[6]

(१४) रुक्मिणी कल्याण गीत, विद्याचक्रवर्तिन।[7]

(१५) रुक्मिणी-कल्याण गीत, परमानन्द।[8]

(१६) रुक्मिणी कल्याण गीत गोविन्दरथ।[9]

(१७) रुक्मिणी कृष्ण विवाह।[1]

(१८) रुक्मिणी परिणय आत्रेय वरद।[11]

(१९) रुक्मिणी, परिणय विश्वेश्वर।[12]

(२०) रुक्मिणी-परिणय वत्सराज।[13]

(२१) रुक्मिणी परिणय, अप्पय दीक्षित।[14]

(२२) रुक्मिणी परिणय, वेंकट शास्त्रिन।[15]

(२३) रुक्मिणी परिणय, एडवेहिक्काट्टू नम्बूद्रि।[16]

(२४) रुक्मिणी परिणय गोविन्द।[16]

१–क–केटलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स कन्टेन्ड इन दी प्राइवेट लाइब्रेरीज आफ गुजरात, काठियावाड, कच्छ, सिंध, एण्ड खानदेश, कम्पाइल्ड अंडर दी सुपरिंटेंडेंस आफ जी० बुलर० बाम्बे १८७१ ७२ ई०, स०, २, स० १०४।
ख– ओपेट की दक्षिण भारतीय ग्रन्थ संग्रह सूची, न० २९९०, ६१७९।

२ – क– रिपोर्ट आन दी सर्च फोर संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन दी बाम्बे प्रेसीडेन्सी ड्यूरिंग दी ईयर १८८०–८१, एफ० कील्हार्न बाम्बे १८८१, स० ६२-१०४।
ख– ओपेट की उक्त सूची स० २९९०, ६१७९।

३ – गवर्नमेंट ओरियन्टल लायब्रेरी, मद्रास स० ७८।

४–५–६ —आफ्रेक्ट कृत केटलोगस केटलोगोर, भाग २ पृ० १२३।

७ – हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर एम० कृष्णमाचारी, तिरुमलार, तिरुपति, देवस्थान प्रेस मद्रास १९३३, इन्डक्स पृ० १०५७—१०५८।

८ – वही।
९ – वही।
१० – वही, ४६।
११ – वही, डो० ७७७।
१२– वही, ३१२ ६०६।
१३ – वही, एड० जी० ओ० एस०।
१४ – वही।
१५ – वही, ६४३।
१६ – वही, ६३६।
१७ – वही, २५३।

(२५) रुक्मिणी परिणय चम्पू, अम्मालू ।[1]
(२६) रुक्मिणी परिणय चम्पू, वेंकटाचार्य ।[2]
(२७) रुक्मिणी परिणय चम्पू, रामराय ।[3]

घ श्रीकृष्ण–रुक्मिणी–विवाह-सम्बन्धी अपभ्रंश एवं जैन रचनाएं

३७ २। श्रीकृष्ण–रुक्मिणी विवाह के सकेत नेमिनाथ गजसुकुमाल और प्रद्युम्न विषयक जैन रचनाओं मे भी उपलब्ध होते हैं। जैन मतानुसार नेमिनाथ अपर नाम रिष्टनेमि अथवा रिटठनेमि बाईसवें तीर्थङ्कर और श्रीकृष्ण के चचेरे भाई माने गये हैं। गजसुकुमाल श्रीकृष्ण के सहोदर भ्राता और प्रद्युम्न श्रीकृष्ण–रुक्मिणी के पुत्र थे। यादव–कुल में नेमिनाथ परम शक्तिशाली थे, जिनका विवाह उग्रसेन की राजकुमारी राजुलदेवी से निश्चित हुआ था। विवाहोत्सव मे भोज्य पदार्थों हेतु वध किये जाने वाले जीवों का करुण क्रन्दन सुन कर नेमिनाथ ने सांसारिक सुख–वैभवों का पूर्ण रूपेण त्याग कर वैराग्य ग्रहण कर लिया। साथ ही राजुल देवी ने भी वैराग्य ग्रहण कर लिया। नेमिनाथ से प्रभावित होकर गजसुकुमाल ने भी बाल्यकाल मे वैराग्य धारण कर लिया।

३८ २। प्रद्युम्न कुमार कामदेव के अवतार और श्रीकृष्ण–रुक्मिणी के पुत्र थे। प्रद्युम्न कुमार ने भी वैराग्य धारण किया था। प्रद्युम्नकुमार सम्बन्धी रचनाओं के प्रारम्भ में रुक्मिणी–हरण सम्बन्धी प्रसंग दिया गया है। नेमिनाथ, गजसुकुमाल और प्रद्युम्न सम्बन्धी कतिपय जैन रचनाएं निम्नलिखित हैं—

(१) नेमिनाथ चतुष्पदिका, विनयचन्द्र सूरि (वि० स० १३२५) कृत।[4]
(२) नेमिनाथ रास, पुण्यरत्नकृत ले० का० १६३६।[5]
(३) नेमि रास, वि० स० १६७५, धर्मकीर्ति कृत।[6]
(४) नेमि फाग वि० स० १६६५ रत्नसागर सूरि शिष्य कृत।[7]
(५) नेमिराजुल बारामासा, वि० स० १६८६, लाभोदय कृत।[8]
(६) नेमिनाथ सिलोको, उदयरत्न कृत ले० का० स० १८७१।
(७) नेमिजिन गीत लि० का० २० वी शताब्दी।[9]

---

१ – हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर एम० कृष्णमाचारी, तिरुपति देवस्थान प्रेस, मद्रास १९३३ इन्डेक्स १५०, ५४४।
२ – वही। ३ – वही।
४ – जैन गुजर कविओं भाग १, मो० द० देसाई, जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, बम्बई, पृ० ५।
५ – वही, पृ० २४३। ६ – वही पृ० ४६१।
७ – वही, पृ० ४०३। ८ – वही, पृ० ५३४।
९ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थांक ४८३७।
१० – राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग २, स० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, प्र० राजस्थान प्रा० वि० प्र० जोधपुर, पृ० २१।

ब्रजभाषा में कृष्ण-काव्य की रचना का समस्त श्रेय श्री वल्लभाचार्य का होना चाहिये, क्योंकि उन्हीं के द्वारा प्रचारित पुष्टि मार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-साहित्य की रचना की।[1] विष्णुदास की रचनाओं से प्रमाणित होता है कि ब्रजभाषा में कृष्ण-सम्बन्धी काव्य-रचना का प्रारम्भ वल्लभाचार्य के वृन्दावन-आगमन और सूरदास के जन्म से अर्द्धशताब्दी पूर्व हो चुका था। विष्णुदास का जीवन परिचय उपलब्ध नहीं होता है। काशी-नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज रिपोर्ट में प्रस्तुत विष्णुदास कृत महाभारत-कथा के विवरण में इसका रचना काल १४३५ ई० सूचित किया गया है।[2] विष्णुदास ग्वालियर-नरेश डूंगरेन्द्रसिंह के समकालीन थे, जिनका राज्यारोहण १४२४ ई० में हुआ था।[3]

४२ २। विष्णुदास कृत निम्नलिखित रचनाएं उपलब्ध होती हैं —

(१) महाभारत कथा र० का० १४३५ ई०
(२) रुक्मिणी मंगल,
(३) स्वर्गारोहण अथवा स्वर्गारोहण पर्व और
(४) स्नेहलीला (भ्रमर गीत)।

४३ २। उक्त रचनाओं में रुक्मिणी मंगल मंगल काव्य परम्परा में और स्नेह-लीला भ्रमर गीत परम्परा में लिखित हैं। कृष्ण काव्य में प्रचलित इन दो प्रधान परम्पराओं के प्राचीन रूप भी विष्णुदास की रचनाओं में ही उपलब्ध होते हैं।

४४ २। १९१२ ई० की खोज रिपोर्ट में रुक्मिणी मंगल का अन्तिम पद इस प्रकार है—

> महलन मोहन करत विलास।
> कहा मोहन कहा रमन रानी और कोउ नही पास।
> रुक्मन चरण सिरावत पिय के पूजी मन की आस ॥
> जो चाहे यि सौ अज पायो हरि पति देवकी सास।
> तुम बिनु और कौन थो मेरो घरत पताल अकाश ॥
> पल सुमिरन करत निहारो ससि पुस परगास ॥
> घट घट व्यापक अन्तर्यामी सब सुखरासी ॥
> विष्णुदास रुक्मन अरनाई जनम जनम की दासी ॥[4]

---

१ – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ५११।
२ – हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की रिपोर्ट, १९०६ न, सं० २४८ पृ० ६२।
३ – सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, डा० शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी पृ० १५२।
४ – गोस्वामी राधारामचरण वृन्दावन की प्रति, खोज रिपोर्ट पृ० २५२।

४८ २। उक्त पद १९२६-२८ की खोज रिपोर्ट में निम्नलिखित रूप में प्राप्त होता है—

मोहन महन्त करत विलास।
कनक मन्दिर मे केलि करत हैं और कोउ नहिं पास।
रुक्मिनी चरन सिरावे पी के पूजी मन की आस।
जो चाहो सो अवे पावो हरि पति देवकी सास।।
तुम बिनु और न कोऊ मेरो धरणि पताल अकास।
निस दिन सुमिरन करत तिहारा सब पूरन परकास।।
घट घट व्यापक अन्तरजामी त्रिभुवन स्वामी सब सुखरास।
विष्णुदास रुक्मन अपनाई जनम जनम की दास।।[1]

४६ २। श्री कृष्णानन्द व्यास ने रुक्मिणी मंगल विषयक विष्णुदास के अनेक पदों को संकलित किया है[2] जिनके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं–

गौरी तिताला

प्रथम ही गुरु के चरणन वन्दत गौरी-पुत्र मनाइये।
आद ही विष्णु जुगादहि ब्रह्मा शंकर ध्यान लगाइये।
देवी पूजन कर वर मागत वध अरु ग्यान नेवाइये।
ताते सुख अति होवे अवे आनद मगन गाईये।।
गौरी लक्ष्मी सरहि सरस्वती इन हैं सीस नवाइये।
चन्द सूरज दोउ गंगा जमुना जिनतें अति सुख पाइये।।
संत महन्तन की पद-रज ले मस्तक तिलक चढ़ाइये।
विष्णुदास प्रभु प्रीया प्रीतम को रुक्मनी मगल गाइये।।

कृष्ण विरह रुक्मणी को

नही आयो री वे श्याम सुन्दर व्रजवासी अजहु अरी।
अब कोन सुने वासो कहो मदन निशदिन रहत उदासी।।
अरी मे राह तकेदा तक्ते रहिहु हरि दरशन की प्यासी।
हे कोइ राहो आन मिलावे पूरण ब्रह्म अवनासी।।
अरी वाहे सेश महेशे सुरेश रटत है ब्रह्मा पार न पासी।।
इन्द्रादिक की कोन चलावे शंकर करत खवासी।
अरी जात न लगे सोइ तन जानत अनजानन की हासी।।
विष्णुदास प्रभु के बिन देखे लेहु करवत काशी।।

---

१ – प० गणपतिलाल दुबे, गडवापुर ग्राम जिला सीतापुर खोज रिपोर्ट, स० ४९८ पृ० ७५ ६०।

२ – संगीत रुक्मणी मगल कृष्णानन्द व्यास बडी बाजार के थाना कालगिज के कलकत्ता सं० १९३ (१-१) ? पृ० ४।

४७ २। श्रीकृष्णानन्द व्यास द्वारा सकलित सगीत रुकिमणी मगल मे विष्णु दास के ४१ पदो का समावेश हुआ है।

४८ २। विष्णुदास कृत रुक्मिणी मगल की एक प्रति अनूप मस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर मे [1] और एक प्रति राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर के केन्द्रीय पुस्तकालय मे [2] भी उपलब्ध है। जोधपुर की प्रति म प्रारभ के १४ पत्र अप्राप्त हैं। जोधपुर की प्रति का अन्तिम अ श इस प्रकार है–

पद राग परज

मोहन करत विलास महल मे।
टेक— कनक मन्दिर म केल करत हैं। और कोई नही तीजा पास ॥
रुक्मनि चरन पलोटत पीय के। पूजो मेरे मन की आस ॥१॥
जो चाहै थी सोई पाईयो। प्रभु पति देवकी सास॥
तुम बिन और कौन था मेरे। धरनि पताल अकास ॥
पल पल सुमरन करत तिहारो। मुनि पूरन परकास ॥
घट घट व्यापक अतरजामी। त्रिभुवन स्वामी सुख की (सुख को) रास ॥
विष्नुदास रुक्मनि अपनाई। जनम जनम की अपनी दास॥
जो कोई सुनै प्रीति सो। मगल पूरै सब ही मन की आस॥
ठडीराम सुप दियो कृपा कर। विष्णुदास कू आप प्रकास ॥१२१॥

इति श्री विष्नुदास जी को रुक्मणी मगल लिख्यते॥ शुभ भूयात् वाचै त्यानै राम राम॥

यादृस पुस्तक दृष्टवा तादृश लिखित मया।

यदि शुद्ध अशुद्ध वा मम दोषो न दीयते ॥१॥

दोहा

कर कुबजा कटि कूबरी, उध मुषी द्रि नैंन ॥
इन कष्टन करि पुस्तक लीपी, तुम नीके रपीयो सैन ॥२॥

हस्ताक्षर बलदेव कृत अलवर नग्र मध्ये। शुभ भवतु॥

४९ २। विष्णुदास कृत रुक्मिणी मगल की उक्त जोधपुर की प्रति से प्रकट होता है कि यह रचना विभिन्न रागो में गेय १२१ पदो मे पूर्ण हुई है।

१– प्राचीन काव्यों की रूप-परम्परा, श्रीअगरचन्द नाहटा पृ० ५३।
२– ग्रन्थाङ्क १२६००।

५० २। विष्णुदास कृत रुक्मिणी मंगल की प्राप्त प्रतियों में अनेक पाठान्तर हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इस रचना का व्यापक प्रचार रहा है। प० गणपतिलाल दुबे, गड़वापुर की प्रति को क (प्रमुख) मानते हुए रचना के अंतिम पद के पाठान्तर इस प्रकार हैं

[1]मोहन महलन[1] [2]करत बिलास[2] ।
[3]कनक मन्दिर में[4] केलि[5] करत [6]है [7]और[8] कोउ[9] नहि[10] पास ।
रुक्मिनी[11] चरन सिराव[12] [13]पी के[13] पूजी मन की आस ।
जो चाहो[14] सो[15] [16]अबे पावो[16] [17]हरि पति[17] देवकि[18] सास ।
तुम बिन[19] और[20] [21]न काऊ[21] मेरो[22] धरणि[23] पताल अकास ।[24]
[25]निस दिन[25] सुमिरन[26] करन[27] तिहारो[28] सब [29]पूरन[30]परकास ।[31]
घट घट व्यापक[32] अंतरजामी [33]त्रिभुवन स्वामी[34] सब[35] सुखरास ।[36]
विष्णुदास[37] रुकमन[38] अपनाई[39] जनम जनम की दास[40]।

१–ख घ० महलन मोहन ग० मोहन करन। २–ग० विलास महलन में। आगे ग० प्रति में 'टेक' पाठ है। ३ ख० कहा मोहन। ४–ख० कहा ग० म। ५–ख० रमन, ग० घ० केल। ६–ख० रानी। ७ घ० ख० प्रति में यह रूप नहीं है। ८–ग० और। ९–ग० कोई, घ० कोई। १०–ख० घ० नहीं, ग० नहीं लोजा। ११–ख० रुकमन ग० रुकमनि घ० रुकमनीपी (जी) के। १२ ख० सिरावत ग० पलोटत, घ० सरावत। १३–ख० पिय क, ग० पीय के घ० में यह रूप नहीं है। १४–ख० ग० चाहे घ० मांगा। १५–ख० विसो ग० थी सोई, घ० सोइ। १६–ख० अब पायो ग० पायो घ० प्रभु दिना। १७–ख० प्रभु पति। १८–ख० ग० घ० देवकी। १९ ख० बिनु। २०–ग० और। २१–ख० कौन थो, ग० घ० कौन था। २२–ग मेरे, घ० में यह रूप नहीं है। २३–ख० धरत, ग० धरनि घ० धरन। २४–ख० घ० प्रकाश। २५–ख० पल पल ग० घ० पल। २६–ग० घ० सुमरन। २७–घ० करू। २८–ग० तिहारो घ० तिहार। २९–ख० राम, ग० मुनि घ० पुरण ३०–ख० पून, घ० पुन। ३१–ख० परगास, घ० प्रकाश। ३२–ख० ग० घ० व्यापक। ३३–ख० अन्तर्यामी, घ० अंतरजामीम। ३४–ख० में यह रूप नहीं है, घ० भुवन स्वामी। ३५–ग० में यह रूप नहीं है घ० सब। ३६–ख० सुखरासी ग० सुख की "सुख की" पाठ को लि०क० ने भूल से दो बार लिखा है।) ३७–ग० विस्नुदास ३८–ग० घ० रुकमनि। ३९–ग० पौं बोली। ४०–ख० दासी ग० अपनी दास।[1]

५१ २। प्राप्य समस्त प्रतियों के आधार पर ब्रजभाषा के प्रथम महान् कवि की श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी प्रथम ब्रजभाषा-कृति का विधिवत् सम्पादन अपेक्षित है।

१– प्रति परिचय—
ख० – हिन्दी खोज रिपोर्ट का० ना० प्र० सभा, १९१२ ई० की प्रति।
ग० –राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति।
घ० –श्रीकृष्णानन्द व्यास द्वारा संकलित, संगीत रुक्मिणी मंगल का पद।

विष्णुदास ने 'रुक्मिणी मगल' और रुक्मिणी के रूप मे भमरगीत का य लेखन की परम्परा प्रारम्भ की जिनका पालन सूरदास, तुलसीदास, नन्ददास पृथ्वीराज, नरहरिदास, और रघुराजसिंह आदि अनेक कवियो ने किया।

(२) महाकवि सूरदास कृत रुक्मनी-मगल

५२ २। महाकवि सूरदास ने अपने सूरसागर ग्रंथ मे कृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसग का समावेश 'रुक्मिणी मगल' के अ तगत किया है।

५३ २। सूरदास जी ने मगल के प्रारम्भ मे मगलाचरण के अन्तगत लिखा है

> अथ रुक्मिनी मगल, राग विलावल
> हरि हरि हरि हरि सुमरन करो हरि चरणारविंद उर धरो।
> हरि सुमरन जब रुक्मिन करो। हरि किरपा कर ताही तब वरो।

५४ २। सूरदास जी ने मगल के प्रारम्भ मे ही इस प्रकार कथा के फल का सकेत दे दिया है। तदुपरा त इसी पद में कथा का प्रारम्भिक भाग भी दे दिया है, जिसमे शिशुपाल द्वारा बरात जोड कर आने तक का वर्णन है।[1]

५५ २। राग सारग के अ तगत रुक्मिणी की ओर से ब्राह्मण के द्वारा पाती भेजने का वर्णन है।[2]

५६ २। श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी का सन्देश मौखिक है। सूरदास जी ने रुक्मिणी द्वारा पत्रिका भेजने का चित्रण किया है, साथ ही मौखिक सन्देश भी भेजा गया है--

> पाती दीजो स्याम सुजाने।
> मुख सन्देश सुनाय दीजिओ विनय सुनो हरी काने॥
> बावत वेग आप जदुनायक धीर धरो मेरे प्राने।
> समझत नाहि दीन दुख कोऊ सिंह भक्ष शृगाल के पाने॥
> मन मर्कत कू देत मूढ मन मृगमद रज मे साने॥
> कब लग दोस सहु दरशन विन हीय मीन विन पाने॥
> सूरदास प्रभु अधर सुधाधर हरपि दीओ जी दाने॥[3]

५७ २। आगे सूरदास जी ने रागविलावल (३ पद) और राग जैतश्री के आठ पदो

१-सूरसागर अध्याय ५२, पद स० १।
२-वही, पद सख्या २।
३-वही, पद सख्या ३।

तक पत्रिका प्रसग को ही चलाया है। इस प्रसग म ताड पत्र पर लग्न लिखकर भी भेजा गया है। लिखित लग्न की प्राप्ति के बिना वर का आना नियमित नहीं माना जाता इसलिए सूरदास जी ने यह योजना की है।[1]

५८ २। सूरदासजी ने श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी के प्रेम का चित्रण करते हुए रुक्मिणी से कहलाया है कि उसके पाख हो तो वह श्रीकृष्ण से मिलने के लिए उड जावे। उसके बन्धु ने श्रीकृष्ण से वैर किया इसलिए वह बन्धु के पास नहीं ठहरना चाहती। रुक्मिणी दुख के कारण विष खा लेना चाहती है अथवा धरती फटे तो उसमें समा जाना चाहती है—

राग सारग

सखी री पर हौ तौ उडि जाऊ।
जहा वे बसत नन्द के ढोटा ढू ढ लेऊ सोई गाऊ॥
कीजै खेद भइ जो ऐसा कहा तो विष फल खाऊ।
हिरदै मेरे दोऊ जरत है गहरी म गो ठाऊ॥
बधु वैर कियो जदुपति सो ठाढी हू न ठराऊ।
सूरदास प्रभु असुर विवाहै धरनी फाट समाऊ॥[2]

३६ २। श्रीकृष्ण रुक्मिणी का सन्देश सुनते ही ब्राह्मण को रथ म साथ लेकर चल पडते हैं। श्रीकृष्ण बार बार आखो म आसू भरकर रुक्मिणी के विषय म पूछते हैं और बलदेव से तुरन्त सेना लेकर पहुचने के लिए कहते है।[3]

६० २। श्रीकृष्ण कुन्दनपुर पहुचते हैं तो रुक्मिणी सहित नगर के सभी नर-नारी बहुत प्रसन्न होते हैं। राजा भीष्मक भी श्रीकृष्ण का स्वागत सत्कार करते हैं।[4]

६१ २। रुक्मिणी ने धूप दीप और पूजा की सामग्री लेकर देवी के मन्दिर में पहुच, पूजा करके देवी से कृष्ण को वर रूप में प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। पूजा कर रुक्मिणी बाहर आयी तो उसकी सुन्दरता देखकर समस्त सुभट मोहित हो गए और उनके धनुष नीचे गिर गए। इसी समय कृष्ण ने आकर रुक्मिणी को अपने रथ में बैठा लिया। इस विषय में कवि ने लिखा है—

शिव की पूजा कवरि आय, कर गहि हरि तब लई उठाय।
हरि भुज भरि भेटि भलो भाग, सकल सभा दलइ पछताग।
कोउ मारे कोउ गए जु भाज सिसुपाल कवर मुखमिसि लाज।

६२ २। युद्ध में शिशुपाल और जरासन्ध सहित सभी राजा हार गये। कृष्ण और बलदेव के सामने उनकी एक न चली। राम लखन के लिए कृष्ण की ओर चला माता पलग

1— पद सख्या ८। 2— पद सख्या ६।
3— पद-सख्या ११। 4— पद सख्या १२, १३।

दीपक के पास जा रहा हो। श्रीकृष्ण खड्ग लेकर उसको मारने लगे तो रुक्मिणी ने क्षमादान के लिए विनय की। रुक्म ने भी कृष्ण की विनती की। कृष्ण ने उसको क्षमा दान दिया। रुक्म लज्जा के कारण अपने नगर में नहीं गया और वन में रहने लगा। राजा भीष्मक ने आकर रुक्म को उस स्थान का राज्य दे दिया। कृष्ण द्वारिका लौट आए।[1]

६३ २। विजेता कृष्ण को रुक्मिणी सहित आता हुआ देखकर द्वारिकावासी बहुत प्रसन्न हुए। घर घर बन्दनवार और स्वर्णकलश सजाए गए, चौक पूरे गए और कदली स्तम्भ खड़े किए गए। सारे नगर में उत्साह का वातावरण छा गया।[2]

६४ २। तदुपरान्त कृष्ण रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है। कृष्ण रुक्मिणी शृंगार सजा कर विवाह मण्डप में प्रवेश करते हैं। रीति पूर्वक विवाह होता है और ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। रुक्मिणी मंगल के अन्त में कवि ने लिखा है कि विवाह के अवसर पर दी जाने वाली "गार" कृष्ण को क्या कह कर दी जाय—

राग सोरठ—

> तोहि गार कहा कहि के दीजिए।
> हरि जगत काको नाम लीजै सान गौत बिन जान ही॥
> बिन रूप बिन अनुहारि औरहि क्या बखानही।
> अब सुध रही तहा सोच पायो बिन सुने कहा कीजिए॥
> बल जाउ जादोपति बिहारे गार का कहि दीजिए।
> तेरी माय सकल जग खोयो सो का जो मिलके न बिगोयो।

६५ २। सूरसागर के दशम स्कन्ध के ५५ वें अध्याय में राग मारू के अन्तर्गत प्रद्युम्न जन्म का वर्णन है। इसी पद में असुर द्वारा प्रद्युम्न को उठा ले जाने समुद्र में डाल देने और मछली के निगलने आदि का वर्णन है—

राग मारू

> प्रद्युम्न जन्म शुभ घड़ी हुआ हो काम औतार लियो।
> विधिवत यह बात जग तात समूल रहै रूप दोऊ।
> पृथ्वी पै असुर संभ्रम भयो अति प्रबल पुन समुद्र तें डार दीनो।
> मच्छ लियो भक्ष सो मच्छ मच्छौं कहो असुर पति कू सोले बहुत कीनो।
> मच्छ के उदर तें बाल परगट भयो बहोरि असुर कामवता हाथ दीनो।
> कहो यह काम परनाम तेरा पुरुष वचन नारद सुमिर ध्यान सू लीनो।

१— पद संख्या १६।   २— पद संख्या १७ १८।

भयो तव तरुण जब नारि तासू कह्या रुक्मनी मात हरि तात तेरो।
नाम मम रति विदित पात जानत जगत काम तो नाम यू पुरुष मेरो।
असुर कुमार पर दार दहू विद्या में तुम्है वताई।
बिना विद्या उमे जीत सक नहि भेद की बात सब कहि सुनाई।
प्रद्युम्न सकल विद्या समझ नारि सू असुर सू जुद्ध मागो प्रचारी।
काढ तरवार लिय। मार तासू तुरत सुरन आकाश जधुनि उचारी।
वहरि आकाश मग जाय हारावती मात मन अति हा वढायो।
भयो जदुवश अति रहस मनो जन्म लियो सूरजन मगलाचार गायो।

६६ २। सूरदास जा न श्रीमद्भागवत के दशम स्कध के ६० वें अध्याय के अनुसार रुक्मिणी की भक्ति परीक्षा का वर्णन् भी किया है।

६७ २। इस प्रकार ज्ञात होता है कि सूरसागर के अन्तगत 'रुक्मिणी मगल' एक स्वतन्त्र रचना की भाति महत्वपूर्ण है। श्रीमद्भागवत रचना का मूलाधार है किन्तु कवि की मौलिक उद्भावनाए भी कम नही है। यथा रुक्मिणी का सन्देश मौखिक के साथ ही पत्रिका रूप में होना, श्रीकृष्ण का लग्न पत्र प्रेषित करना रुक्मिणी का उड कर श्रीकृष्ण के समीप पहुचने की इच्छा व्यक्त करना और श्रीकृष्ण को विवाह के अवसर पर गार' सुनाते हुए लौकिक विधि का निर्वाह करना आदि।

महाकवि सूरदास ने विभिन्न शास्त्रीय रागो मे गेय रुक्मिणी मगल की रचना कर विष्णुदास द्वारा प्रारम्भ की गई काव्य परम्परा को आगे बढाया है।

(३) नन्ददास कृत रुक्मिणी मगल

६८ २। कविवर नन्ददास ने श्रीमद्भागवत के आधार पर १३३ दोहा छन्दो मे 'रुक्मिणी मगल' की रचना की है। प्रारम्भ मे मगलाचरण के अन्तगत क्रमश गुरु स्तुति और श्रीकृष्ण का स्मरण किया गया है।[1]

६९ २। रुक्मिणी मगल का अपर नाम कवि ने 'रुक्मिणी हरन' दिया है और इसकी महिमा इस प्रकार बतलाई है—

> रुक्मिणी हरन पुनीत चित दै सुन सुनावैं।
> जाहि मिटे जम त्रास, बास हरि के पद पावैं॥[2]

७० २। कवि ने रुक्मि द्वारा शिशुपालहि को दत" की बात सुनने पर रुक्मिणी की अवस्था का चित्रण प्रारम्भ मे किया है। रुक्मिणी इस आघात को न तो सहन

१–छन्द सख्या–१। २–छन्द स० २।

कर सकती है और न किसी से इस विषय में कह सकती है। कवि ने रुक्मिणी की इस अवस्था का विस्तृत और मार्मिक चित्रण किया है।[1]

७१ २। रुक्मिणी ने अन्य कोई उपाय न देखकर श्रीकृष्ण के नाम पत्र लिखा।[2] रुक्मिणी ने ब्राह्मण को बुलाकर अपनी बात समझा कर कही और पत्रिका कृष्ण के पास भेजा।[3] ब्राह्मण रुक्मणी की दुखित अवस्था देखकर और श्रीकृष्ण के चरणों में प्रीति रखता हुआ पवन वेग से द्वारका पहुँचा। कवि ने प्रसगानुसार द्वारका का रमणीय चित्र प्रस्तुत किया है।[4]

७२ २। विप्र ने बिना किसी रोक टोक के कृष्ण के महलों में प्रवेश किया। कृष्ण ने उठ कर ब्राह्मण की पद वन्दना की और ब्राह्मण के पैर धोये। विप्र को स्नान करवा कर उत्तम वस्त्र पहिनाये।[5] कृष्ण ने मानपूर्वक खान पान करवाकर ब्राह्मण से पूछा कि वह कहाँ से आया है ? तब ब्राह्मण ने श्रीकृष्ण को वस्त्र के किनारे से खोलकर पत्र दिया और उन्होंने पढ़ना प्रारम्भ किया —

> श्री हरि हियो मिरावन, लावत लै ल छानी।
> लिख्यो बिरह के हाथ सुपाती अजहू तातो ॥
> हिय लगाय मचु पाय, बहुरि द्विजवर को दीनो।
> रुक्मिनि अ मुवन भीनी, पुनि हरि अ मुवन भीनो ॥

७३ २। श्रीकृष्ण अपनी अश्रु धारा के कारण रुक्मिनी का पत्र नहीं पढ सके इसलिए ब्राह्मण ही पत्र पढने लगा। रुक्मिणी ने प्रारम्भ में अपना परिचय देकर कृष्ण से निवेदन किया कि वे रुक्मिणी का उद्धार करें।[7]

७४ २। रुक्मिणी ने आगे लिखा कि रुक्मैया शिशुपाल के साथ उसका विवाह करना चाहता है तथा उसके माता पिता भी विवश हो गये हैं। यदुवंश में उत्पन्न कृष्ण रूपी हंस ! आप अपने बल का विचार करें और शिशुपाल रूपी कौवे को नष्ट करें। अन्त में रुक्मिणी ने अपने पत्र में लिखा—

> जो नगधर, नन्दलाल, मोहि नहि वरिहो दासी।
> तो पावक पर जरिहो बरिहो तन तिनका सी।
> जरि मरि धरि धरि देह न पैहो सुन्दर हरि वर।
> पै यह कबहु न होय स्याल सिसूपाल छुए कर।[8]

१-छन्द स० ११, १२। २-छन्द स० २४।
३-छन्द स० २५-२६। ४-छन्द स० ३१-३९।
५-छन्द स० ५०। ६-छन्द स० ५४-५५।
७-छन्द स० ५९-६१। ८-छन्द स० ६९-७०।

७४ २। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का पत्र सुनकर अपनी छाती के लगाया और रुक्म पर क्रोधित होते हुए सारथि से रथ मगाया।[1] श्रीकृष्ण पवन के समान गति धारण कर कुन्दन पुर आये।[2] यहा दुल्हिन रुक्मिणी घर आगन मे घूमती हुई इस प्रकार तडप रही थी जैसे थोडे जल मे सूर्य की गरमी में मछली तडपती है।[3] रुक्मिणी अट्टालिका पर बार बार चढ़ती हुई झरोखे से झाकती है, मानो तृषित चकोरी चन्द्र के उदय हुए बिना आतुर होती है।[4]

७६ २। ब्राह्मण चलता हुआ अन्त पुर मे पहुंचा। रुक्मिणी ने उसके प्रसन्न मुख को देखकर धीरज धारण किया। रुक्मिणी ब्राह्मण से पूछ नही सकती है और विचार करती है कि ब्राह्मण अमृत सीचेगा अथवा विष से शरीर जलावेगा।[5] ब्राह्मण ने जब हरि के आने की सूचना दी तब मानो रुक्मिणी के प्राण लौट आये।[6] रुक्मिणी ब्राह्मण के पैरो पडी। कवि इस विषय मे कहता है—

> "दियौ चहै कछु द्विजहि, नही देख्यौ तिहि लायक।
> तब उठि पायन परी, भरी आनन्द महा इक॥
> सर नर जाको सेवत, सेवतहू नहि लहियै।
> सो लक्ष्मी जिहि पाय परत, उनताकी का कहियै॥[7]

७७ २। नगर के लोगो ने श्रीकृष्ण को आया हुआ सुनकर उनके दर्शन किये। श्रीकृष्ण के शील और सौन्दर्य से लोग बहुत प्रभावित हुए और रुक्मिणी के वर रूप मे श्रीकृष्ण को ही योग्य समझने लगे। लोगो ने रुक्मी, शिशुपाल और जरासन्ध की निन्दा की।

७८ २। रुक्मिणी नगर के बाहर अम्बिका देवी की अर्चना हेतु चली। रुक्मिणी ने विधिवत् देवी की अर्चना वन्दना और प्रार्थना की। रुक्मिणी चारो ओर से सुभट सैनिको द्वारा सुरक्षित थी।[8]

७९ २। अम्बिका ने भी प्रसन्न होकर रुक्मिणी से कहा कि वह अभी गोविन्दचन्द्र को प्राप्त करेगी। रुक्मिणी मनोरथ प्राप्त कर प्रसन्नतापूर्वक मन्दिर से निकली। रुक्मिणी ने बाहर आकर मुह से घूघट पट खोला तो मुह की शोभा इस प्रकार प्रकट हुई जैसे आकाश मे चन्द्र उदित हुआ हो। रुक्मिणी के कटाक्षरूपी तीरो से घायल होकर राजा गिर पडे। श्रीकृष्ण ने इसी समय समीप आकर रुक्मिणी का हरण किया। राजा लोग टकटकी लगा कर देखते रह गये मानो उन्होने 'ठगमूरि' खाई हो।[9] कृष्ण रुक्मिणी को अपने रथ में बैठा कर ले चले।[10]

१–छन्द स० ७१।	२–छन्द स ७५।
३–छन्द स० ७ ।	४–छन्द स० ७७।
५–छन्द स० ८०।	६–छन्द स० ८१।
७–छन्द स० ८३–८२।	८–छन्द स० १०३–१०४।
९–छन्द स० ११७।	१०–छन्द स० ११९–१२१।

८० २। जरासंध जैसे राजा कृष्ण के पीछे दौड़े जैसे पागल कुत्ते सिंह के पीछे दौड़ते हैं। शत्रुओं का भारी दल देखकर बलदेव ने इस प्रकार युद्ध किया जैसे मस्त हाथी तालाब में प्रवेश कर कमल दल को रौंद डालता है। जरासंध और शिशुपाल का मान मर्दन होने पर रुक्मी कृष्ण से लड़ने के लिए आगे बढ़ा। कृष्ण ने उसको परास्त कर दिया और मस्तक मूंड कर उसे छोड़ा।[1] इस प्रकार सब राजाओं को जीत कर कृष्ण रुक्मिणी को ले आये और उससे विधिपूर्वक विवाह किया। इस विषय में कवि ने लिखा है—

> इहि विधि सब नृप जीति, हरी रुक्मिनि लै आये।
> विधिवत् कियौ विवाह, तिहू पुर मंगल गाये।
> जो यह मंगल गाय चित दै सुनै सुनावै।
> सो सब मंगल पावै, हरि रुक्मिनि मन भावै॥
> हरि रुक्मिनि मन भावै, सो सबके मन भावै॥
> नंददास अपने प्रभु को, नित मंगल गावै॥[2]

८१ २। कविवर नन्ददास ने अपनी रचना में विष्णुदास और सूरदास की पद पद्धति के स्थान पर रोला छंदों का प्रयोग कर नवीनता उपस्थित की है। कवि ने रचना का नाम 'रुक्मिणी मंगल' के साथ ही 'रुक्मिनी हरन' भी दिया है।[3] द्वारका वर्णन कवि की कला का एक उत्तम उदाहरण है।[4] श्री कृष्ण की प्रतीक्षा में रुक्मिणी की विकलता का चित्रण भी मार्मिक हुआ है।[5] नन्ददास ने रचना के अंत में श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी से "विधिवत् कियौ विवाह" का भी स्पष्ट निर्देश किया है।[6]

(४) नरहरि महापात्र कृत रुक्मिणी-मंगल

८२ २। नरहरि का जन्म गांव पखरौली (राय बरेली) में सन् १५०५ ई० में माना जाता है। इनका सम्पर्क बादशाह हुमायूं, शेरशाह, सलीमशाह, अकबर और रीवां नरेश रामचन्द्र आदि कई शासकों से रहा था। सम्राट अकबर ने इनका विशेष सम्मान किया और इन्हें महापात्र की उपाधि प्रदान की। कहते हैं कि नरहरि के अनुरोध से ही अकबर ने गो वध बंद कर दिया था।[7] नरहरि की मृत्यु सन् १६१० ई० में मानी जाती है।

१-छंद सं० १३०। २ छंद संख्या १३१–१३३।

३ छंद सं० २। ४ छंद सं० ३१, ३६।

५ छंद सं० ७६–७७। ६ छंद सं० १३१।

७ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा पृ०, ६०१।

८३ २। नरहरि महापात्र कृत रुक्मिणी-मंगल' और कुछ स्फुट छन्द प्रसिद्ध हैं।[1] इनकी 'छप्पय नीति' और 'कवित्त संग्रह' नामक रचनाएँ भी कही जाती हैं। इन रचनाओं के नामों से ज्ञात होता है कि ये नरहरि के स्फुट छन्द ही हो सकते हैं।

८४ २। रुक्मिणी मंगल के प्रारम्भ में गणपति गौरी और सरस्वती की वन्दना है। तदुपरान्त कुन्दनपुर में राजा भीष्मराय द्वारा सभा में बैठकर रुक्मिणी के विवाह के विषय में विचार करने का वर्णन है। रुक्मी श्रीकृष्ण का विरोध करता हुआ देश-देश में दूत न शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेज देता है।

८५ २। शिशुपाल अनेक राजाओं और सेना सहित विवाह के लिये कुन्दनपुर पहुँचता है तो रुक्मिणी बहुत दुखी होती है और श्री कृष्ण के पास सन्देश भेजती है —

बैठि एकान्त तहि रुकुमिनी विप्र बोलाएेउ।
देवन मान निहोर सन्देश सुनाएेउ ॥
जदुपति कहकर सुन्दरी पाती दीन्हेउ।
सजल नयेन प्रभु लागि सो विनती कीन्हेउ ॥

८६ २। विप्र रुक्मिणी की पत्रिका लेकर कृष्ण के पास पहुँच जाता है और कृष्ण कुन्दनपुर के लिये प्रस्थान करते हैं। विप्र लौट कर संकेत में ही रुक्मिणी को आशीर्वाद देता है। इस प्रसंग में रुक्मिणी की अवस्था का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है —

हिय विचारे मुख निहारे सकुचि मन ही में रहे।
दुख सुख मिलन वियोग अब दुहु विप्र मोसो का कहे।
दिज कहा सैन बुलाय सुन्दर पाइ पति सुख पाइया।
जनु रंग पाएेउ रतन रुकुमनी प्रगट जदुपति आइया।

८७ २। श्री कृष्ण के कुन्दनपुर में आगमन पर राजा भीष्मक और नागरिकों ने उनका स्वागत किया। कृष्ण ने बहुत सुख माना और जरासन्ध शिशुपाल का अंत समझा—

आएउ भीखम निकट सो माथ नवावउ ॥
रहेउ दोउ कर जोरि चरन चित दीन्हेउ।
मोर जन्म हरि आजु कृतारथ कीन्हेउ।
रुकुमहि दुख न लाइ सो हरि परितोखउ।
कहेउ भरम सब भेद गोविन्दहि तोखेउ।
हरि पुनि कीन्ह सतोख बहुत सुख मानेउ।
जरासंध शिशुपाल काल वश जानेउ।

१– अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल लखनऊ, २००७ वि०।

८८ २। श्रीकृष्ण को श्राया हुआ जानकर रुक्मिया ने सनिका को तयार रहन का आज्ञा दी और गौरी का मण्डप घेर लिया। रुक्मिणी न गौरी पूजन के समय वर रूप मे कृष्ण को प्राप्त करने को प्रार्थना की तो गौरी न प्रसन्न होकर रुक्मिणी को उसकी मनोकामना पूरा होने का वरदान दिया। गौरी मण्डप मे रुक्मिणी कृष्ण की प्रतीक्षा मे धीरे धीरे चल रही थी तब कृष्ण ने आकर उसकी बाहें पकड़ी और उसको रथ में बैठा लिया। इस समय का वर्णन कवि न इस प्रकार किया है —

> पाया जो सोभ सतोख मन महा अतिहि बस देखहि खरी।
> जनु जुथ जबुक मध्य नरहरि सिंघ श्रापन वलि हरी।
> शशि दूरी तजै से तिमिर पसरै अ घु घुघर सूझई।
> लै चाल रथहि चढाइ रुकमिनी एक ऐकहि बूझई ॥

८६ २। रुक्मिया न कृष्ण का सनिका सहित पीछा किया तब जरासन्ध न उसको समझाया किन्तु वह नहीं माना। रुक्मिणी युद्ध की आशंका स विचलित हो गई। कृष्ण ने नाग पाश से रुक्मिया को बाध लिया। कृष्ण रुक्मिया का मस्तक काटन लगे तब रुक्मिणी ने कृष्ण क परो मे मस्तक रखते हुए क्षमा की प्राथना की। श्रीकृष्ण न दया कर उसकी दाढी मूछो और मस्तक का मुण्डन कर उस छोड दिया।

६० २। नरहरि न कृष्ण रुक्मिणी विवाह का गान्धर्व विवाह माना है —

> हरि रुकुमिनि ले साग दुवारिका आएेउ।
> की हो गध्रप व्याह सुजस जग छाएेउ।

६१ २। यह रचना दोहा और चौपाई छन्द मे लिखित है। लिपिकार क दोष स अनेक स्थानो मे दन्त्य 'स' क स्थान पर तालव्य 'श' का प्रयोग हुआ है। कवि ने कथा क मार्मिक प्रसंगो की सवथा उपेक्षा का है। इस विषय में डा० माताप्रकाश जी दीक्षित का मत उल्लेखनीय है—"नरहरि का रुक्मिणी मगल निश्चित रुप से एक सक्षिप्त रचना है, जिसम घटनाओ का उल्लेख मात्र है। उनका भावात्मक सौन्दर्योद्घाटन की मनोरम चेष्टा नही के बराबर हो है।"[1] कवि की कतिपय काव्यगत विशेषताए भी हैं। यथा—

१ कवि न दोहा चौपाई छन्दो का प्रयोग कर एक नवीनता उपस्थित की है।

२ नरहरिदास एक दरबारी कवि थे इसलिये दरबारी परम्पराओ का उन्हे पूर्ण अनुभव था। तदनुसार प्रस्तुत काव्य के समस्त वर्णन् राजदरबारी मर्यादाओ के सर्वथा अनुकूल है।

३ कवि ने श्री कृष्ण रुक्मिणी क विवाह का "गध्रप व्याह" बताया है।

---

१ – वेलि क्रिसन रुकमणी री विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, सम्पादकीय भूमिका पृ० १४८।

(५) रघुराजसिंह कृत रुक्मिणी-परिणय

६२ २। रघुराज सिंह रीवा के महाराजा थ। और इनका ज म काल १८२३ई० तथा मृत्यु काल १८७६ ई० है। रघुराजसिंह क पिता महाराजा विश्वनाथ सिंह भी कवि थे। रघुराजसिंह की रचनाम्रा के नाम इस प्रकार हैं—

सुदर शतक, (सन् १८४७ ई), पत्रिका (१८५० ई), रुक्मिणी परिणय (१८४९ ई०) श्रान दाम्बुनिधि (१८५२ ई०) श्रीमद्भागवत माहात्म्य (१ ५४ ई०), भक्तिविलास (१८६९ ई०) रहस्य ,चाध्याया, भक्तमाल राम स्वयवर (१८६९ ई०), यदुराज विलास (१८७४ ई०) विनय माला राम रसिकावली, (इसका रचनारम्भ १८४२ ई० म हा गया था कि तु पूर्ति १८८४ ई० में हुई), गद्यशतक, चित्रकूट महात्म्य, मृगयाशतक, पदावली रघुराज विलास विनय प्रकाश रामश्रष्टयाम, रघुपति शतक, गगाशतक, धमविलास, शम्भुशतक, रामरजन, हनुमान चरित्र, भ्रमर गीत, परम प्रबोध, और जग नाथशतक।

६३ २। उक्त रचनाम्रा म रामस्वयवर, राम श्रष्टयाम और रुक्मिणी-परिणय[1] मुख्य है। रुक्मिणी परिणय का रचना काल भाद्रपद शुक्ला सप्तमी गुरुवार वि० स० १९०७ है—

> श्रानइस स अरु सात, भादव सित गुरु सप्तमी।
> रच्यो ग्रन्थ अवदात रुक्मिणी परिणय नाम जेहि॥

६४ २। परिणय म इक्कीस सग हैं और कथा का विस्तार महाकाव्य के रूप म देने का प्रयत्न किया गया है—

प्रथम सर्ग—प्रथम सग में मगलाचरण क अन्तर्गत केशव, गणपति, सरस्वती शुकदव और गुरु की वन्दना है। इसी सग मे कवि ने अपना असामर्थ्य और गुरु कृपा का महत्व बताते हुए लिखा है—

> मम गति नही ग्रन्थन रचन पै, कछु मति अनुसार।
> बरणहु रुकुमिणी परिणयो, लहि गुरु कृपा अपार।

कृष्ण क मथुरा आगमन तक की कथा प्रथम सग में वर्णित है।

द्वितीय सर्ग—द्वितीय सग मे कालयवन का मथुरा पर आक्रमण, मुचकुन्द कथा, जरासन्ध के आगे कृष्ण का 'रणछोड' होना और कृष्ण बलदेव का द्वारिका प्रस्थान वर्णित है।

---

१ — प्रका० भारत माता प्रेस, रीवां १८८६, ई०।

ततीय सग इसमे द्वारिका का विस्तृत वर्णन है।

चतुथ सर्ग–बलराम और रेवती का विवाह वर्णन।

पचम सर्ग–पचम सर्ग मे का य की मूल कथा प्रारम्भ होती है। यदुकुल के पुरोहित गर्ग–मुनि कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का प्रस्ताव करते हैं। रुक्मैया प्रस्ताव का विरोध करता है। इस सर्ग मे रुक्मैया की क्रूरता का वर्णन किया गया है।

षष्ठ सर्ग–इस सर्ग मे नारद जी रुक्मिणी के हृदय मे कृष्ण के प्रति प्रेम उत्प न करने के लिये कृष्ण की वीरता गुण, शील और शारीरिक सौ दर्य का वर्णन करते हैं।

सप्तम सर्ग–स तम सग मे रुक्मैया शिशुपाल को रुक्मिणी के लिये लग्न पत्रिका भजता है। शिशुपाल राजाओ सहित सेना सजा कर कुन्दनपुर पहु चता है। रुक्मिणी विप्र के द्वारा अपना पत्र कृष्ण के पास द्वारका भजती है।

अष्टम सग–ब्राह्मण का द्वारका पहु चना। नारद भी इसी समय द्वारका पहु चते हैं और श्री कृष्ण के आगे रुक्मिणी का नख शिख निरूपण करते हैं।

नवम् सग इस सर्ग के अ तर्गत विप्र द्वारा श्रीकृष्ण के दरबार में रुक्मिणी का पत्र पढना और कृष्ण द्वारा रथ में बैठ कर कु दनपुर पहु चना और विप्र से रुक्मिणी के विस्तृत समाचार प्राप्त करना आदि वर्णित है।

दशम् सग–इस सग में बलराम का सेना सज्जा कर कु दनपुर पहु चना भीष्मक द्वारा कृष्ण–बलदेव का स्वागत करना, कृष्ण के दर्शन से प्रजा का आनन्दित होना तथा कृष्ण के आगमन की सूचना प्राप्त कर रुक्मिणी द्वारा विप्र को पद व दना आदि का वर्णन है।

एकादश सर्ग इस सर्ग मे रुक्मैया का क्रोधित होते हुए शिशुपाल के शिविर में जाना, शिशुपाल के समथकों की गर्वोक्तियां सनिक तैयारी, रुक्मिणी का अपनी सखियां, माता और रक्षकों के साथ पद यात्रा करते हुए अम्बिकालय जाना और कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण आदि प्रसग वर्णित हैं।

द्वादश सर्ग–द्वादश सग मे बलराम और शत्रु सेनाओ का वर्णन तथा युद्ध का वर्णन है।

त्रयोदश स–इसमें राजाओ के द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन है।

चतुर्दश सर्ग–इस सर्ग म बलराम द्वारा शिशुपाल को परास्त कर आकाश में फेंकना बताया गया है।

दशदश सर्ग-इस सर्ग मे युद्ध के पश्चात् युद्ध भूमि का वर्णन, रुक्मैया को क्रोध करत हुए कृष्ण का परास्त करन की प्रतिना करना बलराम से सामना न कर सीधे माग से रवा तट पर पहु च कर कृष्ण को घेरना तथा श्री कृष्ण द्वारा रुक्मैया का पराजित कर दण्ड देन का और बलराम द्वारा कृष्ण के समाप पहु चने का वर्णन है।

षोडश सर्ग-द्वारिका में कृष्ण रुक्मिणी के स्वागत की आयोजना और कृष्ण रुक्मिणी विवाह आदि का वर्णन है।

सप्तदश सर्ग-कृष्ण और बलदेव का राज सभा म आगमन उग्रसेन द्वारा युद्ध वर्णन, रुक्मिणी का शृगार, सन्ध्या, चन्द्रोदय, रास क्रीडा और कृष्ण के अन्तर्धान होने का वर्णन है।

अष्टादश सर्ग-कृष्ण के अन्तर्धान होने पर रुक्मिणी और सखियो की विकलता कृष्ण का पुन प्रगट होना, तथा रास क्रीडा और जलविहार आदि क वर्णन है।

एकोनविंश सर्ग-इस सर्ग मे रात्रि, कृष्ण रुक्मिणी मिलन, प्रभात षट ऋतु विहार आदि का वर्णन है।

विंश सर्ग-इस सर्ग मे कृष्ण रुक्मिणी से विनोद वार्ता करते हुए रुक्मिणी की भक्ति परीक्षा करते हैं। रुक्मिणी मूर्छित होकर गिर पडती है तो कृष्ण उसका उपचार कर पुन उसको अपने प्रेम मे आश्वस्त करते हैं।

एकविंश सर्ग-इसमे सक्षिप्त भागवत-कथा वर्णित है।

६५ २। इस प्रकार परिणयकार न रचना को महाकाव्य रूप देने का प्रयत्न किया है। राम क्रीडा जैसी नवीनता भी परिणय में दृष्टिगोचर होती है। वीर रस की ओर कवि का अधिक झुकाव है और अनेक सर्गों में युद्ध-वर्णन किये गये हैं। रास जलक्रीडा और कृष्ण रुक्मिणी मिलन में शृगार भी हैं। अन्य रस गौण रूप में हैं। परिणय के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं। —

रुक्मिणी की विकलता

अति शोचति मोचति आमुन का गुणी ब्याहनि जै शिशुपालहि को।
क्षण ला रही बावरी सोतह बाल विचारि शियो पुनि लालहि को।।
तन स्वेद छयो मुख सूखि गयो को कहै रुक्मिणी के हालहि को।
मरिहो विष सा बरिहा शिशि को बरि हो जिन्हे बीस गुपालहि को।।

रुक्मिणी का पत्र लेखन

खजन नयनन रजन काजर प्रेम के आमुन की मसि कीनी ।
कोमल आगुरी को कलमें करि कागद प्र चन का करि लाना ।।
नेह ते साने लिखे वर आखर रुक्मिणी केशव के रस भीनी ।
प्रीति भरी बतिया पतिया लिखि छिप्रहि विप्रहि के कर दीनी ।।

रुक्मिणी का नख शिख निरूपण

के सुखमा के सरोवर को विकसो अरविंद अनूपम भावै ।
रावरे आनन देखिबे को किधा आरसी आनन्द की छबि छावै ।।
केशव की तुव नयन चकार को रूप सुधानिधि इन्दु सुहावै ।
भाखे मुनि रघुराज किधो मुख रुक्मिणी सिन्धु बढावै ।।

कैधो सुधा के सरोवर के ढिग साहे मृणाल उभय अति भाये ।
कैधो मयूख मयूरन के पान को पलग पीत द्वै अरध धाये ।।
भाखें मुनि रघुराज किधौं युग हेम के दण्ड अखण्ड सुहाये ।
कैधौं लसै मुखमा की लता किधो रुक्मिणी के भुज द्वै छवि छाये ।।

युद्ध-वर्षा-रूपक

कारे नाग मेघ राजै दुन्दुभी अवाजै गाजैं बाजै वेश बांसुरी बिराजै मोर शोर है
चमकैं कृपाण तेई दामिनी दमकै दौरि बाद बृन्द बून्दन की भई वृष्टि घोर है ।।
फहरैं पताकैं व्योम उहरै ते बकपांति मागे पानो घायल ते चातक वा टोर है ।
इन्द्र चाप चाप झिल्ली झिलिम झनकति हैं,
फैली रणपावस की शोभा चहु ओर है ।।

बसन्त वर्णन

हरिना हरिनी हरष्यौ हरुये हारन में उहरै ।
छबि छाय छपाकर की सुछटा छपा मैं क्षिति छाइ छुये छहरै ।
पिकवाणी पियूप सी पूरति कान सू मानिन के मन मान हरै ।
सू संयोगिनी को है बसन्त सुधा गै वियोगी विचारिन को जहरै ।।[1]

६६ २। इस प्रकार ज्ञात होता है कि परिणयकार वस्तु वर्णन में परम कुशल है। कवि को अलंकार निरूपण में भी पूर्ण सफलता मिली है। युद्ध वर्णन में अवश्य ही भावों

---

१ – श्रीयुत डा० आनन्दप्रकाश जी दीक्षित, वेलि क्रिसन रुकमणी री सम्पादकीय भूमिका से उद्धृत।

और दैत्यों के रूप में कुरानपाठी मुगलमाला का वर्णन कर कवि नाम दोष से वंचित नहीं रह सका है। कवि के मन्तव्य में तत्कालीन अनेक कवियों की भांति मुस्लिम शासक रूपी राक्षसों से रुक्मिणी रूपी भारत लक्ष्मी के उद्धार की भावना रही है। अपनी रचना को महाकाव्य रूप प्रदान करने का प्रयत्न करना कवि की प्रधान विशेषता है।

(६) श्रीकृष्णानन्द व्यास कृत "संगीत रुक्मिणी मंगल"

६७ २। श्रीकृष्णानन्द व्यास लिखित "संगीत रुक्मिणी मंगल" अनेक राग रागिनियों में गेय है। प्रस्तुत मंगल में श्रीकृष्णानन्द ने स्वरचित पदों के अतिरिक्त अपने समय में प्रचलित पद्म, विष्णुदास और उमाकान्त के पदों का कथा क्रम के अनुसार "रागकल्पद्रुम" के अन्तर्गत संकलित किया है।[1] प्रारम्भ इस प्रकार है—

'श्री गणेशायनमः। श्रीरुक्मणीवल्लभायनमः। अथ श्रीकृष्णानन्द व्यास देव रागसागरोद्भव संगीतराग कल्पद्रुम श्रीकृष्ण जी श्रीरुक्मणीजी को विवाह मंगल अनेक राग रागिणी संयुक्त प्रारम्भ।

६८ २। श्रीरुक्मिणी नारद का पैरा लगा तब नारद जी ने वरदान दिया कि श्रीकृष्ण वर मिलें। नारद मुनि ने भीष्मक से भी कहा—

> नारद मुनि भीष्म सो कहत है सुन कुंदनपुर के राइ।
> श्रीकृष्ण देव वाको नाम भणीजे जाक बलभद्र है भाई।
> द्वारामती वाको धाम कहीजे त्रई लोकनाथ जादोराइ।
> वसुदेव देवकी नन्दन कहीय परब्रह्म प्रगटाई॥
> भुव भार उतारन कारण प्रगटे श्रीकृष्णानन्दन सुखदाई।[2]

६९ २। राजा भीष्मक और रानी परस्पर विचार करते हैं कि नारद के वचनों का पालन करना चाहिए और रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से करना चाहिए।[3] नारदजी और माता पिता के वचनों को सुनकर रुक्मया क्रोधित हुआ और कहने लगा 'मैं अपनी बहिन माखनचोरी करने वाले को कभी नहीं दूंगा'। रुक्मया कहता है राजकुमारी का विवाह किसी राजकुल में ही होना चाहिए। राजा भीष्मक अपने पुत्र को समझाने का प्रयत्न करते हैं कि कृष्ण वास्तव में पूर्णब्रह्म परमात्मा के अवतार हैं।[4] रुक्मया अपने पिता राजा भीष्मक के वचनों की उपेक्षा करता हुआ शिशुपाल को लग्न पत्रिका प्रेषित करता है।[5] शिशुपाल ने

---

१ – प्र० श्रीकृष्णानन्द व्यास शाला कालगंज बड़ा बाजार कलकत्ता, वि० सं० १९३ (१-९)।

२ – पृष्ठ संख्या ७। ३ – पृष्ठ संख्या ७।

४ – पृष्ठ संख्या ९। ५ – पृष्ठ संख्या १२।

अपशकुनो और क्रूर ग्रहो की चिंता न करते हुए रुक्मिणी से विवाह करना स्वीकार कर लिया।[1] शिशुपाल के पास लग्न पत्रिका लेकर सूरज भट्ट पहुंचता है। मंत्री ने लग्नपत्रिका देखी तो ज्ञात हुआ कि उसमे राजा भीष्मक का नाम नहीं है। सूरजभट्ट ने स्पष्टीकरण किया कि राजा भीष्मक का विचार कृष्ण के साथ ही रुक्मिणी का विवाह करने का है।[2]

१०० २। शिशुपाल ने अनक देशो के सहयोगी राजाओ को बरात मे सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण पत्र भेजे। शिशुपाल बरात सजा कर कुंदपुर पहुंचा। रुक्मिणी की विकलता का वर्णन इस प्रकार है —

> वचत पाती फटत छाती सुरत रुक्मिणि मे गई।
> लेत सास उसास जलधर नैन आसू बहावई॥
> वियोग रुक्मिनी के भए उर उमग उमग भूमी भरी।
> प्राण कुंदनपुर हो माही देह द्वारका रही खरी॥
> कठिन प्रीत की रित माधो रुकमनी कृष्ण से इतनी कही।
> कृष्णानन्द म आसू बहत है जाहे लागे सोइ लही॥[3]

१०१ २। कृष्ण ने ब्राह्मण का विधिपूर्वक स्वागत-सत्कार किया। उसको चन्दन की चौकी पर बैठाया और रत्नजटित थाल मे रुचिकर व्यंजन परोसे। कृष्ण भगवान ने ब्राह्मण की महिमा का बखान किया और उसको रथ मे बैठाकर कुंदनपुर की ओर चले। पीछे से बलदेव जी बरात सजा कर चले।

१०२ २। शिशुपाल को उसकी भाभी कुंदनपुर नहा जाने के लिए समझाती है और कहती है कि रुक्मिणी वास्तव मे हरि की प्यारी है। वह हरि के साथ ही विवाह करेगी और तुमको पछताना पड़ेगा।[4] शिशुपाल बरात लेकर कुंदनपुर आ गया। शिशुपाल का कुंदनपुर मे आना राजा भीष्मक और रुक्मिणी को अच्छा नहीं लगा। रुक्मया अपनी बहिन को समझाकर अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न करता है किंतु उसको सफलता नहा मिलती है। रुक्मिणी ने झरोखे से देखा कि एक ब्राह्मण जा रहा है। रुक्मिणी ने ब्राह्मण को अपने पास बुलाया और पत्र देकर कृष्ण के पास भेजा।[5]

१०३ २। ब्राह्मण द्वारका के लिए रवाना हुआ किंतु मार्ग मे रात होने पर सो गया। प्रातःकाल होने पर ब्राह्मण ने अपने आपको द्वारका में पाया। द्वारपाल से सूचना प्राप्त

---

१ — पृष्ठ संख्या १३। २ — पृष्ठ संख्या १४।
३ — पृष्ठ संख्या २५। ४ — पृष्ठ संख्या १५–१६।
५ — पृष्ठ संख्या २२।

कर कृष्ण भगवान ने उसका अपने पास बुलाया। ब्राह्मण ने कृष्ण को रुक्मिणी की पत्रिका दी। कृष्ण ने पत्र को हृदय से लगा लिया और कुन्दनपुर के लिये प्रस्थान किया।

१०४ २। रुक्मिणी अपनी सखी के आगे कृष्ण के प्रति प्रेम प्रकट करती हुई उनकी प्रतीक्षा करती है—

परज तितारा। सखी प्रति वचन रुकमनिजी।

कहो री सखी अब कैसा किजीये।
लोकलाज कुल कान सौ तो जीये।
कृष्ण बिरह मे भइ हु बावरी हरि अपनी कृपा ते दरश दीजिये ॥
तन मन नेन म मोहिनो मूरतो नारद वचन सो हृदय पतीजीये।
कृष्णानन्द मैं मगन भई हु चरण शरण प्रभु अपने लीजिए ॥[1]

१०५ २। रुक्मिणी अपने भाई रुक्मैया से कहती है कि शिशुपाल को बुलाकर उसने बुरा किया वह तो कृष्ण से ही विवाह करेगी—

सोरठ ति० रुकमनी वचन भैया प्रति।

अरे बन्धु मोसे बुरी रे करि तुम लाय।
शिशुपाल चढाई कहा गई तेरी अकल बुरि।
मुरख मातो है मतबारो अपनी अकल करि।
मेरे तो मन कृष्ण विहारि वाके शरन परि।
तन मन नन म मोहनी मूरत बोहो मोकू बरी।
कृष्णानन्द म रहु निशि बासर वाकी वाको शरणशरन परो रे।[2]

१०६ २। प्रस्तुत रुक्मिणी मगल मे एक पद पजाबी भाषा का भी उपलब्ध होता है जिसमे श्रीकृष्ण का कुन्दनपुर आगमन चित्रित किया है —

झझोटी तितारा।

रुकमण दे राणी विरहण दा मेडा स्याम मिली नी पावे ॥
द्वारका नगर मे आया लडका नन्द दी उसदे दृगा मे।
सोहै हतीयारामें आनन्द रलीया नीवे ॥
कुण्डल चमक चट भृकुटी मटक अन मुकटलक।
अटके द्रग सोहत कर पीत पर छलडा भलडावे।
बाकडा तीखडा नोकडा साहणा मोहना।

• पृष्ठ सख्या ३३। २– पृष्ठ सख्या ८।

गवध्दिलाद महरमसा दलयार मेणु भलीया नीरे ॥
रैंदडीया उसदी यादडीया आखडीया उनदेडी सूर म देवडया।
उस दे घोलडीया नवतडीया रतडीया पाछदयोया नीक्तिडीया।
यादडीया मानु भादडीया सन्के करेडीया जिदडीया कुरबानडीया।
मापलकर सानु घायल कीदा हुण लीता चित चोर सोडा यारानन वुलो
पानो शेरु।

नर्ग मेरी देख के कहुने लगे यो हकीम।
स्याम देखने की चाह इश्क की बिमारी हति।
सना लागी तिसकी तिसवी नार हन जाय आन मिलाव॥
स्याम को तिस दखे तिस जाया मेणु प्यारा मिलिया लीवे रु० ॥[1]

१०७ २। रुक्मिणी अविका-पूजन क साथ हा वर क रूप में कृष्ण की प्राप्ति हेतु प्राथना करता है। इस पद में द्वारिकाधीश कृष्ण के साथ ही यशोदा माता और बलदेव जैसे देवर की कामना भी करती है।[2]

१०८ २। मगात रुक्मिनी मगल' मे उमान्त कवि क पद भी हैं। एक पद म कृष्ण और रुक्मिनी क विवाह की कामना की गई हैं–

जजैवन्तिति

कु दनपुर के लोग लगाई देखन चले हैं बरात के ताइ।
प्रथम हो निरख चैध्य को मव के मन कु बहु सोधि नहि आइ।
यह मरकट के सोह सूरत रुकमनि लक्ष्मी रूप वनाइ।
रुक्मनि नायक यह वर नाहि रुक्मैया कहा करी है सगाइ।
फिट फिर कहे आगे कु जावे पहाचे तहि जहा जादुराइ।
सुदर श्याम मनो हर मुरत देखेत हि सब गए हे लोभाइ।
ऐसो वर रुकमनि हि जोइये धाता जु यह बनाइ।
गौर सावल सोभा हो वेना मेघ स्याम दामनि चमकाइ।
रुकमनि कृष्ण विवाह करो प्रभु हमरि किजी य मव पुरलाइ।
उमादत रुक्मनि बडभागिन बलकृष्ण जोइ मन भाई।[3]

१०९ २। रुक्मिणी मगल में कवि न रुक्मिणी की कामना इस प्रकार व्यक्त की है

१– पृष्ठ सख्या ४२।
२ – पृष्ठ सख्या ४३।
३ – पृष्ठ सख्या ४४।

नमन करू देवी को नमन गुरु जगदीश ।
भरतार तो दीजे गोपाल जु हो मेरे जनम जनम के इश ।
पुरी तो दीजे दारमितो है गामती नदी के तीर ।
कृष्णानन्द म मगन रहु हा विहरु मि धु तीर ॥[1]

११० २ । कवि कृष्णान न्द व्यास ने देवी पूजन, रुक्मिणी हरण, शत्रु नरशों और रुक्मया की पराजय, रुक्मया की दुदशा आदि का वर्णन एक ही पद में कर दिया है ।[2]

१११ रुक्मिणी की विदाई का वर्णन लोकाचारानुसार करत हुए कवि न मार्मिक प्रसग उपस्थित किया है ।[3]

११२ २ । रुक्मिणी मगल ' विषयक पदो से श्रीकृष्णान द का सगीत शास्त्र क साथ ही भाषा और विषय पर भी अधिकार प्रकट होता है । ज्ञात होता है कि कवि न रागकल्पद्रुम[4] का सकलन करते समय ही प्रसगानुसार अपने पदो की रचनाए की हैं ।

(७) प्रभुदास कृत "रूक्मणी-मगल"

११३ २ । डा० सत्येन्द्रजी और चन्द्रभानजी रावत न ब्रज प्रदेश मे विवाह क अवसर पर गाये जाने वाल रुक्मणी मगल" को लिपिबद्ध किया है । [5]रचना के प्रारम्भ मे बताया गया है कि रुक्मिणी पूर्व जन्म मे सीता थी और उसने पाताल में प्रवेश कर राजा भीष्मक के यहा जन्म लिया था —

सीता गई समाई लच्छि म्वा झुलमन लागे ।
दरसन पाए नाइ, करम के बडे अभागे ।
डीक फोरि के लछिमन रोए, भेटे कठ लगाई ।
आपुन जाइ पताले बैठी केस रहे फौराइ ।
सीता गई समाई जनमु भीखम घर लीयौ ।
धरती धरयौ न पाउ नाम रुक्मिनि धरि दीयौ
ऐसी बेटी मैं जनू ऐसी जानें न काई ।
धरते निकरी अगन भई ठाडी सूर्ज की सी लोई ।[6]

१– पृ० स० ४८ । २–पृ० स० ५० । ३–पृ० स० ६३ ।
४–प्रथम सस्करण १८४३ ई०, द्वितीय सस्करण १९१४ ई०, स० नगेन्द्रनाथ वसु, प्रका० बगीय साहित्य परिषद, २४३ ।१ अपर सकू लर रोड कलकत्ता ।
५–भारतीय साहित्य वर्ष २, अक २, अप्रेल १९५७ हिन्दीविद्यापीठ, वि० वि०, आगरा पृ० १५१ ।
६–छन्द संख्या १४ । २ ।

११४ २। आगे बताया गया है कि एक समय रुक्मिणी मानसरोवर में नहाने के लिए चली। सहेलियों ने समझाया कि रुक्मिणी को देर तक खड़े हुए केश नहीं सुखाना चाहिए। चारों ओर जगत है और कोई बाहु पकड़ कर रथ में बठा ले जावेगा।

११५ २। रुक्मिणी ने ब्राह्मण के द्वारा श्रीकृष्ण को संदेश भेजा। ब्राह्मण ने रुक्मिणी द्वारा एक कंगन मिलने पर लालच में दूसरा कंगन भी माग लिया। ब्राह्मण फिर द्वारका नहीं पहुंच कर मार्ग में एक तालाब के किनारे सो गया।

११६ २। भगवान श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण को सोया हुआ जान कर नारदजी के साथ अपना रथ भेजा और ब्राह्मण को लाकर द्वारिका के फूलबाग में सुला दिया। ब्राह्मण अपने आप को अज्ञात स्थान में पाकर चिन्ता करने लगा—

> उठिवे बैठ्यौ भयौ करै न्याने मनि पछिताए।
> ऐसो वरियौ कौन क्याते मोइ -या लै आए।
> आजु मेरी ब्राम्मनि रोइ मरैगी, जानें कौन को सरनि गहैगी।
> रुक्मिनि तैंने बादर फारे, मेरे घरते ब्रिम्मा तारे।
> करता नें बदन दुराए माधौ के जोरें आए।
> सुनि लीजो अरजी मेरी मैंने सरनि लई ए तेरी।
> क्या असुरन की भीर परेगे, क्या डरपै करना तेरी।
> बन्दूक घड़ाघड़ बाजें। बम्मन म डका गाजें।
> आजु कहा छिपे गुफा में जाई, आजु मेरी गर्जरि लेउ जादौ राई।

११७ २। आगे द्वारका का वर्णन है—

> छीपी बसे सुनार, पौरि पै छनिया -यारे,
> कोरी वसें चमार किनरु के छवे उसारे।
> बेवस हेरे वगत एँ, विन के अटा अगास,
> माधौ ने द्वारामलि देखौ सिरीकिस्न के साथ।
> महल बने नौरग रग विच मारे भाई,
> नर्चे पातुरा द्वार किस्न घर वजै बधाई।
> कुविजा तो चन्दन घिसे धरै किस्न के हाथ,
> माधौ ने पातो दई, सिरीकिस्न के हाथ ॥

११८ २। द्वारका में ब्राह्मण को अच्छा भोजन करवाया गया और लोक प्रथा के अनुसार गारी भी गाकर सुनाई गई।[1] श्रीकृष्ण बरात सजाकर कुण्डनपुर पहुंचे। कोई

१—छन्द सं० १८, १९।

सुखपाल मे सवार होकर और कोई हाथी, ऊंट तथा घोडे पर चढ कर कृष्ण की बरात म आया। श्रीकृष्ण जी ने शिशुपाल को कहा—

> बडी कठिन की चोट मिलेगी रुक्मिनि रानी ।
> बिज्रवारे की माग ऐ, तेरी कया उनमानि ।[1]

११६ २। शिशुपाल को गाली सुनाती हुई कुण्डलपुर की स्त्रिया कहती है—

> तैने गरब कियौ बजमारे, मेरे हरिजी तें पहिले आयौ।
> अब माढ मे मूड मजा मारतु औ कौह भातु नाइ खायौ।
> ब्याहन कह तो वा हरिकी रुक्मिनी बाधि सेहरौ आयौ।
> दस हजार की भीर सजी ऐ अब तैने नेक खीपु नाउ खायौ।[2]

१२० २। प्रस्तुत रचना म श्रीकृष्ण द्वारा हरण नहा होकर रुक्मिणी को नारद जी झपट कर श्री कृष्ण के रथ मे बैठाते हैं।[3]

१२१ २। श्री कृष्ण ने रुक्मैया का बाध लिया। रुक्मिणी ने कृष्ण से निवेदन किया कि यदि रुक्मया को नहीं छोडा गया तो कुण्डलपुर मे कोई उन्हें पीने क लिए हुक्का नहीं देगा और कोई उनकी चिलम पर आग नहीं रखगा—

> बे जगुला बगुला नही, बेसार ससुरारि,
> छोडो मुसक मेरे बीर की ।
> को तुम हुक्का देइगौ, को धरै चिलम पै आच
> छोडो मुसक मेरे बीर की ।
> तुम सामन मे जाउगे हम जागे हरियाली तीज,
> छोडा मुसक मेरे बीर की ।[4]

१२२ २। रुक्मैया क योद्धाओं ने श्रीकृष्ण से युद्ध किया कि तु अ त मे उनकी हार हुई।[5] कृष्ण स निवेदन किया गया कि वे रुक्मिणी को कु वारी न ले जावें और उसके साथ विधिवत् विवाह कर लें—

> मनि क्वारि लें चलै मनौ मेरौ नाम धरावै,
> हारि भमरिया डारि रुक्मिपुर नयौ बसावै।

१–छन्द स० २५। २–छन्द स० २७।
३–छन्द स० २८। ४–छन्द स० ३१।
५–छन्द स० ३१।

द्वापर ओर तिरेता मे सब कोई जनियौ धीम्र।
क्वारिन कू वे खेचि लैं जाइ सूनि करता जगदीस ॥[1]

१२३ २। श्रीकृष्ण ने तदुपरान्त रुक्मिणी से विधिवत् विवाह किया। अन्त मे प्रयुक्त प्रभुदास नाम से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत रचना का कर्ता प्रभुदास है—

सोलह से सहस नाम हरि के कहत म सुख पाइए
कहे प्रभुदास प्रभु के रहसि मगल गाइये।

१२४ २। प्रस्तुत 'रुक्मिणी मगल" म ग्राम्य और पिछडी जातियो की भावनाए कवि ने सफलता पूर्वक व्यक्त की हैं। सन्देश वाहक ब्राह्मण का लालची बनाया गया है और रुक्मया की हत्या करने पर कृष्ण को जाति से बहिष्कृत कर उनका हुक्का पानी बन्द करने की धमकी भी दी गई है। रचना का प्रारम्भ भी नवीनता लिये हुए हैं।

(च) कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों की प्रेरक परिस्थिति

१२५ २। कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्यो मे मुख्यत वीरता, शृगार और भक्ति का समन्वय हुआ है। मध्यकालीन राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियो के परिणामस्वरूप ही हमारे कवि अपनी रुचि के अनुसार वीरता शृगार और भक्ति के तत्व अपनाते रहे, उनका निरूपण अपनी रचनाओं म करते रहे है।

१२६ २। भारतवर्ष पर होने वाले मुस्लिम आक्रमणो, भारतीय नरेशों की पराजयो और भारत में मुस्लिम साम्राज्यो की स्थापनाओं ने भारतीय जनता को आतंकित कर दिया था। भारतीय जनता म मुस्लिम शासन का उखाड फेंकने की भावनाए उत्पन्न होती रही। पृथ्वीराज चौहान का तराईन युद्ध में पराजय क पश्चात् भारतवर्ष में क्रमश गुलाम, तुगलक, खिलजी, लोदी और मुगल सल्तनतें स्थापित हुई और इन सभी सल्तनतो को छोटे मोटे अनेक विद्रोहो का सामना करना पड़ा।

१२७ २। मध्यकालीन मुस्लिम शासन के युगो मे हमारा जन समुदाय मुस्लिम शासको की क्रूरता और विलास सम्बन्धी भावनाओ से भी वचित नहीं रह सका। इस युग में नारी को भोग विलास की वस्तु मान लिया गया। मुस्लिम शासको के महलो म अनेक देशो की स्त्रिया रहती थी और राज्य की आय का बहुत बडा भाग इन स्त्रियो के लिए खर्च होता था।

१– छन्द स० ३२।

१२८ २। मुस्लिम शासकों के अनुकरण में इनके आश्रित राजपूत राजा भी अधिक से अधिक सुन्दरी कन्याओं को अपने महलों में रखने के लिए तत्पर रहते थे। किसी राजा द्वारा विवाह के अवसर पर पहुँच कर किसी कन्या का अपहरण करना इस काल की सामान्य घटना हो गई थी। राजपूत राजाओं में पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष और संघर्ष भी प्रायः सुन्दरी कन्याओं के विषय में होते रहते थे।

१२९ २। कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों में हमारे जन प्रतिनिधि कवियों की स्वाधीनता और वीरता सम्बन्धी भावना की भी अनूठी अभिव्यक्ति हुई है। रुक्मिणी भारत-लक्ष्मी के रूप में चित्रित हुई है जिसका उद्धार असुर-संहारक भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा हुआ। कृष्ण बलराम और यादव वीरों की युद्ध में प्रकट की गई वीरता के रूप में मूलतः हमारे कवियों की मुस्लिम शासन को उखाड़ फेंकने की भावना है।

१३० २। जब कि मुसलमान शासक हिन्दू राजकुमारियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करने में गौरव का अनुभव करते थे और कतिपय राजपूत राजा भी प्रलोभन में पड़ कर अथवा भीतिवश अपनी पुत्रियों या बहनों का विवाह मुस्लिम राजपरिवारों में करने लगे थे। अनेक हिन्दू राजकुमारियाँ ऐसे विवाह सम्बन्धों को अपनी इच्छाओं के विपरीत समझती हुई ऐसी परिस्थितियों में त्राण पाने का उपाय भी करती थीं। प्रसिद्ध है कि रूपनगर की राजकुमारी का विवाह सम्बन्ध औरंगजेब से निश्चित हुआ तब राजकुमारी ने उदयपुर के महाराणा राजसिंह को रुक्मिणी की भांति संदेश भेजकर औरंगजेब से त्राण पाने की प्रार्थना की। राणा राजसिंह ने भी विवाह के अवसर पर सेना सहित पहुँच कर औरंगजेब का मार्ग अवरुद्ध किया और विधिपूर्वक रूपनगर की राजकुमारी से विवाह किया। इस विषय का एक राजस्थानी गीत इस प्रकार है —

गीत वडो सांणोर

घरा वैध खग खेत चत्रकोट गढ हलडा,
पुराव नखत्र मुवरख प्रमाणो।
साह अदरग अवतार सिसिपाल रौ
राजसी किसन अवतार राणो ॥१॥
माडियो ज्याग कमधा धरै माढहो,
लिखत वर सुवर ईसवर लिखायो।
कथन सूण द्वारका हूत आयो किसन,
उदेपुर हूत इम राण आयौ ॥२॥
घुरत सद नगोरा सभे हिक साथ घणा
महरा वाधि बे बर सनेही।
चाव कर कुनणपुर एम चवरी चढे,
जगारा किसनगढ जोध जेही ॥३॥
एक अधकार हीदू तुरक ईखता,
जकी तो बात ससार जाणी।

विसन घरि रुकमणी ले गयो कवारी,
प्रमर रे कलोधर परणि प्राणी ।।४।।

धरा धक घूण गढ कोट चाढे धके,
देस रावणतणे दिये खगदाह ।

दैलकै गयो सिसपाल मायो पटकि,
पटको सिर हमरकै गयो पतसाह ।।५।।

राजरा विरद बाखाण गुण रायवर,
कथन सुणि दिलीचे वचि कहसी ।

राजसी राण हिंदवाण भ्रम राखता,
राण बाखाण जुग च्यार रहसी ।।६।। [1]

१ पूर्वानक्षत्र युक्त शुभ समय पर धरा का वेध करने तथा क्षत्रियो को खेद पहुचाने के लिए दिल्ली से बादशाह औरंगजेब शिशुपाल के अवतार के रूप में आया तो चित्तौड के महाराणा राजसिंह कृष्ण के अवतार के रूप में पहुचे ।

२ आज राठोडो के घर लडकी का विवाह है और यज्ञ आयोजित हुआ है । ईश्वर ने राजकुमारी के भाग्य में उत्तम वर लिखा है इसलिए रुक्मिणी का स देश प्राप्त कर द्वारिका स श्रीकृष्ण आये उसी प्रकार उदयपुर से महाराणा राजसिंह आये है ।

३ नक्कारो का नाद हो रहा है, और कु दनपुर रूपी किशनगढ मे महाराणा जगतसिंह का वशज राजसिंह और बादशाह औरंगजेब दोनो ही वर सेहरा बाधकर एक साथ तयार हुए है । दोनो वर उत्साह पूर्वक विवाह मडप की ओर चले ।

४ हि दुओ और मुसलमानो का अधिकार समझते हुए आज समस्त ससार यह जान गया कि कृष्ण तो रुक्मिणी को कु वारी ही हरण कर ले गये कि तु महाराणा अमरसिंह का वशज राजसिंह विवाह करके राजपुत्री को लाया ।

५ दुर्ग और कोट सहित पृथ्वी का कम्पायमान कर राणा राजसिंह ने रावण रूपी बादशाह के देश का खडगरूपी अग्नि से दग्ध कर दिया । पहिले शिशुपाल जिस प्रकार कृष्ण के समक्ष मस्तक झुका कर चला गया उसी प्रकार अब बादशाह हतोत्साह होकर मस्तक धुनता हुआ चला गया है ।

६ महाराणा राजसिंह के विरद और गुणो का वर्णन सुन कर दिल्ली म लोग कहेंगे कि हि दुधर्म की रक्षा करने से महाराणा राजसिंह का यश चारो युगो मे स्थाई रहेगा ।

१–महाराणा यश प्रकाश, स० ठाकुर भूरसिंह शेखावत, जयपुर, प्रका० गगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना बम्बई, वि० स० १९८२, पृ० १६६ ।

१३१ २। उक्त गीत कम्माजी कृत कहा जाता है। कम्माजी मारवाड़ में कुचामण से छ मील चारणवास नामक रतनू शाखा के चारणों के गाव के निवासी माने गये हैं।[1]

१३२ २। इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन परिस्थिति में हमारे समाज एवं कवियों का ध्यान सहज ही श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी पावन प्रसंग की ओर आकर्षित हुआ तथा तत्कालीन वीरो और वीरांगनाओं के लिये श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह एक अनुकरणीय आदर्श बन गया। पृथ्वीराज रासो में भी पृथ्वीराज और पद्मावती विवाह की तुलना श्रीकृष्ण रुक्मणी विवाह से की गई है—

"ज्यो रुक्मनी कंहर वरी ज्यो वरि संभरि कांत।[1]

१३३ २। अनेक कवियों ने कालयवन, शिशुपाल और जरासंधादि को स्पष्ट रूपेण मुसलमान मानते हुए रुक्मिणी रूपी भारत लक्ष्मी अथवा हिंदु कन्या का भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उद्धार होने का चित्रण किया है। यथा—

डाढिन युत मुख लसहिं घनेरे। जनु छतना मधु माखिन केरे॥
कोई कुरान बाचहिं नृप पासे। कहुं गणिका बहु करहिं तमासे॥
यवन लसो सब श्याम पोसाकें। मनहुं नील घन रहित बलाकें॥
कोइ आशिक सुनि श्रवण कुराना। उझकहिं झूमहिं मनुहु दिवाना॥[2]
मिले म्लेच्छ भीर जिके अंग मोटा, मिले दाणवा वंस दाढी कदोटा।
मिले साहजादा जिके मिल सूरा मिलयेह वाणी जिके अंग पूरा।
मिले कोइ पैकबरा काइ बाजी मिले कोउ गोरबरा कोउ गाजी।[3]

१३४ २। मुस्लिम शासनकाल की विवशता के युगों में एक मात्र असुर संहारक करुणामय परमात्मा का ही अवलम्बन रह गया था और ऐसी ही अवस्था में हमारे कवियों ने अपने हार्दिक उद्गार श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह परक काव्यों में व्यक्त किये।

१—महाराणा यशप्रकाश, सं० ठाकुर भूरसिंह शेखावत, मलसीसर जयपुर।

२—महाराज रघुराज सिंह, रुक्मिणी-परिणय द्वितिय सर्ग।

३—कवि विट्ठलदास रुक्मिणी हरण छन्द सं० ३०-३१, आनन्द प्रकाश जी दीक्षित का निबन्ध "रुकमणिहरण", बीठलदास री कह्यो शोध पत्रिका उदयपुर, भाग ११, अंक १।

तृतीय अध्याय

श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी चारण काव्य

१–कर्मसी साखला कृत श्रीकृष्ण जी री वेलि

२–महाराज पृथ्वीराज कृत वेलि कृष्ण रुक्मिणी री—

- क कथा समीक्षा
- ख वेलि का रचना काल
- ग रस व्यजना
- घ भाषा शैली
- ड वस्तु वर्णन
- च अलकार सान्दर्य
- छ छन्द प्रयोग
- ज वेलि का काव्य रूप
- झ पृथ्वीराज रचित वेलि और कर्नसिह साखला रचित वेलि
- ञ. "क्रिसन रुक्मिणी री वेलि" की टिकाए —
  - (१ लाखाजी चारण की टीका
  - (२) कवि सारग कृत सस्कृत टीका
  - (३) कवि कनक लिखित सस्कृत टीका
  - (४) श्री सार रचित सस्कृत टीका
  - (५) शिव निधान कृत राजस्थानी टीका
  - (६) जय कीर्ति कृत टीका
  - (७) कुशलधीर कृत टीका तथा अन्य प्रतिया और टीकाए
- ट वेलि की सस्तुति

३–सायां जी झूला कृत रुक्मिणी हरण

सूर कृत रुक्मिणी हरण

५–मुरारीदान बारहट कृत 'विजय विनोद'

६–विट्ठलदास कृत रुक्मिणी हरण

७–किशन किलोल

तृतीय अध्याय

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-सम्बन्धी राजस्थानी चारण काव्य

१ ३। राजस्थानी साहित्य के विकास में चारण साहित्यकारों की विशेष देन है। "चारण" शब्द की व्याख्या "चारयंति कीर्तिम् इति चारण" अर्थात् कीर्तिगान करने वालों के रूप में की गई है। चारणों का उल्लेख वाल्मीकि रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवतादि पुराणों में भी माना जाता है।[1] चारणों की मुख्य शाखाएं चार हैं—१ मारू, २ काछेला, ३ मारुठिया और ४ तुम्बेल तथा उपशाखाएं १२० तक हैं।[2] चारण मुख्यतः शाक्तमतानुयायी हैं और इनके रीति रिवाज, खान पान तथा रहन सहन राजपूतों के अनुरूप हैं।

२ ३। चारण मुख्यतः राजदरबारी कवि रहे हैं। चारणों और क्षत्रियों का घनिष्ठ आत्म सम्बन्ध रहा है। इस विषय में एक दोहा प्रसिद्ध है—

> चारण क्षत्री भाइया जा घर खाग तियाग।
> त्याग तियागा बाहिरा तासु लाग न भाग ॥

३ ३। चारण कवि वीरों के प्रशंसक और कायरों के कटु आलोचक रहे हैं। चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं अथवा अन्य शासकों में किसी प्रकार के अवगुण देखे अथवा उनके द्वारा कोई अनुचित कार्य होते देखे तो निडर होकर प्रभावशाली वाणी में उनकी भर्त्सना की है।[3] अनेक चारण कवियों ने सांसारिक सुखोपभोगों को तुच्छ समझते हुए ईश स्तवन के रूप में ही अपनी काव्य रचनाएं प्रस्तुत की। अनेक चारण कवि सरस्वती पुत्र होते हुए युद्ध भूमि में अपनी वीरता से महाकाल शिव को रिझाने वाले हुए हैं। चारण कवि शासकों के सेनापति प्रधान परामर्शदाता और विद्यागुरु रहे हैं तथा अपनी गद्य पद्य मय विविध विषयक रचनाओं में समय का अंकन प्रभावशाली रूप में करते रहे हैं। इस प्रकार चारण कवियों की भाषा शैली का प्रभाव राजस्थान के अन्य कवि-वर्गों पर भी हुआ। अनेक

१—कविराजा श्यामल दास लिखित वीरविनोद प्रथम भाग, पृ० १६८।

२—महाकवि सूर्यमल कृत वंश भास्कर भाग १, पृ० ८४।

३—श्री सीताराम जी लालस, राजस्थानी शब्दकोष प्रस्तावना, पृ० १०७-११३।

राजपूत कवियो ने तो चारण शैली को पूर्ण रूप में अंगीकृत किया है और यहा कारण है कि श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह-सम्बन्धी चारण शैली में चाध्य चारणों के साथ हा अन्य कवियो ने भी सफलता पूर्वक लिखे हैं ।

१–कर्मसी सांखला कृत श्रीकृष्ण जी री वेलि

४ ३ । कर्मसी अर्थात् कर्मसिंह सांखला कृत 'श्रीकृष्ण जी री वेलि' चारण-शैली में रचित श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी काव्यों में एक महत्वपूर्ण रचना है । कवि कर्मसी को "रूणेचा" भी कहा गया है —

'सांखुला करमसी रूणेचा"'

५ ३ । सम्भवतः इनके पूर्वज रूण नामक स्थान के निवासी थे इसीलिये ये रूणेचा कहे गये । कर्मसिंह उदयपुर के महाराणा उदयसिंह और बीकानेर के राव कल्याणमल के समकालीन थे । कवि का विशद परिचय "वेलि के पुष्पिका" सम्म में अथवा किसी अन्य स्रोत में प्राप्त नहीं होता है ।

६ ३ । श्रीकृष्णजी री वेलि की एक मात्र प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में उपलब्ध है ।[१] प्रति के पुष्पिका लेख से ज्ञात होता है कि इसका लेखन वि० स० १६३४ वैशाख शुक्ला तृतीया रविवार को सावलदास ने बीकानेर महाराजा श्री रायसिंह जी के सैनिक पडाव मे बूसी नामक स्थान पर किया—

'इति सांखुला करमसी रूणेचा कृत श्रीकृस्न जी री वेलि । लिपित सावलदास सागावुत । सागो ससारचदउत । ससारचद वीदावुत । वीदो महाराजाधिराज महाराय श्री जोधइ रो ॥ लिषित ग्राम वूसी मध्ये सवत् १६३४ वर्षे वैशाख शुदि ३ दिने रविवासरे घटी ८ । ४१ मृगसिर नक्षत्रे घटी ४० । ४६ शुकम्मनामयोय । घटी ५१ । १६ महाराजाधिराइ महाराइ श्री राईसिंघ जी रइ साथि थकइ सावलदासि पोथी] लिपी कटक माहे ।" २

७ ३ । वेलि का लिपिकर्ता उक्त सावलदास बीकानेर राज्य के संस्थापक राव बीका

१– अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर की हस्तलिखित प्रति संख्या १६६, पुष्पिका ।

२– क–हस्तलिखित प्रति संख्या १६६ ।

ख–बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल सर्वे आफ राजपूताना, ए डिस्क्रिप्टिव केटलग खण्ड २, भाग १, डा० एल० पी० तेस्सीतोरी, एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता, पृष्ठ ४५ ।

के भाई बीदा के पौत्र सागाजी का पुत्र था। राव जैतमी ने द्रोणपुर पर चढ़ाई कर सागाजी को वहा पर नियुक्त किया था। वि० स० १६३४ में वेलि को लिपिबद्ध किया जा चुका था, जिससे प्रकट होता है कि वेलि की रचना इससे पहले हो चुकी थी। वेलि की प्रति स यह नहीं ज्ञात होता है कि इसकी प्रतिलिपि किसी प्राचीन प्रति क आधार पर हुई अथवा इसको मौखिक रूप मे किसी म सुन कर लिपिबद्ध किया गया। यह भी सम्भव है कि इस कृति मे इसक नाम क अनुसार कृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन कुछ विस्तार मे रहा हो। विद्वानो न सवत् १६०० क लगभग इसका रचना काल अनुमानित किया है।[1]

८ ३। इस वेलि का नाम किसन जी री वेलि दिया गया है[2] किन्तु पुष्पिका में इसका नाम "श्री क्रस्न जी रा वेलि" उपलब्ध होता है। इस वलि म "वेलियो गात' के बाईस दोहले ही उपलब्ध होत हैं। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने लिखा है, "प्रतीत होता है कि जसे सम्पूर्ण रचना का यह अन्तिमाश है।"[3] किन्तु नख शिख निरूपण सम्बधी अनेक दोहले अ तिमाश न होकर रचना के प्रारम्भिक भाग के भी हो सकत है। महाराज पृथ्वीराज न भी अपनी वेलि में रुक्मिणी का नख शिख-वर्णन काव्य क प्रारम्भ म ही किया है। इस काव्य का अ तिमाश प्रद्युम्न जन्म अथवा सयोग शृ गार युक्त षटऋतु वर्णन ही अधिक सम्भव है। यह भी सम्भव है कि लिपिकर्ता ने जिस क्रम से जितनी इस रचना को सुना अथवा जिस क्रम से जितनी उसको यह याद रही उसी क्रम स उसने उसको लिख लिया। 'इति सावुल करमसी रूणेचा कृत श्री क्रस्न जी री वलि" से स्पष्टरूपण ज्ञात होता है कि इसका रचना सावला कर्मसिंह रूणेचा द्वारा हुई किन्तु इस विषय में डा० सावित्री सिन्हा न बहुत भ्रामक मत प्रकट किया है – राव योधा की सार वाली रानी-कृष्ण जी रा वेनी ' क नाम स डिंगल काव्य में अनेक रचनाए की गईं। इसी नाम का एक हस्तलिखित प्रति की रचयिता श्री टेसी टोरी ने इस रानी को माना है जिसकी प्रथम पक्ति है , " अनोपम रूप सिंगार अनोपम भूषण अग।"[4]

६ ३। ज्ञात होता है कि डा० सावित्री सिन्हा ने न तो इस कृति की हस्तलिखित प्रति देखी है और न डॉ० तेस्सीतोरी के कथन का ही समझने का प्रयत्न किया है। वेलि क कर्ता सावला कर्मसिंह का नाम तेस्सीतोरी का टिप्पणी मे स्पष्टरूपण लिखित है– "क्रिसनजी री वेलि सावला करमसी रूणेचा री कही'।[5]

१– डा० हीरालाल जी माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य पृष्ठ १६२।

२– वही, पृ० १६२ १६६।

३– वही पृ० १६६।

४– मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां प्रथम सस्करण–१९५३ ई०, पृ० ३५।

५– बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल सर्वे आफ राजपूताना ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग, खण्ड २, भाग १, पृष्ठ ४५।

१०   ३। डा० सावित्री सिन्हा ने काव्य की प्रथम पंक्ति भी अशुद्ध रूप में उद्धृत की है। उसका शुद्ध रूप इस प्रकार है– 'अनोपम रूप सिंगार अनोपम अबल अ गि।'

११। ३। वेलि के प्रारम्भ में कवि ने रुक्मिणी के शृंगार का वर्णन करते हुए लिखा है कि चन्द्रमुखी रुक्मिणी अनुपम रूप, अनुपम शृंगार और अनुपम आंगिक लक्षणों से युक्त है। उसको श्रीकृष्ण के समीप मानसोपभोग हेतु लाया गया—

> अनोपम रूप सिंगार अनोपम अबल अनोपम लषण अंगि।
> सहि एता आणिय ससि वदनी, रे श्रीरग माणिवा रगि ॥[२]

आगे कवि ने रुक्मिणी की पगतलियों में झलक पड़ने वाली लालिमा और स्वर्ण अथवा दीप-पंक्ति की भांति चमकने वाले नखों का वर्णन किया है।[३]

तदुपरान्त कवि ने नूपुरों की झंकार को कामदेव के वाद्य यन्त्र के रूप में निरूपित किया है।[४]

कवि ने रुक्मिणी की पिंडलियों को कृष्ण से युद्ध करने हेतु गदावलि के रूप में बताया है।[५]

तदुपरान्त कवि ने युवती की युगल जंघाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके स्पर्श से कामदेव की उत्पत्ति होती है।[६]

कवि ने नायिका के रोम रहित कठिन नितम्ब हाथी के कुम्भस्थल के रूप में निरूपित करते हुए प्रकट किया है कि कामदेव को शिव ने भस्म कर दिया किन्तु वह इस स्थान को गहन जान कर यहाँ निवास करता है।[७]

कवि ने नायिका के नाभि मण्डल का रूप के कूप तथा रतिरस के कुम्भ के रूप में निरूपित किया है और रोमावली को जल सींचने वाले माली के रूप में बताया है।[८]

१–वही, पृ० ४५।
२–अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर हस्तलिखित प्रति, सं० १९९ छन्द सं० १।
३–वही, छन्द स० २।   ४–वही, छन्द स० ३।
५–वही, छन्द स० ४।   ६–वही छन्द स० ५।
७–वही, छन्द स० ६।   ८–वही, छन्द सख्या ७।

नायिका की कटि कवि के अनुसार इतनी क्षीण है कि वह हाथ मे पकडी जा सकती है। जिस प्रकार दो राजाओ के मध्य निर्बल शत्रु क्षीण होता है, उसी प्रकार नितम्ब और पयोधरो के बीच कटि का अवस्था है।[1]

तदुपरान्त कवि ने पयोधरों का चित्रण किया है और नखो में प्रवाहित होने वाले रक्त का वर्णन् करते हुए लिखा है कि मु न्दर कुमकुमें म कुमकुम अथवा कमल-पुष्प में परिमल है।[2]

नायिका की युगल बाहें मानो विपरीत अवस्था में रक्खे हुए मृणाल हैं। बाहे सुवर्ण ककण और चूडियों से देदीप्यमान हा रही हैं।[3]

सुन्दरी के दोनो हाथ मुकोमल हैं। उसकी अँगुलिया फलिया सी शोभित हैं और उनके नख ऐसे है माना गोरा ने हर-पूजन के लिये पुष्प-कलिया ले रक्खी हैं।[4]

रुक्मिणी की ग्रीवा शख क समान है और उस की तीन रेखाए ऋद्धिया का स्थान है। उसके हृदय पर हार शोभायमान है और उसका मु ह अमृत का भण्डार है।[5]

रुक्मिणी के अरुण अधर पक हुए बिम्ब फल क समान हैं। वह सदा कोकिल क समान प्रिय एव मधुर वाणी का उच्चारण करती है।[6]

कवि ने हीरो के समान दाता की शोभा का वर्णन करते हुए लिखा है कि असुरा के भय म इन रत्नों को यत्नपूर्वक हरि के लिये नायिका क मु ह म रक्खा गया है।[7]

नायिका का मुँह अखण्डित, अकलंक और अमृतमय है। उसकी तुलना कलकित चन्द्रमा से नही हो सकती।[8]

रुक्मिणी की नासिका कुसुम अथवा दीपक की लो अथवा शुक के समान है। उसकी भौंहें भौरो के समान हैं और ऐसा भान होता है कि भौरे मु ह को कमल के समान समझ कर आ बैठे हैं।[9]

१–वही, छन्द स० ८। २–वही, छन्द सं० ६।
३–वही, छन्द सं० १०। ४–वही छन्द स० ११।
५–वही छन्द सं० १२। ६–वही, छन्द सं० १३।
७–वही, छन्द सं० १४। ८–वही, छन्द सं० १५।
६–वही, छन्द सं० १६।

कवि ने रुक्मिणी के नयनों का वर्णन करते हुए उन्हें अति चपल 'काजल युत' रतनारे एवं दीप्तिमान बताया है। [1]

नायिका सोलह शृंगार धारण कर शोभित है और वह झिलमिलाती ज्योति के समान कान्तिमान है। कृष्ण का मन रूपी विहग वश में करने के लिये उसने मानो जाल फैला दिया है। [2]

कवि ने रुक्मिणी का मस्तक आकाश के समान बताते हुए लिखा है कि उसके भाल पर माला और सिंदूर भरा हुआ है। वह मानों नक्षत्र माला के समान देदीप्यमान है और चन्दन का तिलक चन्द्रमा के समान है। [3]

नायिका के मुँह पर रत्न जड़ित रखड़ी सुशोभित है। उसकी वेणी सरलता से बल खाती हुई सर्प के समान है, जो अमृत का आहार करने के लिए मुख रूपी चन्द्रमा के समीप आया है। [4]

लावण्य गुण पूरित लक्ष्मी राजहंस के समान चलकर कर्मसिंह के श्यामवर्ण स्वामी मदन मुरारी श्रीकृष्ण से सेज पर मिली। [5]

कवि ने अन्त में लिखा है कि रुक्मिणी के रूप, लक्षण और गुण कथन में कौन समर्थ हो सकता है। मैंने गोविन्द की रानी के गुण जाने वैसे ही कहे हैं। [6]

१२ ३। रचना नाम के अनुसार इसमें श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह का प्रद्युम्न जन्म सहित वर्णन होना चाहिये किन्तु उपर्युक्त हस्तलिखित प्रति में रुक्मिणी का नख शिख निरूपणमात्र उपलब्ध होता है। [7]

१३ ३। प्रस्तुत छन्दों में वर्णित विषय से यह शृंगारिक रचना प्रतीत होती है। विषय के शृंगारिक होते हुए भी कवि ने जनोचित मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। "वेलि" की रचना वेलियो गीत नामक छन्द में हुई है और यह भी एक कारण है कि यह रचना 'वेलि" कही गई।

१–वही, छन्द सं० १७।	२–वही, छन्द सं० १८।
३–वही, छन्द सं० १९।	४–वही, छन्द सं० २०।
५–वही छन्द सं० २१	६–वही, छन्द सं० २२।
७–वही।	

१४ ३। रचना में अलंकार सौंदर्य सर्वत्र दर्शनीय है। यथा-अनुप्रास,[1] उत्प्रेक्षा[2] उपमा[3] व्यतिरेक,[4] रूपक[5] भ्रांतिमान[6] सन्देह[7] और वैणसगाई।[8]

१५ ३। आकार प्रकार को देखते हुए प्राप्त रचना को श्रीकृष्ण जी री वेलि के स्थान पर नख सिख निरूपण वेलि कहना सर्वथा उपयुक्त है। नायिकाओं का नख सिख निरूपण करने की हमारे यहां मे सुदीर्घ परम्परा रही है और "नख सिख निरूपण" विषयक अनेक स्वतन्त्र रचनाएं भी उपलब्ध होती है।[9] राजस्थानी नख शिख निरूपण विषयक रचनाओं मे प्रस्तुत वेलि एक सर्वोत्कृष्ट रचना है।

२-महाराज पृथ्वीराज कृत "वेलि क्रिसन रुक्मिणी री"

१६ ३। राठौड पृथ्वीराज कृत "वेली क्रिसन रुक्मिणी री" राजस्थानी साहित्य का उत्कृष्टतम काव्य कृति मानी गई है। यह वेलि भक्त जनों के लिए "प्रगति तणी नीसरणी"[10] सरस्वती का कण्ठश्री[11] और रसिकों हेतु रसमयी[12] है। वेलि का लगभग एक सौ प्रतियां विभिन्न हस्तलिखित ग्रंथ भण्डारों मे उपलब्ध हो चुका हैं।[13] संस्कृत, ब्रज राजस्थानी और खडी बोली की अनेक टीकाएं हो चुकी है[14] तथा ६ विभिन्न विद्वानों द्वारा सम्पादित संस्करण प्रकाशित हो चुके है।[15]

१-छन्द स० १, ६ आदि। २-छन्द स० ३ ६ आदि।
३-छद स० ६ १३ आदि। ४-छद स० १५।
५-छद स० १६, १८ आदि। ६-छद स० १६।
७-छद स० २। ८-सभी छदों में।
९- क-नख-शिख केशव कृत।
 ख-नख-शिख बलभद्र कृत, डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ४६३, ४६६ और ५६३।
 ग-नख-शिख, पृथ्वीराज राठोड कृत, प० नरोत्तमदासजी स्वामी स्व सम्पादित वेलि प्रस्तावना पृ० २८।
१० - वेलि छन्द स० २६४।
११ - वेलि, छन्द स० २७६। १२-वेलि छन्द स० २६८।
१३ - राजस्थान भारती, बीकानेर पृथ्वीराज विशेषांक भाग ७, अंक १-२ और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की ग्रन्थ सूचियां।
१४ - राजस्थान भारती' बीकानेर, मई, १६६१।
१५-१- सम्पा० डा० एल० पी० तेस्सीतोरी एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता सं० १६१६।
 २- स० ठाकुर रामसिहजी और सूर्यकरणजी पारीक हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, १६३१ ई०।
 ३-स० डा० आनन्द प्रकाशजी दीक्षित विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, १६५३।
 ४-स० प० नरोत्तमदासजी स्वामी श्री राममेहरा एण्ड कं० आगरा १६५३ ई०।
 ५-स० श्रीकृष्ण शंकर शुक्ल, साहित्य निकेतन, कानपुर १६५४ ई०।
 ६-स० श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई, फार्बस गुजराती सभा, बम्बई,, गुजराती टीका सहित, १६५५ ई०।

(क) कथा समीक्षा—

१७ ३। महाराज पृथ्वीराज राठौड़ ने अपना 'वलि क्रिसन रुकमणी री' के प्रारम्भ में मंगलाचरण के अन्तर्गत परमेश्वर, सरस्वती, सद्गुरु और मगनरूप माधव का स्मरण किया है।[1] कवि ने तदुपरान्त अपने असामर्थ्य और कथा की महत्ता का कलात्मक निरूपण करते हुए लिखा है कि वह गुणहीन होते हुए भी गुणनिधि का गान करना चाहता है, मानो काष्ठचित्रित पुतली अपने हाथ में चित्रकार का चित्रण करना चाहता है अथवा किसी वाग्विहीन व्यक्ति ने वागेश्वरी सरस्वती को विजित करने के लिए विवाद प्रारम्भ किया है। कवि अपने मन को कहता है कि, मूर्ख! सरस्वती भी जिसका नहीं अन्त पाती उसका तू देखना चाहता है तू वातरोग से पीड़ित है अथवा पागल हो गया है। पंगु बनकर पहाड़ पर कैसे पहुंच सकता है?[2] आगे कवि शेषनाग और अपनी तुलना करता हुआ कहता है कि शेषनाग ने भी परमेश्वर के चरित्र का पार नहीं पाया तो उस जैसे मनुष्य के वचनों का क्या बस हो सकता है?[3]

१८ ३। कवि ने काव्य में निहित शृंगार की ओर संकेत भी प्रारम्भ में होकर दिया है—

प्रीवरणण पहिलो कीजै तिणि, गु थियै जेणि सिंगार ग्रन्थ ॥[4]

कवि ने काव्यगत शृंगार की ओर संकेत करते हुए उसकी मर्यादा का भी अक्षुण्ण रूप में चित्रण कर मातृत्व का महत्ता बताई है। महाकवि तुलसी ने जनकनन्दिनी सीता का शृंगार और सौंदर्य का वर्णन मातृरूप में किया है उसी प्रकार महाराज पृथ्वीराज ने रुक्मिणी के मातृत्व की ओर संकेत किया है—

'पूत हेत पेखता पिता प्रति, वली विसेखे मात वडी" ॥[5]

१९ ३। कवि ने विदर्भपति राजा भीष्मक और उसकी सन्तानों का संक्षिप्त वर्णन[6] करते हुए रुक्मिणी के बालरूप सौन्दर्य की ओर वय संधि का रमणीय, कल्पनारंजित और कलापूर्ण चित्रण किया है।[7]

२० ३। रुक्मिणी बालहंस के समान राजा के आंगन में क्रीडाएं करती है, बत्तीस लक्षणों से युक्त है गुड़िया खेलती है और समान शील, कुल और अवस्था की सखियों में इस प्रकार शोभित होती है मानो तारों में चन्द्र हो। उसकी बाल्यावस्था व्यतीत हो चुकी है

१– छन्द सं० १।
२–छंद सं० २–४।
३–छन्द सं० ५।
४–छंद सं० ८।
५–छन्द सं० ९।
६–छन्द सं० १०–११।
७–छंद सं० १२–२८।

भौर युवावस्था प्रारम्भ हो रही है। अपने अंगों को छिपाने में वह लज्जा करती हुई भी लज्जित हो रही है।[1]

२१ ३। आगे कवि ने लिखा है कि रुक्मिणी का शैशव रूपी शिशिर व्यतीत हो गया है और युवावस्थारूपी ऋतुराज का अपने परिग्रह सहित आगमन हो गया है। इस प्रसंग में कवि ने सांगरूपक के अन्तर्गत रुक्मिणी की युवावस्था का सरस चित्रण किया है। कवि का शिख नख वर्णन अनूठा है।[2]

२२ ३। रुक्मिणी ने पूर्ण शिक्षा प्राप्त की जिसके विषय में कवि ने लिखा है—

व्याकरण पुराण समृति सासित्र विधि, वेद च्यारि खट अंग विचार।
जाणि चतुरदस चौसठि जाणी, अनत अनत तसु मधि अधिकार।[3]

२३ ३। रुक्मिणी में गुणश्रवण के द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है और वह श्रीकृष्ण को वर रूप में प्राप्त करने की इच्छा से गौरी और हर की वन्दना करती है।

२४ ३। राजा भीष्मक रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से करना चाहते हैं[4] किन्तु उनका पुत्र रुक्मया श्रीकृष्ण का विरोध करता हुआ शिशुपाल को विवाह निमंत्रण भेजता है।[5] रुक्मैया कृष्ण को अहीर व ग्वाला कहता हुआ राजपरिवार में कृष्ण का विवाह सम्बन्ध करना उचित नहीं मानता है।

२५ ३। शिशुपाल लग्नपत्रिका प्राप्त कर अनेक राजाओं के साथ बरात सज्जित कर प्रसन्नतापूर्वक कुन्दनपुर आता है। कवि ने इस अवसर पर कुन्दनपुर की शोभा का विशेष वर्णन किया है।[6]

२६ ३। कवि ने शिशुपाल के कुन्दनपुर में आने पर रुक्मिणी की विकल दशा का चित्रण करते हुए श्रीकृष्ण के पास ब्राह्मण के द्वारा रुक्मिणी का सन्देश भिजवाया है। ब्राह्मण मार्ग में रात होने पर सो जाता है और प्रात जागने पर आपको द्वारिका में पाता है। कवि ने द्वारिका का मनोरम वर्णन किया है।[7]

२७ ३। सन्देशवाहक ब्राह्मण कृष्ण के पास पहुंचता है। कृष्ण उसका विधिपूर्वक स्वागत सत्कार करते हैं और फिर ब्राह्मण रुक्मिणी का पत्र कृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत करता है।[8]

१-छंद सं० १८।
२-छंद सं० २०-२७।
३-छंद सं० २८।
४-छंद सं० ३०।
५-छंद सं० ३१-३८।
६-छंद सं० ४०-४१।
७-छंद संख्या ५०।
८-छंद सं० ५२-५६।

२८ ३। श्रीकृष्ण का लिखा गया रुक्मिणी का पत्र रचना का एक महत्वपूर्ण प्रश है। रुक्मिणी लिखती है—" हे बलि को बाधने वाले कृष्ण ! मेरे साथ आपके सिवाय कोई दूसरा विवाह करेगा तो मानो सिंह की बलि का भोग गीदड करेगा, कपिला गाय क्रूर कसाई के हाथो मे दी जावेगी और पवित्र तुलसी चाण्डाल को दी जावेगी। ' मेरे लिए किसी अन्य वर का होना हवन म उच्छिष्ट वस्तु डालना, शूद्र के यहा शालिग्राम की मूर्ति स्थापित करना और म्लेच्छ के द्वारा वेदमत्र उच्चारण के समान होगा।" [2]

२९ । कवि न श्रीकृष्ण का परमब्रह्म मानत हुए अनेक अवतारा का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण को मूलत विष्णु और रुक्मिणी का लक्ष्मी मानत हुए पाताल स पृथ्वी क समुद्र से लक्ष्मी क और लका म सीता क उद्धार का स्मृति श्रीकृष्ण को कराई गई है। रुक्मिणी न विष्णु रूप मे श्रीकृष्ण की वन्दना करत हुए प्राण उद्धार का प्राथना का और नगर क निकट अम्बिकालय मे पहुचन का सकत किया।

३० ३। श्रीकृष्ण रुक्मिणी का पत्र प्राप्त कर तत्काल ब्राह्मण क साथ रथ मे सवार होकर कुन्दन पुर चल दिय। कवि न श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा म रुक्मिणी की आतुरता का विशद चित्रण किया है। ब्राह्मण को आता हुआ देखकर रुक्मिणी दुविधापूर्वक उसकी मुख मुद्रा म अनुमान करती है। [3]

३१ ३। रुक्मिणी क साथ गुरुजन और सखिया है इसलिय न तो रुक्मिणी श्रीकृष्ण क विषय में स्पष्ट रूप म पूछ हा सकती है और न ही ब्राह्मण स्पष्ट रूप मे बता हा सकता है। ऐसी अवस्था म ब्राह्मण चतुराई पूर्वक कहता है कि 'क्रिसन पधारया लाग कहन्ति। रुक्मिणी ब्राह्मण को ब ना करती है जिसका तात्पर्य वास्तव मे कृष्ण की वन्दना भी होता है। कवि न इस अवसर पर रुक्मिणी और ब्राह्मण दोना का चातुय चारु रूप म चित्रित किया है। रुक्मिणी और ब्राह्मण दोनो हा एक दूसर का मन्तव्य समझ लते हैं तथा रुक्मिणी द्वारा श्रीकृष्ण को सदेश भेजन का घटना समीप वाल व्यक्तियो में प्रकट नही हो पाती।

३२ ३। श्रीकृष्ण का कुन्दनपुर की ओर जान हुए सुनकर बलराम भी सेना सज्जित कर नगर प्रवश के समय श्रीकृष्ण से जा मिलत हैं। [4] आगे कवि न श्रीकृष्ण क प्रति पुरवासियों की विभिन्न भावनाओं का चित्रण किया है। [5] श्रीकृष्ण का देखकर लोग कहत हैं रुक्मिणी का वर आ गया है और दूसर राजा को अब रुक्मिणी स विवाह की इच्छा नहा करनी चाहिए। [6] कृष्ण और बलदेव को आवास म उतारा गया। राजा भीष्मक द्वारा उनका स्वागत-सत्कार हुआ। [7] कवि ने आगे अम्बिका मन्दिर म जान हतु स्वीकृति लने देवदर्शन

१–छद स० ५६। २–छद स० ६०।
३–छन्द स० ७१। ४–छन्द स० ७४–७५।
५–छन्द स० ७८। ६–छन्द स० ७७।
७–छद स० ७८।

ग्रौर प्रियमिलन के लिए रुक्मिणी के शृंगार करने ग्रौर देव दर्शन के लिए सखियाँ एवं मरक्षक सैनिकों सहित प्रस्थान करने का विस्तृत वर्णन किया है।[1] रुक्मिणी की ग्रोर से एक सिखाई हुई सखी ने रानी से ग्रम्बिका पूजन की स्वीकृति ली ग्रौर स्वीकृति मिलने पर ही रुक्मिणी ने शृंगार प्रारम्भ किया। कवि ने रुक्मिणी के स्नान ग्रौर नख शिख सौन्दर्य का पूर्ण हार्दिकता के साथ निरूपण किया है।

३३ ३। श्रीकृष्ण ने ग्रन्तरिक्ष मार्ग से ग्रम्बिकालय की ग्रोर रुक्मिणी का ग्रनुगमन किया। सैनिकों ने मन्दिर के चारों ग्रोर सुरक्षा के लिए घेरा डाल दिया। रुक्मिणी ने मन्दिर में प्रवेश कर ग्रपन हाथों देवी का पूजन कर मनवांछित फल ग्रपने हाथ में कर लिया। देवी पूजन के उपरान्त रुक्मिणी ने जैसे ही सरक्षिका सेना पर दृष्टि फेरी, वैसे ही सेना मूर्छित हो गई।[2]

रुक्मिणी ने हृदय को ग्राकर्षित करने वाली चितवन, मोहित एवं वशीकृत करने वाली मुस्कान उन्माद उत्पन्न करने वाली मुखभंगिमा हृदय को द्रवित करने वाली गति ग्रौर चेतना हर लेने वाले सकोच रूपी तापन के साथ लौटते समय मन्दिर के द्वार में प्रवेश किया। कवि ने उक्त वर्णन में कामदेव की शक्ति का पाँच बाणों के रूप में निरूपण किया है। कामदेव के पाँच बाण निम्नलिखित हैं—

> समोहनो मादौ च शोषणस्तापनस्तथा ।
> स्तंभनश्चेति कामस्य पंच बाणा प्रकीर्तिता ॥

३४ ३। कवि ने सम्मोहन के स्थान पर वशीकरण, तापन के स्थान पर द्रविण ग्रौर स्तम्भन के स्थान पर ग्राकर्षण का विशेष प्रयोग किया है। कृष्ण ने ग्राकाशमार्ग से मन्दिर के समीप प्रवेश कर रुक्मिणी का हाथ पकड़ कर उसको ग्रपने रथ में बैठा लिया।[3] कवि ने ग्रागे वीरों द्वारा युद्ध के लिए तैयार होने का ग्रौर युद्ध का वर्णन किया है। युद्ध वर्णन् करते हुए कवि ने साग रूपक के ग्रन्तर्गत वर्षारूपक का सफल प्रयोग किया है। कवि स्वयं कुशल सैनिक एवं सेनापति था ग्रतएव मुगलकालीन युद्ध पद्धति की स्पष्ट झलक इस वर्णन् में उपलब्ध होती है। वेली का यह युद्ध वर्णन् ग्रपने ग्राप में पूर्ण है एवं युद्धोपरान्त होने वाली वीभत्स स्थिति का भी निरूपण हुग्रा है। काव्य कला की दृष्टि से युद्ध वर्णन् का ग्रंश 'वेली' का प्रमुख भाग है।[4] कृष्ण ने ग्रागे रुक्मी को निरायुध कर रुक्मिणी की हृदयगत इच्छा समझते हुए उसके केश उतार कर मुक्त कर दिया। बलराम ने कृष्ण को इस विषय में यथमय वचन कहे तो कृष्ण ने ग्रपना हाथ रुक्मी के सिर पर फेर कर केश पुन लगा दिए।[5]

१–छन्द स० ७६–१०७।   २–छन्द स० १०६–११०।
३–छन्द स० ११३–११२।   ४–छन्द स० ११३–१३३।
५–छन्द संख्या १३८।

१५ : ३। आगे कवि ने द्वारिका के मार्ग में श्रीकृष्ण को मिलने वाली विजय की बधाई देने वालों का वर्णन भी किया है।[1]

विजयी श्रीकृष्ण के रुक्मिणी सहित द्वारिका में प्रवेश करने पर द्वारिका वासियों के आनन्दोत्साह, द्वारिका की सजावट और उत्सव का वर्णन कवि ने रुचिपूर्वक किया है।[2] द्वारिका नगर श्रीकृष्ण के स्वागत में इस प्रकार लहरें लेने लगा जैसे पूर्णिमा के दिन चन्द्र दर्शन से ज्वारयुक्त समुद्र लहरें लेता है।

१६ : ३। ज्योतिषियों से विवाह का मुहूर्त पूछा गया तो उन्होंने कम्पित चित्त से कहा कि एक ही स्त्री के साथ पुन: पुन: पाणिग्रहण कैसे हो सकता है ? रुक्मिणी के हरण के साथ ही पाणिग्रहण हो गया अतः यह निश्चय हुआ कि अब संस्कार ही मात्र होने उचित हैं।[3]

२७ : ३। कवि ने आगे विवाह संस्कार का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण रुक्मिणी के शयनगृह प्रसंग का चित्रण किया है।[4] श्रीकृष्ण रुक्मिणी की मिलन रात्रि के पूर्व संध्या का और कृष्ण रुक्मिणी की मिलन सम्बन्धी आतुरता का कवि ने विशद वर्णन किया है।[5]

२८ : ३। कृष्ण रुक्मिणी की रति-क्रीडा का वर्णन मर्यादित हुआ है।[7] सुरतान्त वर्णन भी कवि ने किया है।[8] कवि ने आगे प्रभात वर्णन में लिखा है—

> सयोगिणि चीर रई कैरव श्री,
> घर हट ताल भमर गाघोख।
> दिणयर ऊगि एतला दीधा,
> माखिया बध बधिया मोख
> वाणिजा वधू गो वाछ असइ विट
> चोर चकव विप्र तीरथ वेल।
> सूर प्रगटि एतला समपिया,
> मिलिया विरह विरहिया मेल ॥[9]

---

१ – छन्द संख्या १३८।
२ – छन्द संख्या १३९–१४८।
३ – छन्द संख्या १४९–१५२।
४ – छन्द संख्या १५३–१५७।
५ – छन्द संख्या १५८–१६१।
६ – छन्द सं० १६२–१६५।
७ – छन्द संख्या १७३।
८ – छन्द सं० १७४–१८१।
९ – छन्द सं० १८५–१८६।

३९ ३। वलि म षटऋतु वर्णन् भी कवि न मनोयोग पूर्वक किया है। ग्रीष्म वर्षा शरद, हेमन्त, शिशिर हेमन्त और वसन्त का वर्णन् क्रमश किया गया है। वसन्त वर्णन् विस्तार म हुआ है।[1] आगे कवि न प्रद्युम्न जन्म का वर्णन् किया है।[2] तदुपरान्त कवि न वेलि का माहात्म्य वर्णन् किया है।[3] कवि न श्रीमद्भागवत को वलि का मूल स्रोत बताया है—

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ
    महि थाणौ प्रिथुदास मुख।
मूल ताळ जड़ अरथ मण्डह,
    सुथिर करणि चढ़ि छांह सुख।।
पत्र अक्खर दळ द्वाळा जस परिमळ
    नव रस तन्तु विधि अहोनिसि।
मधुकर रसिक सु भगति मजरी
    मुगति फल फल भुगति मिसि।।[4]

४० ३। अन्त म वलि का रचनाकाल बताते हुए लिखा गया है कि वलि का श्रवण करने वाले और कण्ठस्थ करने वाले प्रभार श्री और भक्ति का फल प्राप्त करते हैं।[5]

(ख) वेलि का रचना काल—

४१ ३। वलि के रचना काल के विषय म अनेक मत हैं। वेलि की प्राचीनतम प्रति वि० स० १६६६ म लिखित प्राप्त हुई है जिसकी प्रशस्ति इस प्रकार है— "इति श्री कृष्ण वदे रुषमणि वेलि सपूर्ण समाप्ता।। राठौड़ श्रीकिल्याणमल सुत प्रथिराज कृत।। बधव सुरताणजी गागराण गढ मध्ये।। स० १६६६ वर्ष माह सुदी ४ दिन लिषत रामा।। फूलखेडा मध्य।। शुभ भवतु किल्याण।।

४२ ३। उक्त प्रशस्ति स ज्ञात होता है कि यह प्रति गागरौनगढ में लिखित प्रति की प्रतिलिपि है। गागरौनगढ महाराज पृथ्वीराज को जागीर के रूप में मुगल सम्राट अकबर की ओर से मिला था और सभवत पृथ्वीराज की उपस्थिति में उनके भाई सुरताण की प्रेरणा से लिखित प्रति से ही उक्त प्रतिलिपि की गई है इसलिये विश्वसनीय है। इस प्रति म ३०१ पद्य ही हैं और रचना काल विषयक पद्य नहीं है। रचनाकाल सम्बन्धी पद्य पीछे स विभिन्न प्रतियों में विभिन्न रूपों में जुड गये हैं। रचनाकाल सूचक पद्य सर्वप्रथम सारग कृत सुबोधमजरी नामक सस्कृत टीका की वि० स० १६८३ म लिखित प्रति में उपलब्ध होता है। उक्त टीका का रचनाकाल वि० स० १६७८ है।

१–छद स० २२९–२६८।   २–छद स० २६९–२७६।
३–छद स० २७७–३०४।   ४–छद स० २९१–२९२।
५–स० ३०५।
६–अभय जैन ग्रन्थालय, बिकानेर की ह० लि० प्रति।

४३ ३। वेलि का रचनाकाल "वरसि अचल (७ या ८) गुण (३) अंग (६) ससि (१) संवति" (वि० सं० १६३७ या १६३८) अनेक प्रकाशित संस्करणों[1] और ह० लि० प्रतियों में सूचित किया गया है। यहाँ 'अचल' का अर्थ ७ और ८ दोनों ही किया जा सकता है। डा० तेस्सीतोरी,[2] श्री सूर्यकरण पारीक,[3] मंजुलाल मजूमदार[4] डा० रामकुमार वर्मा[5] और डा० ओझा[6] आदि ने 'अचल' का अर्थ ७ मान कर वेलि का र० का० वि० सं० १६३७ लिखा है। इसके विपरीत कुन्तधार[7] और जयराति[8] ने 'अचल' का अर्थ ८ करते हुए वेलि का र० का० वि० सं० १६३८ माना है।

४४ ३। वेलि की कतिपय प्रतियों में रचनाकाल सूचक निम्नलिखित पद्य उपलब्ध होता है जिसमें स्पष्ट ही वि० सं० १६३८ सूचित किया गया है—

> वसू (८) सिव नयन (३) रस (६) ससि (१) वच्छरि
> विजय-दसमी रवि रिम्न वरप उत।
> क्रिसन रुक्मिणी वेलि कलपतरु,
> की कमधज कल्याण उत ॥[9]

४५ ३। अनेक प्रतियों में वेलि का रचना काल वि० सं० १६३६ भी सूचित किया गया है—

१—प्रकाशित संस्करण—
- क-एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, सं० डा० एल० पी० तेस्सीतोरी।
- ख-हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद सं० ठा० रामसिंहजी और पं०सूर्यकरणजी पारीक।
- ग-विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर, सं०डा० आनन्द प्रकाशजी दीक्षित।
- घ-श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी आगरा सं० पं० श्री नरोत्तमदासजी स्वामी।

२—स्व सम्पादित वेलि, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, प्रस्तावना पृ० ६।

३—स्व सम्पादित वेलि, भूमिका, पृ० ६७—६६।

४—गुजराती साहित्य ना स्वरूपो, मध्यकाल पृ० ३७५।

५—हि० सा० का आलोचनात्मक इतिहास, द्वितीय संस्करण पृ० २५७।

६—बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग १ पृष्ठ १६१।

७—'महिमा भक्ति जन भण्डार' बीकानेर ह० प्र० सं० ३३। ४६०।

८—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति ग्रंथांक ३६४३।

९—क-वही ग्रंथांक १८३५ ३५५७। २, ३५४८, २०६६, २०७०, ४०७६, ४०७७ ४०७८, ४८३८ ८२५३ ६१४४ ६२५२, ११०६०।

ख—आचार्य विनयचन्द ज्ञान भंडार, लाल भवन, जयपुर की प्रति, क्रमांक २२२२।

सोलैसे सवत छत्रीसा वरखे सोम त्रीज वैसाखे समधि।
रुकमणि कृसन रहस रग रमता, कही वेलि पृथ्वीराज कमधि॥[1]

४६ ३। प० नरोत्तमदासजी स्वामी के मतानुसार उक्त अश क्षेपक है क्योंकि यह ग्रन्थ समाप्ति और प्रशस्ति लेख के बाद जोडा गया है।[2]

४७ ३। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान उदयपुर शाखा के अन्तर्गत सरस्वती भण्डार पुस्तकालय मे सुरक्षित वेलि की प्रतियो मे रचनाकाल वि० स० १६४४ लिखित है—

१ सोलह सै सवत चमाले वरस, साम तीज वैसाख सुदि। (प्रति स० १७०१)

२ सोलह से सवत चमाले वरसे सोम ताज वैसाख समधि। (प्रति स० १७२८)

३ सोलस से सवत चौमालीसै वरसै, साम तीज वसाख सुदि। (प्रति स० १७६५)

उक्त लेखो के आधार पर डा० आनन्दप्रकाश जी दीक्षित [3] और डा० हीरालालजी माहेश्वरी[4] ने वेलि का रचनाकाल वि० स० १६४४ माना है। प० मोतीलालजी मेनारिया का यह अनुमान मात्र प्रतीत होता है कि वि० स० १६३७ वेलि का प्रारम्भ सवत् है और वि० स० १६४४ वलि को पूर्ण करने का सवत् है।[5]

४८ ३। वास्तव मे गागरोनगढ वाली वि० स० १६६६ मे लिखित उक्त प्राचीन तम प्रति मे रचनाकाल सम्बन्धी पद्य उपलब्ध नहीं होता इसलिए बिना किसी प्रमाण से समर्थित हुए वि० स० १६३६, १६३७ १६३८ और १६४४ मे से किसी एक सवत् के पक्ष मे मत प्रकट करना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। इस विषय मे अभी निश्चितरूपेण यही कहा जा सकता है कि वेलि की रचना १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे हुई है।

(ग) रसव्यजना—

४९ ३। वेलि का अपर नाम "रुक्मिणी मगल" है—

१ मन सुद्धि जपन्ता रुषमिणि मगल, विधि सम्पति थाई कुशल नित।[6]

२ मुख कहि कृसन रुषमिणी मगल, काइ र मन करसि कृपणा।[7]

१—क—बड़ा उपाश्रय बीकानेर क्रमाक ३५।५७७।
ख—अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर, क्रमाक ७४०५।
२—वेलि की सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० ७७।
३—वेलि, सम्पादकीय भूमिका, पृ० ५१।
४—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६१।
५—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १२४।
६—छन्द स० २८६। ७—छन्द सख्या २८९।

५० ३। वेलि के उक्त नामों से स्पष्ट होता है कि यह मंगल-काव्य परम्परा में निर्मित एक भक्ति परक रचना है। प्रस्तुत वेलि को अमृत वल्ली[1] और गुण वलि[2] भी लिखा गया है। साथ ही प्रस्तुत वेलि के कहीं क्रिसन रुकमणी री वेलि[3] और कहीं "वलि क्रिसन रुकमणी रा"[4] आदि नाम भी मिल गये हैं। वेलि की प्रबंध ध्वनि भक्ति है किन्तु इसमें शृंगार, वीर, बीभत्स रौद्र, भयानक, अद्भुत, वात्सल्य हास्य आदि रसों की भी सरस व्यंजना है। मध्यकालीन राजस्थानी काव्य में वीरता, शृंगार और भक्ति का त्रिवेणी-संगम विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। वेलि में वर्जित संयोग शृंगार को देखकर ही डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा[5] "पृथ्वीराज प्रेम की मादकता का रसास्वादन कराने में तत्पर थे। यही कारण है कि प्रेम के सामने भक्ति के निवदपूर्ण आदर्श को रखने में वे असमर्थ थे।"[5] आनन्द प्रकाश दीक्षित ने वेलि में अप्रधान संभोग शृंगार माना है।[6] कवि ने 'गूथियै जेणि सिणगार ग्रंथ[7] लिख कर वेलि में शृंगार रस का संकेत किया है। वलि में वियोग शृंगार की अनेक अवस्थाओं का चित्रण संयोग पक्ष की पूर्व पीठिका के रूप में हुआ है अभिलाषा[8] चिंता,[9] गुण कथन[10] और स्मरण[11] तथा दूत, सेवा, षटऋतु वर्णन सन्ध्या, रात्रि आदि का कवि ने उद्दीपन के रूप में चित्रण किया है। नायक नायिका की संयोग शृंगार गत आतुरता[12] उत्सुकता[13] लज्जा[14] आदि का चित्रण भी कवि ने मनोयोग पूर्वक किया है। वेलि विवाह मंगल मूलक रचना है अतएव इसमें विवाह वर्णन के उपरान्त नायक-नायिका मिलन सुरतान्त वर्णन और पुत्र जन्म सम्बन्धी वर्णन भी हैं। शृंगारगत उक्त वर्णन होते हुए भी प्रबंध में भक्ति का वातावरण पूर्णरूपेण बना रहा है जिसमें कवि की भक्ति भावना और उच्च कोटि की काव्य शक्ति का परिचय मिलता है।

५१ ३। वेलि में भक्ति का चित्रण, मंगलाचरण,[15] श्रीकृष्ण चरित का महत्व[16] कवि का आत्मनिवेदन[17] और वेलि के माहात्म्य कथन[18] आदि में किया गया है। वेलि का

---

१ —इति श्री राठौड़ पृथ्वीराज कृत अमृतवेल जी समाप्त, श्री कांति सागर जी की प्रति।
२ —पृथ्वीराज कृत गुण वेलि लिख्यते, श्री कांति सागर जी की संवत् १७२५ की प्रति।
३ —स० नरोत्तमदास स्वामी, प्रका० श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा।
४ —स० डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित, प्रका० विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर।
५— हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास द्वितीय संस्करण पृ० २५७।
६—स्व-सपादित वेलि, प्रकाशक साहित्य निकेतन कानपुर, भूमिका पृ० ३५।
७ —पद्य स० ८। ८ — पद्य सं० २६।
९— पद्य स० ७०। १० — पद्य सं० ५६।
११— पद्य स० ६३। १२ — पद्य स० ७०,१६५।
१३— पद्य स० ८३, १७०, १७१। १४ — पद्य सं० १८, १६७।
१५— पद्य सं० १। १६ — पद्य स० २-७।
१७— पद्य स० २९। १८ — पद्य सं० २७७-२८४।

आधार श्रीमद्भागवत[1] को मानते हुए कवि ने कृष्ण को मगलरूप,[2] कमलापति,[3] श्रीकम,[4] श्रीपति,[5] जगतपति,[6] अन्तर्यामी[7] हरि,[8] पुरुषोत्तम[9] त्रिभुवन पति[10] आदि तथा रुक्मिणी को रामा अवतार[11] और श्री आदि लिखा है। रुक्मिणी ने अपने पत्र में राम सीता, विष्णु-लक्ष्मी और आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध के रूप में अपना और कृष्ण का सम्बन्ध बताया है।[12] द्वारिका का वर्णन अमरावती के रूप में है। वेलि को मगल काव्य[13] लिखते हुए इसकी पाठ विधि का भी वर्णन है।[14] वेलि का माहात्म्य एक धार्मिक ग्रन्थ के रूप में वर्णित है।[15]

५२ ३। वेलि में वीर रस का निरूपण भी यथोचित रूप में हुआ है। प्राचीन काल में विवाह शक्ति प्रदर्शन के अवसर होते थे और वीर पुरुष ही सुयोग्य सुन्दरी से विवाह करने का अधिकारी होता था। कवि ने सफलता पूर्वक युद्ध के हेतुओं की सृष्टि की है और युद्ध का सागोपाग वर्णन युद्ध कृषि रूपक के अन्तर्गत किया है। युद्ध में होने वाली मारकाट, अग भग और रक्त प्रवाह के दृश्य वीरों के लिए आनन्ददायक होते हैं। युद्ध में प्राप्त होने वाली मृत्यु तो महान मगलकारिणी मानी गई है। इसलिए श्री सूर्यकरण पारीक द्वारा उपस्थित रस विरोध[16] की स्थिति नहीं मानी जा सकती। वेलि मे युद्धगत् ललकार,[17] शस्त्र सचालन[18] और सैन्य सगठन[19] आदि का चित्रण वीर रस के सर्वथा अनुरूप हुआ है। वेलि के अनेक स्थलों में हास्य की सृष्टि भी हुई है।[20]

(घ) भाषा शैली—

५३ ३। वेलिकार का भाषा और शब्दों पर पूर्ण अधिकार है जिसके बल पर उसने काव्य के भावपक्ष और कला पक्ष में सफल सतुलन रखते हुए अपरिमित काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि की है। कवि ने संस्कृत के तत्सम तद्भव शब्द रूपों का राजस्थानी भाषा की

---

१ – पद्य स० २६१ २६२।
२ – पद्य स० १।
३ – पद्य स० ३।
४ – पद्य स० ५।
५ – पद्य स० ६।
६ – पद्य स० ५४।
७ – पद्य स० ५४, ६१।
८ – पद्य स० ६१।
९ – पद्य स० ६६।
१० – पद्य स० ६८।
११ – पद्य सं० १२।
१२ – पद्य सं० ५६-६६।
१३ – पद्य सं० २८६।
१४ – पद्य स० २८०।
१५ – पद्य स० २७८।
१६ – वेलि, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग सपादकीय भूमिका, पृ० ७६–८७।
१७ – पद्य स० ११२ ११४।
१८ – पद्य स० ११८ ११६।
१९ – पद्य स० ११४ ११७।
२० – पद्य सं० ११३–१३५।

मर्यादा के अनुसार प्रयोग किया है। अनेक प्रसगो मे लोकोक्तियो और मुहावरों का भी प्रयोग किया है।[1] कवि ने रुक्म को सोनानामी,[2] मकर राशि के लिए काम वाहन[3] आदि लिख कर "कूट शैली" भी अपनाई है। कवि ने प्रसग के अनुसार शृगार वर्णन मे कोमल कान्त पदावली और वीरता वर्णन में ओजमयी शब्दावली का प्रयोग किया है। सिलह, हवाई, जोर, दरकाब, हुस गेमे अरबी फारसी के शब्दो का प्रयोग भी किया गया है किन्तु इनसे भाषा की मर्यादा कही भग नही हुई है।

(छ) वस्तु वर्णन–

५४ ३। कवि की वस्तु वर्णन में विशेष रुचि है। हरिमहिमा–वर्णन[4], नगर-वर्ण के अन्तर्गत कुन्दनपुर वर्णन[5] और द्वारिका वर्णन[6], नायिका का नख शिख और सौन्द वर्णन[7], युद्ध वर्णन[8], प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत सन्ध्या[9], प्रभात[10], ग्रीष्म[11], वर्षा[1 शरद[13], शिशिर[14], हेमन्त[15] और वसन्त[16] मे कवि ने अपने विशद् सासारिक अनुभव, शास्त्रीय ज्ञान और भावुकता का पूर्ण परिचय दिया है। वेलिगत प्रसगो से कवि के ज्योतिष और शकुन[17], वैद्यक[18], सगीत-नृत्य और नाट्य शास्त्र[19], योगशास्त्र[2 , पुराण[21] काव्य[22], राजनीति[23], कर्मकाण्ड[24] भाषा[25], कृषि[26], बुनाई[27] सुहारी[28], सुनारी[29], सिवलीगरी[30], सामाजिक रीतियां[31] आभूषण[32], व्यापार[33], रग[34],

---

१ – पद्य स० ३, ४, ४५, १२६, १३०, १६८।

२ – पद्य स० १३४।

३ – पद्य स० २२२।

४ – पद्य स० १–७।

५ – पद्य स० ३८–४०।

६ – पद्य स० ४८–५१।

७ – पद्य स० १२–२७।

८ – पद्य सं० ११३–११२।

९ – पद्य स० १६२–१६४।

१० – पद्य स० १८२–१८६।

११ – पद्य स० १८७–१९४।

१२ – पद्य सं० १२, १९४–२०५।

१३ – पद्य सं० २०६–२२५।

१४ – पद्य सं० २२६–२२८।

१५ – पद्य स० २२८।

१६ – पद्य स २२९–२९८।

१७ – छन्द ७०, ९३, ९६ १८८ १९३ २१२ २२२, २२६, २८६।

१८ – छन्द २८४, २८५।

१९ – छन्द २४६, २४८।

२० – छन्द १५, १८०, १८४, २०८।

२१ – छन्द ८४, ९८, १०६, २१६, २६९।

२२ – छन्द २७३, २७४, २७५, २७६।

२३ – छन्द २४९ २५५।

२४ – छन्द २८०।

२५ – छन्द ७९।

२६ – छन्द १२१, १२८।

२७ – छन्द १७१।

२८ – छन्द १३२।

२९ – छन्द १७५।

३० – छन्द ८६।

३१ – पद्य १४०, १४२, १४३ १५८, २०९, २१२ २१३, २१४, २२७, २२९, २३८।

३२ – पद्य १९३, १९४, २०९, २१०, २२६।

३३ – छन्द ८१ ९९।

३४ – छन्द १९५, २००, २०३, २५७

आदि के ज्ञान का भी परिचय मिलता है। काव्यगत वर्णन कथा-प्रवाह में कहीं बाधक नहीं हैं और इनसे काव्यगत सौन्दर्य की सफल सृष्टि हुई है।

(च) अलंकार सौंदर्य—

५५ ३। वेलि का प्रत्येक पद सम्पूर्ण रूप में अलंकृत है। कवि के अलकार निरूपण में सर्वत्र स्वाभाविकता है और अलकारो का प्राचुर्य होते हुए भी प्रत्येक पद में भाव पक्ष की कहीं हानि नहीं हुई है। अलंकारो के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

अनुप्रास- १ तेज कि रतन कि तार कि तारा,
हरि हस-सावक सस हर हीर ? [१]

२ बहु विलम्बो वीछडतइ वाला, बाल सघातो बालपण । [२]

३ कामणि कुच कठिण कपोल करी किरी,
वेस नवी विधि वाणी वखाणी । [३]

यमक- १ सिखर-सिखर मइ मंदिर सिर । [४]

२ हरि-गुण मणि ऊपनी जिका हरि । [५]

३ कलस सीस करि करि कमल । [६]

४ आदर करे जु आदरी । [७]
५ गुण-मोती मखतूल-गुण । [८]

श्लेष- १ कत-सजोगणि किंसुख कहिया, विरहणि कहे पलास वण [९]।

सयोगिनी- (१) ढाक को देखकर उल्लसित होकर बोल उठी—
(२) कि सुख ! कैसा सुख है ?

वियोगिनी- (१) ढाक को देखकर तन में क्षीण होकर बोली

(२) पलाश मास को खाने वाला राक्षस है।

२ सूरिज हो ब्रिख—आसरित[१०]

---

१ – छद २७। २ – छद १७।
३ – छद २४। ४ – छद स० २०४।
५ – छद स० २९। ६ – छद स० ४९।
७ – छद स० ३। ८ – छद स० ८१।
९ – छद स० २१६। १० – छद स० १८८।

[सूरज ने (१) वृष राशि का आश्रय ले लिया है। मानों गर्मी से डर कर (२) वृक्ष का आश्रय ले लिया है।]

"वयरण सगाई" शब्दालंकार का प्रयोग भी सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों ही रूप देखे जा सकते हैं —

साधारण– १ कस छूटी क्षुद्र घटिका।[1]

२ चल-पत्र-पत्र थिउ दुज देखे चित।[2]

३ जाणे सदनि-सदनि साजोयी।[3]

असाधारण–१ तिणी आप ही करायउ आवग।[4]

२ लाजवती अंगि अेह लाज विधि।[5]

३ हेक वडउ हित हुवइ पुरोहित।[6]

युद्ध कृषि वसन्त यौवन लोहार कृष्ण जुलाहा आदि वर्णन् रूपक के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

५६ ५। पृथ्वीराज के अलंकार निरूपण के विषय में उल्लखनीय है कि वे अपनी उपमाओं में न केवल उपमेय उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं प्रत्युत् दोनों के आसपास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है। यथा—

सग सखी सील कुल वेस समाणी पेखि कली पदिमणी परि।

राजति राजकुअरि राय अंगण उडियण बीरज अम्बहरि ॥[7]

यहा पर कवि ने रुक्मिणी की उपमा चन्द्रमा से देकर ही अपने काय की इतिश्री नहीं करदी है, वरन् रुक्मिणी की सखियों की समता तारों से दिखाकर दोनों के आसपास के समूचे वातावरण का शब्द चित्र सामने ला रखा है।[8]

---

१ – छंद सं० १७८।
२ – छंद सं० ७१।
३ – छंद सं० १०१।
४ – छंद सं० १६८।
५ – छंद सं० १८।
६ – छंद सं० १५।
७ – छंद सं० १०।
८ – राजस्थानी भाषा और साहित्य द्वितीय संस्करण, पृ० १६६ १६७।

(छ) छन्द प्रयोग—

५७ ३। बलि के आलोचकों ने वेलि के छन्द को 'वेलियो गीत" के आधार पर परीक्षा करते हुए पृथ्वीराज द्वारा नियम भग होना लिखा है अथवा इसके विषय में मौन धारण किया है। स्वर्गीय सूर्यकरण जी पारीक ने स्व सपादित वेलि की भूमिका में लिखा है—

"वेलि के सब छन्दों की सूक्ष्म छानबीन करने पर ज्ञात होगा कि कवि ने इस शास्त्ररीति के जटिल बन्धन को कई स्थानों पर भग किया है।"[1] डा० आनन्द प्रकाश जी दीक्षित ने "रघुनाथ रूपक गीतारो" के अनुसार छोटा साणोर का लक्षण बताते हुए लिखा है— "इसके प्रयोग में कवि ने पूरी स्वतन्त्रता बरती है। विषम चरण का नियम पालन करते हुए भी सम चरणों की १३-१४ तथा १५ मात्राओं का भी रखा है। किन्तु दूसरी और चौथी पंक्तियों की सम मात्रिकता कभी नष्ट नहीं होने दी है। भले ही १५ मात्राओं तथा अन्त में गुरु लघु के स्थान पर लघु लघु के साथ १२ मात्राएं तथा लघु गुरु के साथ १४ मात्राओं का प्रयोग करके स्वतन्त्रता प्रदर्शित की है।'[2] श्री मोतीलाल जी मेनारिया ने वेलि की समीक्षा करते हुए इसको वेलियो गीत में रचित बताया है।[3] श्री नरोत्तमदास जी स्वामी ने लिखा है— वेलि में गीत का प्रयोग नहीं हुआ है किन्तु गीत के आधार पर बने हुए छन्द का प्रयोग हुआ है।"[4] इस प्रकार श्री स्वामी जी ने वेलि में प्रयुक्त छन्द का नाम नहीं बताया है। डा० हीरालाल जी माहेश्वरी ने भी इसी प्रकार लिखा है—' इस वेलि में चारण साहित्य के 'छोटो साणोर' गीत के एक भेद 'वेलियों' के आधार पर बने हुए छन्दों का प्रयोग हुआ है।'[5] श्री सीताराम जी लालस ने वेलि की समीक्षा करते हुए इसमें प्रयुक्त छन्द के विषय में मौन धारण कर लिया है।[6] श्री भूपतिरामजी साकरिया ने लिखा है—"छोटा साणोर छन्द के मुख्य चार भेदों में से वेलियो और खुड्द साणोर दो भेद हैं। वेलि में दोनों छन्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है अतएव यह कहना गलत होगा कि वेलि केवल वेलियो छन्द में ही लिखी गई है। यह अधिक समुचित रहेगा कि वेलि के छन्द को हम छोटा साणोर ही मानें।"[7] इस प्रकार श्री साकरियाजी का मत अस्पष्ट है।

---

१ – स्व सपादित वेलि, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, भूमिका पृ० १२०।

२ – स्व सपादित वेलि विश्व विद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, भूमिका, पृ० ६७-६८।

३ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १२४।

४ – स्व सपादित वेलि, प्रस्तावना, पृ० ७१।

५ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १५६।

६ – राजस्थानी हिन्दी शब्दकोष, प्रस्तावना, पृ० १३८ १४१।

७ – राजस्थान भारती, बीकानेर, भाग ७, अंक १ २, पृ० १२३ १२४।

अरथ–जीके प्रथम तुक मात्रा अठारे होय । दूजी तुक मात्रा तेरे होय । तीजी तुक मात्रा सोल होय । चोथी तुक मात्रा तेरे होय । पहला दूहा पछी सोल मात्रा । पछै तेरे मात्रा, फेर सोले, फर तरे ई क्रमसू होव । तुकांत दोय लघु होव जी गीत को नाम छोटो साणोर हसमग कहे ज ।

६१ ३ । 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री'' में ''मिस वेलियो' नामक गीत के अन्तर्गत वेलिया साहणा और खुडद साणोर नामक उपभेदों का मिश्रण इस प्रकार हुआ है—

१ वेलियो – जोइ जळद पटळ दळ सावळ ऊजळ [१८]
धुरइ निसाण साइ घण घोर । [१५]
प्रोळि प्रोळि तोरण परठीजइ, [१६]
मडइ किरी तडव गिरी मोर [१५]॥ [1]

२ साहणो – काळी करि काठळि ऊजळि कोरण, [१८]
धारे सावण धरहरिया । [१४]
गळि चालिया दसो दिसि जळग्रभ [१]
थभिन, विरहणि नइण थिया [१४] ॥ [2]

३ खुडद साणोर – जिणि मेस सहस फण फणि फणि बि बि जिह । [१८]
जोह जोह नव नवउ जस । [११]
तिणि ही पार न पायउ श्रीकम [१६]
वयण डेडरां किमउ वस ॥[3] [१३]

६२ ३। महाराज पृथ्वीराज जैसे काव्य ममज्ञ और शास्त्र रीति का सपूर्ण रूप में पालन करने वाले कवि अपनी वेलि जैसी कृति में छन्द शास्त्र सम्बन्धी नियम का भंग कर स्वतन्त्रता नही रख सकते थे । वेलि की प्राचीनतम प्रतियों के आधार पर प्रामाणिक शुद्ध पाठ प्रकाशित होने पर ज्ञात होगा कि पृथ्वीराज ने वेलि'' में ''मिस्त्र वेलियो गीत'' नामक छन्द का प्रयोग किया है जिसकी ओर अभी तक हमारे आलोचकों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है । गीत सम्बन्धी शास्त्रीय नियम के अनुसार गीत में न्यूनतम तीन 'द्वाला'' का प्रयोग होना चाहिये [4] और अधिकतम द्वाला की कोई सीमा नहीं है । ''वेलि'' के छन्द प्रयोग के विषय में उल्लेखनीय है कि सम्पूर्ण प्रबन्ध काव्य ३०५ द्वालों के एक ही छन्द 'मिस्त्र वेलियो'' में पूर्ण हुआ है ।

---

१ – पद्य सं० ४० ।
२ – पद्य सं० १६५ ।
३ – पद्य सं० ५ ।
४ – श्री नरोत्तम दास जी स्वामी द्वारा सम्पादित वेलि प्रस्तावना, पृ० ७० ।

(ज) वेलि का काव्य रूप—

६३ ५। महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करते हुए आचार्य दण्डी ने लिखा है कि अनेक सर्गों में निबद्ध काव्य को महाकाव्य कहा जाता है।[1] हेमचन्द्राचार्य ने इस विषय में लिखा है— महाकाव्य संस्कृत अपभ्रंश और ग्राम्य भाषाओं में होते हैं, यह सर्ग, आश्वास, संधि और अवस्कन्धक बन्ध होता है, इसमें सर्गों के अन्त में भिन्न वृत्त होते हैं और शब्दार्थ वैचित्र्य से युक्त होता है।[2] आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य की विशेषताएं इस प्रकार बताई हैं—' जिसमें सर्गों का निबन्धन हो उसको महाकाव्य कहते हैं। इसमें नायक देवता अथवा सद्वंशोत्पन्न क्षत्रिय होता है, जिसमें धीरोदात्त आदि गुणों का समावेश हो। कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक राजा भी नायक होते हैं। महाकाव्य में शृंगार, वीर अथवा शान्त रसों में से एक अंगीरस होना है और अन्य रसों का गौण रूप में समावेश होना है। महाकाव्य में नाटक की समस्त संधियां रहती हैं। महाकाव्य का फल चतुर्वर्ग– अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से कोई एक होना चाहिए। महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार और वर्ण्य वस्तु का निर्देश होना चाहिए। इसमें कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन भी होता है। महाकाव्य में न बहुत छोटे और न बहुत बड़े कम से कम आठ सर्ग होते हैं। सर्ग में एक ही छन्द होता है किन्तु अन्तिम पद्य भिन्न छन्द में होना चाहिए। कहीं कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी होते हैं। सर्गान्त में आगामी कथा का सूचन होना चाहिये। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि दोष, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, मधु, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र, अभ्युदय आदि का जहां तक सम्भव हो सांगोपांग वर्णन होना चाहिये। महाकाव्य का नामकरण कवि, चरित्र अथवा चरित्रनायक के आधार पर होना चाहिये। कहीं महाकाव्य का नाम इसके अतिरिक्त भी होता है। सर्ग का नामकरण सर्गगत कथा पर होता है। काव्य में सर्गों का नाम आख्यान भी होता है। प्राकृत काव्यों में सर्गों का नाम आश्वास होता है जिसमें स्कन्धक अथवा गलितक छन्द रहते हैं। अपभ्रंश काव्यों में सर्गों का नाम कुडवक होता है और छन्द भी अपभ्रंश के योग्य अनेक प्रकार के होते हैं।[3]

---

१ – सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते, १ १४।

२ – काव्यानुशासन, अध्याय ६।

३ – साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद श्लोक सं० ३१५ ३२६।

६४ ५। आचार्य विश्वनाथ ने खण्डकाव्य के लक्षण निर्धारित करते हुए लिखा है कि काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है।[१]

६५ ५। पृथ्वीराज कृत वेलि में महाकाव्यगत केवल निम्नलिखित लक्षण मिलते हैं—

१ नायक श्रीकृष्ण नायकोचित गुणों से सम्पन्न होते हुए पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर हैं।

२ वेलि मे शृंगार का विस्तृत निरूपण होते हुए भी भक्ति का प्राधान्य है और अन्य रसों का गौण रूप में समावेश हुआ है।

३ काव्य की शैली पूर्ण रूपेण अलकृत है।

४ काव्य का नामकरण सम्बन्धित कथावस्तु के आधार पर हुआ है।

५ 'सिस वेलियो गीत' नामक छन्द में रचा गया है।

६ वेलि के प्रारम्भ म मगलाचरण आशीर्वचन और वस्तु निर्देश आदि हैं।

७ वेलि की कथा वस्तु लोक प्रसिद्ध और सज्जनाश्रित है।

८ वेलि म मन्त्रणा, सन्देश, सेना युद्ध, यात्रा नगर, प्रात, सन्ध्या, विवाह आदि के वर्णन हैं। वेलि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति में सहायक मानी गई है।

६६ ५। वेलि मे महाकाव्यगत उक्त प्रकार के लक्षण होते हुए भी महाकाव्य जैसा कथा विस्तार नही है और यह सर्गबद्ध भी नहीं है। अतएव आचार्य विश्वनाथ द्वारा निर्देशित लक्षणों के अनुसार वेलि को खण्डकाव्य कहना ही उचित होगा।

(झ) पृथ्वीराज रचित वेलि और कर्मसिंह सांखला रचित वेलि

६७ ५। प० नरोत्तमदासजी स्वामी ने पृथ्वीराज रचित वेलि को डिंगल में लिखित

---

१ — साहित्य दर्पण, परिच्छेद ६, श्लोक ३२९।

वेलियो मे प्राचीनतम माना है।[1] किन्तु पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व साद्‌ रामा रचित वेलि राणा उदयसिंह री [2] की रचना वि० स० १६२८ अथवा इससे पूर्व मानी गई है।[3] पृथ्वीराज और कर्मसिंह की वेलियो की तुलना करते हुए डा० हीरालाल माहेश्वरी ने लिखा है—"महत्त्वपूर्ण बात यह है कि करमसी की वेलि का राठौड पृथ्वीराज ने अनुकरण किया है, उन्होने सीधी प्रेरणा वही से पाई है। अपनी वेलि को लिखते समय पृथ्वीराज के सम्मुख एक आदर्श के रूप में यह वेलि अवश्य रही है।[4] पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि उक्त दोनो ही वेलियो के रचनाकाल अद्यावधि अप्राप्य हैं। प्रतिलिपि काल अवश्य ही कर्मसिंह कृत वेलि का वि० स० १६३४ मिलता है [5] और यह प्रतिलिपि काल पृथ्वीराज कृत वेलि के उपलब्ध प्राचीनतम प्रतिलिपि काल वि० स० १६६६ से [6] प्राचीन है। प्रतिलिपि काल के आधार पर ही किसी कृति का रचनाकाल निर्धारित नही किया जा सकता और न इसी आधार पर किसी कृति को किसी अन्य कृति से पूर्ववर्ती कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था मे डा० हीरालाल माहेश्वरी द्वारा कर्मसिंह कृत वेलि का अनुकरण पृथ्वीराज कृत वेलि में निर्धारित करना[7] समीचीन नही ज्ञात होता। कर्मसिंह कृत वेलि का अंतिम २२ वा "द्वाला" पृथ्वीराज कृत वेलि के ३०४ सख्यक "द्वाले" के रूप मे उपलब्ध होता है। यह द्वाला क्षेपक अथवा लिपिकर्ता की भूल प्रतीत होता है। उक्त दोनो ही वेलिया काव्य कला, भाव और भाषा की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

ल. क्रिसन रुक्मिणी री वेलि की टीकाएं

६८ ५। महाराजा पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मिणी री वेलि" की लोक प्रियता और प्रसिद्धि का प्रमाण इस पर लिखी गई विभिन्न टीकाओ से मिलता है। वेलि का जैन धर्म से कोई सम्बन्ध नही है तथापि श्री अगरचन्द नाहटा के मतानुसार जैन कवियो द्वारा रचित दो सस्कृत और चार राजस्थानी टीकाए उपलब्ध होती हैं।[8]

६९ ५। वेलि की प्रधान टीकाएँ इस प्रकार हैं—

---

१ – स्व सपादित वेलि, सपादकीय प्रस्तावना, पृ० २३।
२ – ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ बार्डिक लिटरेचर, डा० तेस्सीतोरी, खण्ड २, भाग, १ पृष्ठ ६।
३ – डॉ० हीरालाल जी माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १६२।
४ – वही पृ० १६२।
५ – अनूप सस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर, ह० प्र० स० ९६।
६ – अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर की प्रति।
७ – राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १६२ १६६।
८ – राजस्थान भारती, बीकानेर, पृथ्वीराज राठौड जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक, मई १९६१, पृ० २६।

१ लाखा जी चारण की टीका

लाखा जी चारण ने राजस्थान की ढूंढाड़ी बोली में वेलि की टीका सवत् १६७३ में लिखी थी। इस टीका का उल्लेख वाचक सारंग ने सवत् १६७८ विक्रमी में पालनपुर में रचित अपनी सस्कृत टीका में भी किया है। साथ ही वाचनाचार्य जयकीर्ति ने सवत् १६८६ माघ मास में रचित अपनी टीका में भी लाखा चारण की टीका का उल्लेख किया है। किसी टीका में लाखा चारण का नाम कर्त्ता रूप में उपलब्ध नहीं था जिससे लाखा चारण की टीका अप्राप्य मानी जाती थी। श्री अगरचन्द नाहटा के प्रयत्न से लाखा जी चारण नाम सहित यह टीका उपलब्ध हो चुकी है।[1] इस टीका का प्रारम्भिक अंश निम्नलिखित है—

> ध्यात्वा श्रीगुरुपादपद्मयुगल श्रीमन्मुरारे पर्वा।
> वल्या प्रारभत जनप्रियकरी टीका लखाख्य कवि ॥
>
> दृष्ट्वा हसरसी बहुतर तोष कवीशा दधु ।
> दोषो न प्रतियाति यत्र पटुता ता मदसूनुभ्रंशम् ॥१॥

लाखाजी चारण की यह टीका प्रकाशित हो चुकी है।[2]

२ कवि सारंगकृत सस्कृत—टीका

कवि सारंग ने "सुबोध मजरी" नाम से वेलि की सस्कृत टीका वि० स० १६७८ में पालनपुर नामक स्थान में लिखी। टीकाकार के गुरु पद्मसुन्दर भी विद्वान और कुशल कवि थे जिनकी रचनाओं का परिचय जैन गुर्जर कविओ भाग १ ३ में उपलब्ध होता है। सारंग कवि कृत विल्हण पचाशिका चौपाइ, भाग छत्तीसी, सोवाध्यवृत्ति (जालोर में स० १६७५ में रचित) और जगदम्बा छंद आदि उपलब्ध हो चुके हैं।[3]

सुबोध मजरी टीका के आद्यन्त अंश इस प्रकार हैं—

> श्रीपार्श्वजिनमनम्य गोपेज्य दशजन्मकम् ।
> पृथ्वीराज शुभावल्ली विवब्रेऽर्थफलाप्तये ॥१॥
> गुणिनो बहव सन्ति सस्कृतगा महाशया ।
> पर प्राकृतलोकोक्ति भाषास्वल्पधियो बुधा ॥२॥

---

१ – सालभवन, जयपुर का हस्तलिखित ग्रन्थ सग्रह।

२ – वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, परिशिष्ट, क।

३ – अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

अथ ग्रथन्ति मगलार्थं स्वामिस्वामि-योनमिग्रहणम् रुक्मिण्या रूप लक्षणानि गुणाश्च वक्तु स्तोतु क समर्थ तगोऽस्ति न कोऽपि पर मया स्वमत्यनुसारत यादृशा ज्ञाता गोविन्दस्य राज्ञी तस्या गुणा तादृशा अत्र ग्र थे कथिता निबद्धा जल्पिता इति यावत् । तेन मुग्धस्यापि ममोपरि कृपा कर्तव्या इति मदुक्तम्—

दूहा— वेण विसम्मा केसवा के अमरम्भ मरम्म ।
घाट न जोवइ जग घडन जोवइ प्रेम परम्म ।

सुबोध मजरी नाम्ना टीकोपकृतिकारणम्
गुणिनामथवत्सेवा चिर नन्द्यात्सुसौख्यदा
इति सुबोधमजरी टीका सपूर्ण (सपूर्णा) कृता वाचक सारगेण ।
सवत् १६८३ श्री वैशाखेमासे कृष्ण त्रयोदश्या लिखित सम्पूर्णम् ।

३ कवि कक्क लिखित सस्कृत टीका

वेलि पर एक अन्य सस्कृत टीका भी प्राप्त हुई है । इसका टीकाकार अज्ञात है । कच्छभुज में कवि कक्क' द्वारा स० १७५० वि० मे लिखित इस टीका की प्रति प्राप्त हुई है[1] जिससे प्रकट होता है कि इस समय से पूर्व इसकी रचना हुई अथवा स्वय लिपिकार ने ही इस टीका की रचना की है । टीका की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कक्क स्वय सस्कृत का विद्वान एव कवि था ।

४ श्रीसार रचित सस्कृत टीका

श्रीसार खरतरगच्छीय रत्नहर्ष के शिष्य थे । इनके रचित आनन्द सन्धि आदि अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं ।[2] श्री सार ने यह टीका शाहजहा के राज्यकाल में लाहोर में द्राविड कृष्णानन्द के लिये विजयाश्मी स० १७०३ वि० (?) में पूरी की थी । टीका का प्रारम्भिक और अन्तिम भाग इस प्रकार है ।

आदि— सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमनेकमेक नि स्तव्यमव्ययमनगमसगमग्य ।
सिद्धार्थमर्यप्रतिमर्थरित समर्थ, निमाय करमोशमह नमामि ॥१॥

अन्त— कृष्णानन्दाशया यज्ञे या कृश्नानन्ददायिनी ।
वल्लीवृत्ति सका चन्द्रार्कीयाव जयताद् भुवि ॥६॥

---

१ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान केन्द्रीय पुस्तकालय, जोधपुर, ग्रथ स० ६१४ ।
२ – युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि, सपादक श्री अगरचन्द नाहटा, अभयजन ग्रन्थालय, बीकानेर

चिकिपति मन स्याणु महाराजसदस्सुये।
कुर्वतु से कविन् जेतु मक्ता पजिका हृदि ।।७।।

इति श्रेयसदाऽ। स्वत् १८१६ वर्ष मिति फागुण सुदि ५ दिने ।। लिखित। प०। अमय कमल मुनि। श्री पुहकरण मध्ये ।। श्रीरस्तु। कल्याणमस्तु ।। [1]

५ शिवनिधान कृत राजस्थानी टीका

उपाध्याय शिवनिधान खरतरगच्छीय जैन विद्वान थे। इनका रचनाकाल स० १६५२ से १६८२ तक है और इनके रचित अनेक ग्रंथ उपलब्ध होते है।[2] इस प्रकार शिवनिधान कृत टीका का समय भी स० १६५२ से १६८२ वि० के मध्य मानना चाहिये। टीका का आदि और अ त इस प्रकार है —

आदि— श्री हर्षसार सद्गुरु चरण जुगोपासित लब्धि विज्ञान
विदधाति शिवनिधानो अर्थ वल्ला बालावबोध कृते ।।१।।

टीका— राउ श्री कल्याणमल पुत्र राज श्री पृथ्वीराज जी राठौड कवि ग्र थ नी आदि मंगल निमित्त (श्री कृष्ण रुक्मणी मगल वेलिनी आदि इ अभीष्ट) इष्ट देवता ने नमस्कार करइ।

अ त— वल्ली विवरणमेतत् रचितखरतरशिवनिधान ।
शोध्य सद्भि दुष्टा शिष्ट समा भवतीह ।। १ ।।

शिवनिधान कृत टीका की अनेक प्रतिया उपलब्ध होति हैं, यथा—

१ वेलि (बालावबोध), पत्र ८१, लेखन स० १ २८, छ द ३०४, राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग थाक ३६४२।

२ श्री लता (सटबाय) पत्र ३३, लेखन स० १७६६, पद्य ३०६, राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्र थाक २०६६।

---

१ – गोविन्द पुस्तकालय, बीकानेर।
२ – क – श्री अगरचन्द नाहटा, दादा श्री जिनदत्त सूरि।
ख – राजस्थान भारती, पृथ्वीराज राठोड जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक, शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, मई १९६१, पृष्ठ ३१।

३ वेलि (सस्तबक) पत्र २८, लेखन स० १७=६, पद्य ३०४, राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ४०७७।

४ श्री कृष्ण रुक्मणी वेलि, पत्र २७, लेखन स० १७०६, सरस्वती भडार उदयपुर, ग्रन्थाक ८०२।

६ जयकीर्ति कृत टीका

जयकीर्ति कृत टीका का नाम 'वनमाली वल्लो बालावबोध'' दिया गया है। वाचनाचार्य जयकीर्ति खरतरगच्छीय महोपाध्याय समयसुन्दर के प्रशिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं —

(१) जिनराज सूरी रास (स० १६८१),
(२) षडावश्यक बालावबोध (स० १६९३) और
(३) कालकाचार्य कथा।

जयकीर्ति ने अपनी टीका बावदर के पुत्र पारस की प्रार्थना पर स० १६८६ वि० के माघ मास मे बीकानेर के महाराज सूरसिंह जी के राज्यकाल में की। टीका के आदि और अन्त के अंश इस प्रकार हैं —

आदि— सरसति माता समरि नइ प्रणमी सद्गुरु पाय।
वनमाली वल्ली तणी, बात कहु विगताय ॥१॥
चावउ जगिभाषा चतुर, धारण लाखउ चग।
कीधउ पहिलो वारतिक, अरथि न उपजई रग। २॥
ग्वालेरी भाषा गुपित, मद अरथ मति भाव।
बात अब किय भाषा-वितु समझण निय सभाव ॥३॥

अन्त— युग प्रधान जिणचद, इद परि दीप्पउ दीवउ।
शीश प्रथम तसु सकलचद इण नामई चावउ॥
बड भागी उवझाय शीश मुनिवरे सिरोमणि।
समयसुन्दर सिरदार मही प्रतपइ ज्यु दिनमणि॥
वादिया राय वाचक प्रवर हरखनदन घण काय चे।
सुविनीत वेलि विवरण सुगम वाणारिस जयकीरति वदइ ॥१॥

॥ इति श्री वनमाली वल्ली बालावबोध सपूर्ण ॥

कवि जयकीर्ति कृत टीकाओं की अन्य प्रतिया इस प्रकार हैं —

१ वेलो (बालावबोध), पत्र ३५, लेखन स० १७९८, छन्द ३०६, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ३६४३।

२ वेल (बालावबोध) पत्र ७३, लेखन स० १७८६ पद्य ३१२, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्र थाक ३५४८।

३ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र ३६, लेखन स० १६८३, छन्द ३०५, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्र थाक १८५४६०।

७ कुशलधीर कृत टीका

कुशलधीर खरतरगच्छीय जिनमाणिक्य सूरि की परम्परा में कल्याणलाभ के शिष्य थे। इन्होंने वेलि की बालावबोध टीका अपने शिष्य भावसिंह के लिए विक्रमाब्द १६८६ विक्रमी में बनाई थी। इस टीका की सवत १६६८ में लिखित प्रति स्वर्गीय पूर्णचन्द्र नाहर सग्रह कलकत्ता मे सुरक्षित है। कुशलधीर रचित टीका के आदि और अत के उदाहरण इस प्रकार है—

आदि—प्रणिपत्यादिनाथस्य सरस्वती सद्गुरुश्च सस्मृत्य।
कुर्वे मुरारिवल्ल्या वार्तिक मति सुगममखिलगुण ॥१॥
प्रतिपदमनुपमयतिप्रुमव या वेलि तस्य शोभा स्यात्।
मत्वेति सकल सुखद निरुपयाम्ययमाक्षेपात् ॥२॥

अत — श्रीकृष्ण वेलि विवरण सकल कुशलधीर वाचक कहइ।
जे भणइ गुणइ मन सुधि सुणइ, लीला लखमी ते लहई ॥५॥
इति श्रीकृष्ण वेलि बालावबोध प्रशस्ति॥

सवत सोल अठाणवे वर्ष फागुन वदी ६ दिने गुरुवारे। श्री खरतर गच्छाधीश्वर भट्टारक श्री जिनमाणिक्यसूरि राजान, शिष्य वाचक वर श्री कल्याणधीर गणि शिष्य वाचनाचार्य श्री कल्याणलाभ गणि शिष्य पण्डित कुशलधीर गणिन राठउड कुलावतश पृथ्वीराज कृत श्री नारायण वल्ली बालावबोध कृत शिष्य पडित भावसिंह मुनिना लेखि पडित तेजसी पठन मुनि जनैर्वाच्यमाना चिर नदतु ॥ शुभमवतु ॥

कुशलधीर कृत टीका की कतिपय ग्र थ प्रतिया इस प्रकार हैं—

१ वल्ली, (सविवरण) पत्र ४३, लेखन स० १८२६, पद्य ३०६, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्र थाक ४०७६।

२ श्रीकृष्ण वेलि पत्र ५३ लेखन स० १७१८, छन्द ३०५ बडा उपाश्रय, रागडी चौक, बीकानेर, ग्र थाक ३३।४६०।

८ सदारग कवि की कुछ टीकाए इस प्रकार है —

१ क्रिसनरुक्मणी री वेली (सटीक), पत्र ४१, लेखन स० १६८३, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्रन्थाक ९। १३।

२ क्रिसन रुक्मणी री वेलि, पत्र १६१ १८३, लेखन स० १७१८ अनूप सस्कृत लाईब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्र थाक ७८। ७८।

९ महत सूरदास द्वारा लिखित टीका —

१ क्रिसन रुक्मणी री वेली (मूल) अपूर्ण, रचना काल स० १६६६, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्र थाक ३८। ३८।

१० सारग कवि की अन्य टीका—

१ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (सटीक), रचनाकाल १६८३, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, ग्रन्थाक ९। १३।

११ मथेण गुइद द्वारा मुहता मुकुदंदास पठनार्थ लिखी गई —

१ क्रिसन रुक्मणी री वेलि पत्र १०-११८, रचनाकाल १७१२, अनूप सस्कृत लाईब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्र थाक ४५। ४६।

१२ मोहकर्मसिंघ द्वारा लिखित टीका —

१ क्रिसन रुक्मणी री वेलि (मूल) पत्र ६१-'१३ रचना काल १७२४, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़, बीकानेर, ग्रन्थाक ६। ६।

१३ पेमराज द्वारा लिखित टीका —

१ क्रिसन रुकमणी री वेली (मूल), पत्र ६६-१२० रचना काल स० १७२४, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्रन्थाक ७। ७।

१४ मोहनलाल द्वारा हनुमानगढ़ (भटनेर) मे लिखित टीका —

क्रिसन रुक्मणी री वेली, पत्र १६, रचनाकाल १७४०, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर ग्रन्थाक ५। ५।

१५ परिव्राजक विष्णुगिरि द्वारा बीकानेर में लिखित टीका —

१ क्रिसन रुकमणी री वेली (मूल), पत्र २०, रचनाकाल १७७८, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़, बीकानेर, ग्रंथांक ४ । ४ ।

१६ कुशलसिंह द्वारा चुरू में लिखित टीका —

१ क्रिसन रुकमणी री वेलि, पत्र ३७ (५६ ६५), अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्रंथांक ६ । ६ ।

१७ वरसलपुर में टीकाकार पुरोहित लक्ष्मण द्वारा लिखित —

१ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक), अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्रंथांक २० । २० ।

१८ टीकाकार लक्ष्मीवल्लभ द्वारा रचित टीका —

१ वेलि (बालावबोध), पत्र ३०, पद्य ३०५, श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

१९ पं० दानचन्द्र द्वारा रचित राजस्थानी में टबार्थ टीका —

१ पृथ्वीराज वेलि (सस्तबक), पत्र ५१, छंद ३०५, महिमा भक्ति जैन-ज्ञान भंडार, बड़ा उपाश्रय, गवाड़ी चौक, बीकानेर, रचनाकाल १७२७, ग्रंथांक ३३ । ४८५ ।

२० अज्ञात कर्तृक टीकाएँ —

वेलि की ऐसी टीकाएँ भी उपलब्ध होती हैं जिनके साथ कर्ताओं के नाम नहीं दिये गये हैं। वेलि की कतिपय प्रतियों का विवरण निम्नलिखित है —

१ वल्ली संस्कृत टिप्पण सहित, पत्र २०, पद्य ३०१, लेखन सं० १७५०, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रन्थांक, ६१४ ।

२ वेलि (मूल), पत्र १५, पद्य ३०४, रचनाकाल १६३७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, लिपि १६ वीं शती, ग्रंथांक ८८० ।

३ वेलि (मूल) पत्र ३४, पद्य ३०६, लिपि सं० १८६७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना सं० १६३७, ग्रन्थांक ८६४ ।

४ वेलि (रस-विलास टीका पद्य बद्ध) पत्र २०, छंद ३०६, लिपि १८ वीं शती, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना सं० १६३८, ग्रंथांक १८३५ ।

५ वेल (सटीक), पत्र ६६, पद्य ३०४, रचनाकाल १६३८, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, लिपि स० १७६१, ग्रन्थाक ३५५७।२।

६ वेलि (साथ), पत्र ६७, पद्य स० ३१३, लिपि १७६२ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचनाकाल १६३७, ग्रन्थाक १८६८।४।

७ वेल (सार्थ), पत्र ४६, पद्य ३०२, लिपि स० १७२२ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचनाकाल १६३८, ग्रन्थाक २०७०।

८ वेल (साथ), पत्र २७ पद्य ३६६, लेखन १८ वी शती, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, रचना स० १६३८ ग्रन्थाक ४०७८।

९ वेल (साथ), पत्र १६, छन्द ३०६, लेखन स० १८१७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रन्थाक ४४५२।

१० वेल (सटीक), पत्र २४, पद्य ३०४, लेखन स० १७४५, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना स० १६३८, ग्रन्थाक ४८३८।

११ वेल कृष्ण रुकमणी जसवाद (सटीक) पत्र ४०, पद्य ३०६, लेखन स० १८००, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, रचना स० १६३८ ग्रन्थाक ८२५३।

१२ हरिवेल (सार्थ), पत्र ३२, पद्य ३०१ लेखन स० १७८७, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, रचना स० १६३८, ग्रन्थाक ६१४४।

१३ वेलि राधाकृष्ण चरित्र (मूल) पत्र १६ छन्द ३०६, लेखन स० १८८१, राजस्थान प्राच्य, विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ६२५२।

१४ वेलि (मूल), पत्र ४२, (२६-७०), छन्द ३०९, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, लेखन स० १७९७ ग्रन्थाक ६२६६।

१५ कृष्ण रुकमणी गुण मगलाचार वेल (सटीक, सचित्र), पत्र ८२, छन्द ३०५, लेखन १८ वी शती, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ९४२०।

१६ वेलि (सबालावबोध), पत्र ३०, पद्य ३०६, लेखन स० १७६६, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, ग्रन्थाक ११०६०।

१७ वल्ली मूल, पत्र २१ (४६-७६), छन्द ३०२ लेखन सं० १७१४, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक ११५८४।

१८ क्रिसन रुकमणी गुण वेलि (सटीक), पद्य १०८, लेखन स० १७४५, राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी, जोधपुर।

१९ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र २६४, लिपि स० १६७३, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर ग्रथांक १८। १८।

२० क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक, सचित्र) पत्र, ३८, लिपि स० १६६७, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथांक ८। ७।

२१ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक), पत्र १४१ लिपि स० १६६६, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रन्थांक ६। १४।

२२ क्रिसन रुकमणी री वेलि, लिपि स० १७५३, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, १९। १९।

२३ क्रिसन रुकमणी री वेल (सटीक, सचित्र) छन्द ३०० लिपि स० १८०८, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर ग्रथांक ११। ११।

२४ क्रिसन रुकमणी री वेली (सटीक), पत्र ८१, लिपि स० १८२६ अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथांक १०। १०।

२५ क्रिसन रुकमणी री वेली (सटीक), पत्र २१–४६, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथांक १२। १२।

२६ क्रिसन रुकमणी री वेलि, पत्र ११५, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी लालगढ बीकानेर, ग्रथांक १५। १५।

२७ क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र १३५, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ बीकानेर, ग्रथांक १६। १६।

२८ क्रिसन रुकमणी री वेलि, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ, बीकानेर, ग्रथांक ५२। ५२।

२९ श्रीकृष्ण देव रुकमणी वेल (मूल), पत्र २१८ से २२७, लिपि सं० १६६६, पद्य स० ३०१, अभय जैन ग्रथालय बीकानेर।

३० वेलि रुकमणीजी कृष्णजी री (सटीक) पत्र ४२ से १२३, पद्य २८७ लिपि स० १७०५, श्री अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर।

३१ क्रिसन रुकमणीजी री वेल, पत्र ३०, पद्य ३०३, लिपि स० १७४१, श्री अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर, रचनाकाल १६३६, ग्रथांक ७४०१।

३२ प्रथीराज कृत वेलि (सटीक, सचित्र), पत्र ८२, लिपि स० १८०७, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३३ वेलि (सटीक, बालावबोध) पत्र २४, पद्य २६६ लिपि स० १८१६, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्थांक ७४०६।

३४ श्री क्रिसन जी री वेलि, पत्र २१, पद्य ३०४, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ग्रन्थांक ७४०४।

३५ क्रिसन रुकमणी री वेलि, पद्य ३०२, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३६ श्री कृष्ण वेलि (मूल) पत्र १५ पद्य ३००, लिपि स० १७१६ खजान्ची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर, ग्रन्थांक २८।

३७ किसन रुकमणी री वेल (सटीक) पत्र ३८, छन्द ३०५ लिपि स० १७४,५ खजान्ची कला भवन पुस्तकालय बीकानेर।

३८ श्रीकृष्ण वेलि (सटीक) पत्र २२, पद्य ३०६, लिपि स० १७७२ खजान्ची कला भवम पुस्तकालय, बीकानेर।

३९ श्री प्रथीराज वेल (मूल), पद्य २९५, खजान्ची कला भवन पुस्तकालय बीकानेर।

४० क्रिसन रुकमणी री वेल (मूल), पद्य १२०, (अपूर्ण) खजान्ची कलाभवन पुस्तकालय बीकानेर।

४१ श्रीकृष्ण रुकमणीजी री वेल, पत्र ३१, पद्य ३०३ लिपि स० १७२२, बडा उपाश्रय, रागडी चौक बीकानेर, ग्रन्थांक ३६। ५७७।

४२ श्री प्रथिराज जी री वेलि (सटीक) पत्र ८२ (१५३ २३४), पद्य ३०१, लेखन स० १७६५, सरस्वती भण्डार उदयपुर, रचना स० १६४४, ग्रन्थांक ४१६।

४३ वेलि प्रथीराज री (मूल), पत्र ५४ (७३ १२६) पद्य ३०४, लेखन स० १६६६ सरस्वती भण्डार, उदयपुर, ग्रन्थांक ५६५।

४४ किसन रुकमणी री वेलि (मूल), पत्र ७ (२२४ २३०), पद्य ३००, लेखन स० १७२७ सरस्वती भण्डार, उदयपुर, ग्रन्थांक ५३२।

४५ वेलि (सचित्र, सटीक), पत्र ६५, सरस्वती भण्डार उदयपुर, ग्रन्थांक ६४५।

४६ वेलि कृष्ण रुकमणी री, लेखन सं० १७०१, सरस्वती भण्डार उदयपुर, ग्रन्थांक २६३।

४७ कृष्ण रुकमणी गुण वेल (सटीक), पत्र १८, पद्य ३०७, लेखन सं० १८०० सरस्वती भण्डार, कोटा, ग्रन्थांक १५३। १७।

४८ क्रिसन रुकमणी वेलि (सटबा सचित्र), पत्र ३६, पद्य ३०४, रचना सं० १६३७, मुनि श्री पुण्य विजयजी संग्रह, अहमदाबाद।

८—वेलि की संस्तुति

७० १। कविवर पृथ्वीराज कृत "वेली क्रिसन रुकमणी री" एक भक्त कवि का उत्कृष्ट और सरस रचना है जिसकी प्रशंसा में देश-विदेश के अनेक विद्वानों और भक्तजनों ने अपने उद्‌गार प्रगट किये हैं। पृथ्वीराज के समकालीन कवि दुरसा जी आढ़ा ने वेलि को पंचमवेद और उन्नीसवां पुराण लिखते हुए पृथ्वीराज के कथनों को व्यास के समान बताया है—

गीत

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करै वखाण।
पांचमो वेद भाखियो पीथळ, पुणियो उगणीसमो पुराण ॥ १ ॥
केवल भगत अथाह कलावत, तैं जु क्रिसन श्रीगुण तवियौ।
चिहू पांचमो वेद चालवियो, नव दूणम गति नीगमियो ॥ २ ॥
मैं कहियो हरभगत प्रिथीमल, अगम अगोचर अति अचड।
व्यास तणा भाखिया समोवड़, ब्रह्म तणा भाखिया अड ॥ ३ ॥ [1]

प० नरोत्तमदास जी स्वामी के लेखानुसार एक हु० प्र० में उक्त गीत गाडण रामसिंह कृत लिखा गया है। [2]

७१ २। कवि मोहनराम जी ने वलि और पृथ्वीराज की संस्तुति में लिखा है कि वेलि की रचना में पृथ्वीराज को समस्त देवी-देवताओं की प्रेरणा-शक्ति रही है—

गीत

रुकमणी तणी वेलि प्रथीमल रची, उदधि वास कीधौ उदरि।
बुधि गजमुख बोलिवे विदुखा, पुणिया वाइक व्यास परि ॥ १ ॥

१— राजस्थान भारती, बीकानेर, भाग ७, अंक १-२, पृ० ५७।
२— स्व सम्पादित वेलि, सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ० २५।

श्रवणे ब्रह्म सबद तकी साचरियो, नयण श्ररक इद उमै निवास ।
हरि कर मौलि ध्यान हरि समहरि, श्रवनि दोखे तणो उजास ॥ २॥
विस जागण ब्रह्म उकति ताइ ववो, बाहु हणू भणिया तो वोर ।
रति रवट श्र गि उर मा ( ) सुरतो, घरणो श्रखिर मेर स धीर ॥ ३ ॥
पडिवे गग प्रवाह प्रवाणो, सुगता श्रम्रित पान समय ।
माड प्रभु रो माय ग्रय मान्वण, परगट कोधी लता प्रय ॥ ४ ॥ [1]

७२ ३ । भोजक जा न ने पृथ्वीराज कृत वेलि को श्रमृत वेलि लिखा है—

वेद बीज जल वयण, सुकवि जडमडी सघर ।
पत दुहा गुण पुहप, वास भोग वड लिखमीवर ।
पसरी दीप पदीप, श्रधिक गहिरई श्राडम्बर ।
जे जपई मन सुधि, श्रव फल पामैं श्र तर ॥
विस्तार कीध जुग जुग विमल धणी किसन कहिणार धन ।
श्रमृत वेलि पीथल श्रचल, तई रोपी क्रिन्याण तन ॥ १ ॥
इति कलस ज्यादव क्रनम् ॥ भोजक जादव क्रनम वेलि को छई ॥१॥
श्री राम सत्य [2]

७३ ३ । भक्त कवि नाभादास जी ने अपने भक्तमाल नामक ग्रंथ में पृथ्वीराज को नर श्रौर देव दोनो भाषाश्रों में निपुण बताते हुए श्लोक, सवया, गीत, दोहा श्रोर वेलि के रूप में नव रसो का निर्माता लिखा है । भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने नाभादास कृत पद्य के श्राधार पर पृथ्वीराज की श्रलौकिक लीलाश्रों का वर्णन किया है —

मूल — (नरदेव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव ।)

सवैया गीत श्लोक वेलि, दोहा गुन नव रस ।
पिंगल काव्य प्रमान विविध, विधि गायो हरिजस ।
पर दुख विदुख श्लाघ्य, वचन रचना जु विचारै ।
श्ररथ कवित्त निरमोल, सबै सारग उर धारै ।
रुक्मिनीलता वरनन श्रनूप वागीश वदन कल्याण सुव ।
नर देव उभै भाषा निपुन पृथ्वीराज कविराज हुव ॥

दोहा — ॥ ॥ मारवाड देस बीकानेर को नरेस वर्ण,—
पृथ्वीराज नाम भक्तराज कविराज हैं ।

---

१ – राजस्थान भारती, भाग ७, श्रक १–२, पृष्ठ ५८ ।

२ – श्रभय जन ग्र थालय बीकानेर, स० १६६६ वाली प्रति के श्रनुसार २ ।

सवा मनुराग मौर विप वैराग यशो,
रानी है पहिचानी नाहि मानो देखि म्राजु हैं।
गया हो विदेश तहा मानसी प्रवेश कियो,
यो नही घुछे कैसे सरेन म्राजु है।
बीते दिन तीन प्रभु मन्दिर न दीठ परे,
पीछे हरि देखि भयो सुख को समाजु हैं।
लिखि के पठायो देश सुन्दर सन्देश इहै,
मन्दर न देखे हरि बीत दिन तीन हैं।
लिरयो म्रायो साच बाचि म्रति ही प्रसन्न भयो,
लगे राज बेठे प्रभु बाहर प्रवीन हैं।
सुनो एक म्राउ यो प्रतिज्ञा करी हिये धरो,
मथुरा शरीर त्याग करै रस लीन है।
पृथ्वीपति जानि के मुहिम दई काबिल को,
बल म्रधिकाई नही कालके म्रधीन हैं।
जीवन म्रवधि रहे निपट म्रलप दिन,
कलप समान बीते पल न विहात हैं।
म्रागम जनाय दियो चाहैं इन्हें साचो कियो,
लियो भक्ति भाव जाके छायो गात गात हैं।
चल्यो चढ़ि साढनी पै लई मथुरी म्रानो
करिके सनान प्रान तजे सुनो बात हैं।
जे जे धुनि भई व्यापि गई चहु म्रोर,
म्रहो भूपति चकोर जस चद दिन रात हैं।'

७४ ३। मुन्शी देवीप्रसाद ने लिखा है कि कतिपय लोगों ने वेली के पृथ्वीराज रचित होने में सन्देह प्रगट किया म्रतएव इस विषय में निर्णय के लिए समकालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियों को म्रामन्त्रित किया गया — (१) दुरसा म्राढा, (२) सादु माला (३) केसो दास गाडण, म्रौर (४) माघोदास दधवाडिया। इनमें से दुरसा म्राढा म्रौर सांदु माला ने पृथ्वीराजके विरोध मे म्रौर केसोदास तथा माधोदास ने पृथ्वीराज के पक्ष में निणय दिया। कहते हैं कि पृथ्वीराज ने दोनों विरोधी कवियो की निन्दा में एक म्रौर समर्थन करने वाले कवियों की प्रशंसा में दो दोहे लिखे[2]। दोहे इस प्रकार हैं —

वाई बारे खाळिया, काई कही न जाय।
ऊदे मींलो ऊपना, मेहे दुरसा थाय ॥१॥

---

१ – भक्तिरस-बोधिनी टीका र० का० संवत् १७६६, फागुन बदी १०, प्रकाशक राजस्थान प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर।
२ – राजस्थानी भाषा म्रौर साहित्य, डा० हीरालाल माहेश्वरी पृ० १५१।

चेन्हो गोरखनाथ पछि, चेलो कियो चमार।
मिषरूपी रहता सबद, गाडण गुण भडार ॥१॥
चूडे चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधोदास ॥२॥

७५ ३। कहते हैं कि दुरसा जी आढा भी बाद मे पृथ्वीराज के और वेलि के प्रशसक हो गये। पृथ्वीराज, तानसेन और बीरबल की मृत्यु पर कहते हैं कि मुगल सम्राट अकबर ने यह दोहा कहा —

पीथळ सो मजलिस गई, तानसेन सो राग।
रीझ बोल हस खेलबो, गयो बीरबल साथ ॥

७६ ३। कर्नल जेम्स टॉड ने पृथ्वीराज की प्रशसा में लिखा है— "पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामन्तो मे एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमीय ट्रूबेडार राजकुमारों की भांति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकते थे तथा स्वय तलवार लेकर लड भी सकते थे"।[1] साथ ही कर्नल टाड ने पृथ्वीराज की कविता में दस हजार घोडो का बल बताया है। श्री सूर्यकरण पारीक ने वेलि के पद्य सख्या ११३ –१३७ को इस कथन के प्रमाण मे प्रस्तुत किया है।[2]

७७ ३। वेली के प्रथम सपादक डा० एल० पी० तेस्सीतोरी ने लिखा है —

"राठौड पृथ्वीराज बीकानेर द्वारा रचित, 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' राजस्थानी साहित्य रूपी रत्नगर्भा खान के अत्यत देदीप्यमान रत्नो मे एक श्रेष्ठ रत्न हैं। डिंगल साहित्य की यह सर्वांग सम्पूर्ण कृति है। काव्य कला की दक्षता का एक विचक्षण नमूना है, जिसमे आगरे के ताजमहल की तरह, भावो की एकाग्र सहजता के साथ अनेकानेक काव्य गुण विस्तार का सुखद सम्मिश्रण हुआ है और जो रस तथा भाव का सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य और काव्य के बाह्य आकार की निष्कलक शुद्धता को जाज्वल्यमान रूप मे प्रदर्शित करता है।"[3]

७८ ३। वेली में काव्य सौष्ठव और धार्मिक माहात्मय पर कवि स्वय मुग्ध है। कवि ने वेलि का माहात्म्य विस्तार से वर्णित किया है।[4]

---

१ – क–एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज आफ राजस्थान।
ख–राजस्थानी भाषा और साहित्य, प० मोतीलालजी मेनारिया पृ० १२१।
२ – स्व सपादित वेलि, भूमिका पृ० १६।
३ – वही पृ० ५०।
४ – वेलि क्रिसन रुकमणी री, पद्य सख्या २७८–२९६।

कवि ने यहां आत्म प्रशंसा नहीं कर भारतीय धार्मिक काव्यों की माहात्म्य वर्णन परम्परा का अनुसरण मात्र किया है। कवि ने प्रारम्भ में अपना असामर्थ्य[1] और अंत में विनय पूर्वक अपने दोष[2] भी स्वीकार किये हैं। डा० तेस्सीतोरी ने वेली में कवि की आत्म श्लाघा को स्वीकार करते हुए भी उसको प्रशंसनीय कहा है– यह जानकर कि महाराज पृथ्वीराज का ग्रंथ सब प्रकार से अदूषित है हम उनके आत्म विश्वास के उत्साह को क्षन्तव्य समझते हैं। संक्षेप और दूसरे आकार मे यह वही आत्म-गौरव का भाव है जिसने माइकेल ए जेलो[3] नामक प्राचीन पाश्चात्य कलाविज्ञ को अपनी बनाई हुई संगमरमर की मोजिज[4] की मूर्ति के घुटने पर प्रहार कर आवेश पूर्वक यह कहने को प्रेरित किया, 'बोल''। [5]

७६ ३। वेलि के प्रत्येक संपादक और आलोचक ने इसके काव्य सौष्ठव पर मुग्ध होकर मुक्त कंठ से प्रशंसा की है—

श्री सूर्यकरण पारीक ने लिखा है– 'जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में महाकवि भवभूति ने वीर, श्रृंगार और करुण, तीन पृथक पृथक रसों और शैलियों में महावीर चरित्र मालती माधव और उत्तर–रामचरित जैसे उत्तम दृश्य–काव्यों की रचना करके अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया और जिस प्रकार हिंदी साहित्य के वर्तमान काल की प्रगतियों के विधायक और आचार्य भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने साहित्य के सब अंगों को भरे पूरे करके साहित्य मे अमर यश कमाया, उसी प्रकार महाराजा पृथ्वीराज ने भी पृथक पृथक शैलियों, विषयों और रसों में काव्य रचना करके राजस्थानी और हिंदी साहित्य का मुख उज्ज्वल किया।' [6]

८० ३। डा० आनंद प्रकाश जी दीक्षित का मत है– 'वेलि की यह अपनी विशेषता है कि पुराने प्रसंगों पर भी कवि ने नवीन काव्य प्रासाद के निर्माण की अपूर्व प्रतिभा प्रदर्शित की है। नये प्रसंगों और कल्पनाओं के साथ साथ कवि ने पुरानी वस्तु को भी अपनी नवनवोन्मेषशालिनी काव्य प्रतिभा से भास्वर कर दिया है उज्जवल बना दिया है। अस्तु वेलि अपनी बाह्य तथा आंतरिक छवि में ऐसी छविमय है कि इतर भाषाओं के श्रेष्ठ काव्यों के साथ इसकी भी गणना की जा सकती है।' [7]

---

१ – पद्य संख्या २–६।
२ – पद्य संख्या ३०१–३०३।
३ – एक इतालवी कलाकार (मार्च १४७५–फरवरी १५६४) एनसाइक्लोपीडिया आफ अमेरिका पृ० १४–१७।
४ – विन्कोली (रोम) की सेनपेट्रो चर्च में स्थापित मूर्ति वही पृ० १६।
५ – डॉ० तेस्सीतोरी की सम्पादित वेलि भूमिका से श्री सूर्यकरण पारीक द्वारा अनुदित, वेलि या हिंदुस्तानी एकेडमी-संस्करण, भूमिका पृ० संख्या १००।
६ – स्व सम्पादित वेलि की भूमिका पृ० ४।
७ – स्व सम्पादित वेलि भूमिका पृ० १७१।

८१ ३ । पं० नरोत्तम दास जी स्वामी ने इस विषय में लिखा है — "कवि का भाषा पर अपूर्व अधिकार है । वह उसको चाहे जिस प्रकार सहज ही मोड़ सकता है । शब्द मानों उसकी जिह्वा पर खेलते हैं जो आवश्यकता होते ही तुरंत उपस्थित हो जाते हैं ।"[१]

८२ ३ । वस्तुतः कविवर पृथ्वीराज की अबाध भाव धारा एवं काव्य चातुर्य से प्रसारित "वेलि" हमारे साहित्योद्यान में अद्वितीय है और भक्ति, शृंगार तथा वीरता के सफल समन्वय के साथ ही कला पक्ष का पूर्ण रूपेण निवाह करते हुए भाव सौन्दर्य की चरम परिणति ही इसकी प्रधान विशेषता है ।

(३) सायांजी झूला कृत "रुखमणी हरण"

८३ ३ । भक्त कवि सायां जी झूला की काव्यात्मक रचनाएं मुख्यतः दो हैं — 'नागदमण' और 'रुखमणी हरण' । इनकी कतिपय स्फुट पद्य रचनाएं भी बताई जाती हैं ।[२] नागदमण और रुखमणी हरण दोनों ही काव्य कृष्णाख्यान पर आधारित हैं । नागदमण में श्रीकृष्ण की बाल-लीला कालीय दमन का और रुखमणी हरण में प्रसंगानुसार समस्त बाल लीलाओं के संक्षिप्त वर्णन के साथ रुखमणी हरण प्रसंग का काव्यात्मक निरूपण हुआ है । नागदमण और रुखमणी हरण के विषय में आलोचकों के मत परस्पर विरोधी हैं । अधिकांश आलोचकों ने रुखमणी हरण से नागदमण को श्रेष्ठ माना है—

" 'रुकमणी-हरण' एक साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रंथ है । सायां जी का दूसरा ग्रंथ 'नागदमण' है । ग्रंथ में विषयों के वर्णन की जो शैली कवि ने अपनाई है, उसमें इसकी विशेषता अधिक बढ़ गई है । कवि ने कृष्ण की बाल लीला का वर्णन, नागणी के साथ संवाद तथा कालिय मर्दन का सजीव चित्रण उपस्थित किया है " ।[३]

" 'रुखमणी हरण' में काव्यत्व का कहीं पता भी नहीं है । यह एक बहुत साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रंथ है । रुखमणी हरण की अपेक्षा सायां जी का नाग दमण पर्याप्त सजीव और पुष्टता लिए हुए है " ।

'डिंगल की प्रासादिकता और ओज का यह ग्रंथ एक अच्छा नमूना है ।"[४]

"नागदमण का विशेष महत्व उसके वर्णनों और संवादों के कारण है । ये बहुत ही पुष्ट और सजीव बन पड़े हैं । वर्णन ऐसे हैं कि जिनसे सारा का सारा दृश्य अपने

---

१ — स्व सम्पादित वेलि, भूमिका पृ० ५६ ।

२ — श्री हनुवन्तसिंह देवड़ा "संयुक्त राजस्थान", अगस्त १९५६, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय, जयपुर ।

३ — श्री सीताराम जी लालस, राजस्थानी शब्द कोष, भाग १, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर, भूमिका पृ० १४४ ।

४ — श्री मोतीलाल जी मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृ० संख्या १३३ ।

आस पास के वातावरण के साथ साकार हो जाता है । रुक्मणी हरण वीर रसपूर्ण एक वर्णनात्मक काव्य है गौण रूप मे बीभत्स रस का वर्णन भी मिलता है । इसमे रसानुकूल शब्द-योजना और चित्रमय वर्णन स्थान स्थान पर पाये जाते है ।"

'यह (रुक्मणी हरण) और वेलि दोनों ग्रन्थ एक साथ बादशाह अकबर को निरीक्षणार्थ भेजे गये । बादशाह ने पहले वेलि को सुनकर हरण को सुना । अन्त में हरण की रचना को श्रेष्ठतर निर्णीत करके हसते और व्यंग्य में पृथ्वीराज से कहा 'पृथ्वीराज। तुम्हारी वेल को चारण बाबा का हरण चर गया [1] ।

८४ ३ । इस प्रकार "रुक्मणी हरण" एक ओर तो अकबर सम्बन्धी प्रवाद के अनुसार महाराज पृथ्वीराज कृत "वेलि क्रिसन रुकमणी री" से भी श्रेष्ठ कहा गया और दूसरी ओर विद्वानो ने इसे सामान्य वर्णनात्मक कृति माना । हमारे ग्रन्थ भण्डारो में सायाजी कृत "रुक्मणी-हरण" की प्रतियां बहुत कम मिलती हैं इसलिये आलोचकों की धारणाए इस विषय मे स्पष्ट नही हो सकी । 'नागदमण' और 'रुक्मणी-हरण" की रचना मे कवि को समान रूप मे सफलता मिली है। 'नागदमण" की अनेक प्रतियां ग्रन्थ भण्डारो में मिलती है और इसका प्रकाशन भी बहुत पहले हो चुका है ।[2] सायाजी कृत रुक्मणी हरण का प्रकाशन भी प्राप्य पाठान्तरो सहित लेखक के सम्पादन मे हो चुका है ।[3]

८५ ३ । कवि ने प्रारम्भ मे मंगलाचरण देते हुए ही अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दे दिया है । कवि ने अपने काव्य रूपी भव सागर तरने हेतु "तुम्बा जाना' कहा है । कवि भक्त के नाते ईश्वर से प्रार्थना करता है कि अन्य कवियो ने तो शब्द रूपी जहाजो का आश्रय लेकर भवसागर पार किया किन्तु उसने तो एक तुम्बा जाना का ही निर्माण किया है । ईश्वर समुद्र मे डाले गये पत्थरों को तराने और उस पर से सेना पार उतारने मे भी समर्थ हैं तो तुम्बे पर चढे हुए को वह क्या नहीं तारेगा ? इस प्रकार कवि ने प्रारम्भ में ही अपनी विनम्रता उक्ति वैचित्र्य, मार्मिक अभिव्यंजना एवं काव्यगत कौशल का परिचय देते हुए सच्चे भक्त के नाते ईश्वर के प्रति अपना अधिकार प्रकट करते हुए विश्वास सहित लिखा है— तुम्बे चढा क्रम न तार ?"[4] तदुपरान्त श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन है । कवि ने राजा भीष्मक और रुक्मैया के संवाद में श्रीकृष्ण के प्रति अनूठे भाव व्यक्त किये हैं । कवि ने अपनी ओर से श्रीकृष्ण का उत्तर न देते हुए रुक्मणी द्वारा 'परी क्या गुनाह है । इस प्रकार कवि ने अपनी भक्ति की एक विचित्रता प्रकट की है । [5]

---

१ – वेलि क्रिसन रुकमणी री सम्पा० डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर भूमिका पृ० ३५ ।

२ –क– सम्पादक श्री हमीरदान जी मोतीसर, पालणपुर, सन् १९३३ ई० ।

ख–सम्पादक पुरुषोत्तम'आलोक' भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान बीकानेर ।

३ – प्रका० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रन्थांक ७८ ।

४ – पद्य स० १–३ ।   ५ – पद्य स० ५–८१ ।

८६ ३। वेलि कृता महाराज पृथ्वीराज ने उक्त प्रसंग के स्थान पर रुक्मिणी के नख शिख वर्णन और वय संधि वर्णन का आयोजना की है। पृथ्वीराज और सायांजी की काव्य रचना में उद्देश्य भिन्नता स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होता है। वेलिकार का ध्यान भक्तिमय शृंगार की ओर है किंतु सायांजी का लक्ष्य श्रीकृष्ण चरित्र निरूपण और वीर रस की अभिव्यक्ति है।

८७ ३। सायांजी ने रुक्मया के शब्दों में श्रीकृष्ण लीला का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण की आलोचना भी की है —

लवण बत्रीस तेत्रीसमो ए लपण।
घरा घर चारेउ पसू तवेनत घण।
प्रथम दहो दूध मापण तणी पत गली।
आगळी आपता माहु एणे गली।
तात ने मात वीवाह पड भड टली।
मेलया घणा घरवास आया मली।
साझ सूर उगमण तात महतारीया।
पुत्र साझयो मले घाट वगहारोया॥ [१]

'कवि की इस विषय में प्रसंग भी सर्वथा अनुकूल प्राप्त हुआ है क्योंकि रुक्मया श्रीकृष्ण का कुरूप रूप बना कर उनसे रुक्मिणी का विवाह नहीं करने के लिए अपने पिता को सहमत करना चाहता है और पिता श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए रुक्मया को समझाना चाहते हैं।

८८ ३। कविवर सायां जी ने प्रस्तुत काव्य में श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं का निरूपण किया है। यथा— पूतना वध [२], चीर हरण लीला [३], दान लीला [४] औखल बंधन [५], नागदमन [६], और गोवर्द्धन धारण [७] आदि। श्रीकृष्ण के परब्रह्म विष्णु रूप की ओर संकेत करते हुए कवि ने सागर मथन और लक्ष्मी वरण का भी उल्लेख किया है। इसी प्रकार कवि ने राम और कृष्ण की एकता भी युग के अनुकूल अनूठे रूप में प्रतिपादित की है।[८] कवि ने राजा भीष्मक के शब्दों में तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गंगा और लक्ष्मी का प्रसरण भी श्रीकृष्ण के चरणों से बताया है।[९]

८९ ३। रुक्मया राजा भीष्मक की बाता की ओर ध्यान नहीं देता हुआ रुक्मिणी के विवाह हेतु शिशुपाल का लग्न [पत्रि]का प्रेषित कर देता है।[१०] आगे कवि ने शिशुपाल द्वारा विवाह हेतु प्रस्थान करते समय के और मार्ग के अपशकुनों का वर्णन किया है, [११] जिसमें

---

१ — पद्य सं० ७-८। २ — पद्य सं० ६। ३ — पद्य सं० ९।
४ — पद्य सं० १०। ५ — पद्य सं० १७। ६ — पद्य सं० १६।
७ — पद्य सं० ३६। ८ — पद्य सं० ४०। ९ — पद्य सं० ४६।
१० — छंद सं० ५२। ११ — छन्द सं० ५३-६२।

प्रकट है कि कवि को शकुन शास्त्र का विशेष ज्ञान था। तदुपरान्त कवि ने रुक्मिणी की विपन्नावस्था बताते हुए रुक्मिणी की ओर से ब्राम्हण द्वारा श्रीकृष्ण को पत्रिका भेजने का वर्णन किया है।[1] ब्राह्मण द्वारिका जाता हुआ रास्ते में सो जाता है और जागने पर अपने आपको द्वारिका में पाता है तो उसकी प्रसन्नता का पार नहीं रहता। इस प्रसंग में देव अर्थात् ब्राह्मण को देवाधिदेव अर्थात् श्रीकृष्ण द्वारा दर्शन देने का उक्ति सौन्दर्य द्रष्टव्य है।[2] आगे कवि ने श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी का विनती पत्र प्रस्तुत किया है जिसमें श्रीकृष्ण के परम ब्रह्म स्वरूप का वर्णन भी है।[3]

९० ३। कृष्ण रुक्मिणी के पत्र में "निमपरो बिलबरो नाथ अवसर नथी" पढ़ते ही रथ मंगवा कर कुन्दनपुर की ओर चल दिये।[4] ब्राह्मण का श्रीकृष्ण सहित आगमन जान कर रुक्मिणी प्रसन्न हुई। रुक्मिणी ने लक्ष्मी के रूप में ब्राम्हण के आगे नमन किया तो ब्राह्मण को किस बात की कमी हो सकती थी।[5]

९१ ३। बलदेव को श्रीकृष्ण के जाने की सूचना मिली तो वे पूर्ण सैनिक तैयारी के साथ श्री कृष्ण की सहायता हेतु पहुंचे। थोड़े समय के लिए भी अलग नहीं होने वाले हलधर और गिरिधर कुन्दनपुर में पुनः मिले तथा इनका आगमन सुनकर राजा भीष्मक को प्रसन्नता हुई।[6] आगे, कवि ने श्रीकृष्ण के कुन्दनपुर में स्वागत सत्कार और विभिन्न पात्रों की चित्तवृत्तियों का वर्णन किया है। कुन्दनपुर में एक रुक्मया के बिना सभी श्रीकृष्ण के आगमन से प्रसन्न हुए और उनके दर्शन हेतु लालायित हुए।[7] श्रीकृष्ण के स्वागत में सज्जनों के मुख 'राजीव जिम सरद ऋतु' की भांति विकसित हो गये, और कृष्ण रुक्मिणी परिणय की कामना हेतु अपने सुकृत अर्पित करने लगे।[8] राजा भीष्मक ने कृष्ण को भक्तिपूर्वक सात खण्डे महल में ठहराया।[9] इस अवसर पर शिशुपाल भी अपने सहयोगी राजाओं और सम्बन्धियों सहित रुक्मिणी से विवाह करने हेतु पहुंच जाता है। "कन्या हेक ने वर बेय चढ़ीया कड़े।" के कारण दोनों पक्षों की ओर से युद्ध की तैयारी होती है क्योंकि अब युद्ध अवश्यंभावी हो चुका था।

९२ ३। रुक्मिणी अपनी सहेलियों के साथ अम्बिका-पूजन के लिए जाती है तो शिशुपाल और जरासन्ध पूरी सावधानी से रुक्मिणी की रत्न के समान रक्षा का प्रबन्ध करते हैं—

जपे जरासिंध ए घात जो सैंधणी।
राखीये रतन जिम जतन कर रुषमणी॥[1]

---

1 – पद स० ६३ से ६६।
2 – पद सं० ६६।
3 – पद स० ७४।
4 – पद स० ७३।
5 – पद स० ७८ ८०।
6 – पद सं० ८१ से ९०।
7 – पद स० ९१।
8 – पद स० ९३।
9 – पद सं० ९८।
10 – पद स० १०९।

९३ ३। शिशुपाल के सैनिकों ने सुरक्षा हेतु रुक्मिणी और सहेलियों सहित मन्दिर के चारों ओर घेरा डाल दिया और — 'चालतो कोट चौफेर लीधो चुणी।'

रुक्मिणी ने ज्यांही अम्बिका का पूजन कर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा की तो आकाश मार्ग से श्रीकृष्ण ने पहुंच कर रुक्मिणी को अपने रथ में बैठा लिया और समस्त सैनिक मूर्छित हो गये।[1]

९४ ३। रुक्मिणी हरण का एक प्रमुख अंग युद्ध वर्णन है। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर ज्यांही शंख नाद किया, समस्त सैनिक लड़ने हेतु उद्यत हो गये।[2] कविवर सायां जी भक्त होने के साथ ही एक कुशल योद्धा भी थे इसलिए "रुक्मणी हरण" में मध्य कालीन भारतीय युद्ध पद्धति का विस्तृत एवं यथार्थ वर्णन उपलब्ध होता है।[3] युद्ध-वर्णन प्रस्तुत काव्य का एक प्रमुख और महत्वपूर्ण भाग है, जिसमें कि यह वीर रस प्रधान हो गया है। इस युद्ध वर्णन के अन्तर्गत शत्रु सेना के युद्ध प्रयाण का, विभिन्न प्रकार के मध्यकालीन आयुधों का विविध वाहनों का वीरों के सिंहनाद का, कायरों का भाग दौड़ और घायलों की कराहट का हृदयस्पर्शी चित्रण है।

९५ ३। सेना प्रयाण से आकाश मंडल धूल से आच्छादित हो गया जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

> चक्कवे चक्कवी पूर रयणा चिया।
> गेहणी छोड़ भरथार दूरें गिया॥
> मेंघ पुड ऊपडी पेह पेहा मली।
> आपरा बच्चा ने ना उलपे अनली॥[4]

९६ ३। युद्ध सम्बन्धी वाद्यों और आयुधों की गर्जना का प्रभाव भी कवि ने व्यक्त किया है।[5] युद्ध में श्रीकृष्ण द्वारा किये गये शस्त्र प्रभाव और उसके प्रहार का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है।

९७ ३। श्रीकृष्ण और बलदेव के सामने युद्ध में शिशुपाल, जरासन्ध और रुक्मैया तीनों ही पराजित हुए। श्रीकृष्ण ने रुक्मैया को बांध लिया किन्तु फिर रुक्मिणी के निवेदन पर उसकी आधी मूंछ और मस्तक मुण्डित करवा कर मुक्त कर दिया। तदुपरान्त कवि ने युद्ध स्थल में प्रवाहित होने वाली लोहू की धाराओं, हाथियों, घोड़ों और योद्धाओं की कटी हुई लोथों और पलचरों की प्रसन्नता आदि का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण की विजय सूचित की है।

---

१ – पद्य सं० ११८–११६।　　२ – छन्द सं० १२०–१२२।
३ – छन्द सं० १२३–१६४।　　४ – छन्द सं० १३०।
५ – पद्य सं० १५०, १५१, १५४　　६ – पद्य सं० १७३, १७४।

दृष्टव्य है कि कवि ने श्रीकृष्ण को पूर्णब्रह्म परमेश्वर और दुष्टों का विनाश कर पृथ्वी का भार उतारने वाले लिखा है एवं रुक्मिणी को सीता अथवा लक्ष्मी कहा है।[1]

कवि ने आगे श्रीकृष्ण के रुक्मिणी सहित द्वारिका लौटने, द्वारिका की सजावट और जनता द्वारा किये गये उनके स्वागत का चित्रण किया है।[2] तदुपरान्त कवि ने ज्योतिषियों द्वारा श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह की लग्न वेला निश्चित करने, श्रीकृष्ण के वस्त्राभूषणों द्वारा सज्जित होने और विधि पूर्वक विवाह होने का वर्णन किया है।[3] कवि ने विवाह वर्णन के पश्चात् श्रीकृष्ण-रुक्मिणी की रति-क्रीड़ा के विषय में यही लिख कर मौन धारण कर लिया है–

रुपमणी किसन र रग पूगी रयण।
रग रस कहत जा सेस देतो रसण ॥[4]

९८ ३। कवि ने काव्य को पूर्ण करते समय श्रीकृष्ण की राज्य सभा का वर्णन करते हुए उनकी महानता, उदारता, कलाप्रियता, न्याय भावना और गुण ग्राहकता की ओर संकेत किया है।[5]

९९ ३। हरण में वीर रस का प्राधान्य है। इसके कर्ता एक चारण कवि हैं जिससे काव्य में वीर रस का होना सर्वथा उचित है।

'हरण' का वीर रस युद्ध विषयक है, जिसके आलम्बन शिशुपाल, रुक्मैया और जरासिन्धादि शत्रु, उद्दीपन इन शत्रुओं की शक्ति, अहंकार और ललकार, अनुभाव श्रीकृष्ण बलदेवादि की युद्ध में स्थिरता और रोमांचादि तथा संचारी भाव, युद्ध में विभिन्न योद्धाओं का गर्व, धृति, तर्क और आवेग आदि हैं जिनका निरूपण काव्य में यथास्थान सफलता पूर्वक हुआ है। शांत, शृंगार और बीभत्सादि रसों का भी कतिपय स्थलों में वर्णन हुआ है। 'हरण' के कर्ता एक सिद्ध महात्मा माने गए हैं जिनकी दास्य भक्ति का निरूपण मुख्यतः काव्य के प्रारम्भ में और अन्त में हुआ है। 'हरण' काव्य में श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है इसलिए शृंगार वर्णन का कवि के लिये पर्याप्त अवसर था किन्तु कवि ने रुक्मिणी के बाल रूप वर्णन, वयःसन्धि वर्णन, शृंगार वर्णन, संयोग षट्ऋतु वर्णन छोड़ दिया है। सम्बन्धित कथानक में शृंगार रस के अनुकूल अनेक तत्व उपलब्ध हैं किन्तु कवि ने उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा है। इसके विपरीत युद्ध वर्णन में जैसी पूर्णता और विस्तार "हरण" में है, उसका वेलि में अभाव है। वेलि में शृंगार, शांत और वीर रसों की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है तो हरण में शांत और वीर रस का सफल समन्वय हुआ है।

१०० ३। शांत रस के अन्तर्गत 'हरण' में कवि का भक्ति स्वरूप निराला ही है क्योंकि इसमें दास्य भक्तिजनित विनम्रता, कातर निवेदन और माधुर्य के साथ ही श्रीकृष्ण को कटु आलोचना का भी समावेश हुआ है।

---

१ – पद संख्या १६४। २ – पद सं० १६७। ३ – पद सं० २०३—२१४।
४ – पद सं० २१५। ५ – पद सं० २१८–२१९।

अनुप्रास, श्लेष, यमक और रूपकादि सामान्य प्रचलित अलंकार तो इस काव्य में यत्र तत्र दृष्टिगोचर होते ही हैं किन्तु मध्यकालीन राजस्थानी काव्य में प्रचलित 'वरण सगाई' अलंकार का निर्वाह प्राय समस्त छन्दों में हुआ है। मध्यकालीन राजस्थानी कवियों की ऐसी मान्यता रही है कि 'वैणसगाई'' का निर्वाह होने पर काव्य में किसी प्रकार का दोष नहीं रहता —

आवे इण भाषा अमल वैण सगाई वेस।
दग्ध अगण वद दुगुण रो, लागे नह लवलेस॥

पारस्परिक वैर अथवा दोष मिटाने हेतु परिवारों में विवाह सम्बन्ध निश्चित कर लिये जाते थे अर्थात् वाग्दान-सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। ''वयण सगाई'' का अर्थ वाग्दान और वरण सम्बन्ध दोनों से ही है। इस विषय में लिखा गया है —

वयण सगाई वेस, मिलया साच दोषण मिटै।
विण हिक समै कवेस, थपियो सगपण ऊपजै॥
खून किया जाणे खलाक, हाड वैर जो होय।
वैण सगाई वेस तो, कलपत रहै न कोय॥

—रघुनाथ रूपक गीता रो।

इस प्रकार मध्यकालीन राजस्थानी काव्य में वयण सगाई' अलंकार का निर्वाह छन्द के प्रत्येक चरणों में अनिवार्य हो गया था। इसके अभाव में काव्य कलापूर्ण बहुत से छन्द भी स्वयं कर्ताओं द्वारा ही नष्ट कर दिये गये। सर्व प्रथम राजस्थानी भाषा के समर्थ कवि महाकवि सूर्यमल ने 'वयण सगाई'' के बन्धनता को शिथिल करते हुए लिखा —

वैण सगाई वाळिया पेखीजे रस पोस।
वीर हुतासण बोल में, दीसे हेक न दोस॥ —वीर सतसई

सूर्यमल का मत था कि वयण सगाई के प्रयोग से रस का पोषण देखा जाता है किन्तु वीर रस पूर्ण काव्य में कोई दोष नहीं होता।

१०१ ३। 'वयण सगाई'' तीन प्रकार की मानी गई है —

वरण मित्त ज् धरण विध, कवियण तीन कहत।
आद अधिक सममध अवर न्यून अक सो अंत॥

उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार में उत्तम वैण सगाई के तीन उपभेद हैं जिनके उदाहरण रुक्मिणी हरण में इस प्रकार हैं —

१ आदिमेल— चरण में प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति उसी चरण के अन्तिम शब्द के आदि में हो, यथा —

मत मला राय हर राय कुअरो मली। २२
या वीमाहरो साच पीजे वनी। २४

२ मध्यमेल– चरण में प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति उसी चरण के अंतिम शब्द के मध्य में हो —

वमन पत मात सुन छात जणाविया। १२
चाहटे पाल ज्यु महै ये रावता। १२४

३ अन्तमेल– चरण में प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति उसी चरण के अंतिम शब्द के अंत में हो —

दूसरा दुरगड तलाल वाला नर। ८१६
तवे जरासत समपाल रहू सावनो। १३६ ४३

मध्यम कोटि की "वयण सगाई" असमान स्वरा, स्वर और "य अथवा व" का मेल होने पर कही जाती है जिसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं —

अवर मदराग यथा राजवस एकला।
ऊरजे आहीज मत सुथरण आवए।
ओतजीआ चरण वारण वदना॥

अधम कोटि का वयण सगाई विभिन्न वर्गों जैसे 'ट' वर्ग और 'त' वर्ग अथवा अल्प प्राण और महा प्राण वर्णों का मेल होने पर मानी जाती है। यथा —

तात ने मात वीवाह पड भड टली। ८४
चोकरा आय कुमेर रा छोडीया। १७७[1]

'हरण' के अनेक छन्दों में 'वैण सगाई' का निर्वाह नहीं भी देखा जाता है जिसका कारण यही हो सकता है कि तब तक 'वयण सगाई' की राजस्थानी काव्य में विशेषता अवश्य हो गई थी किन्तु उसका निर्वाह अनिवार्य नहीं हो पाया था। हरण की प्राप्त सभी प्रतियों में काव्य में प्रयुक्त प्रमुख छन्द का नाम झाताल मिलता है। झाताल का प्रयोग ३ गाहा चोसर और दूहे के पश्चात् अन्त तक हुआ है।

संवाद और सूक्तियां

१०२ ३। 'हरण' में संवादों और सूक्तियों का प्रयोग अनेक प्रसंगों में विशेष रुचिकर हो गई है। संवादों से सम्बन्धित पात्रों के चरित्र चित्रण और प्रसंग निरूपण में चातुर्यपूर्ण

१ — प्रथम अंक छन्द संख्या का और द्वितीय अंक पृष्ठ संख्या का सूचक है।

स्वभाविकता का समावेश हो जाता है, प्रस्तुत का य में मुख्यत निम्नलिखित सवा" दर्शनीय हैं —

१ भीष्मक ग्रौर रुक्मैया सवाद, छ द स० २५१।

२ श्री कृष्ण ग्रौर विप्र (स दश वाहक) सवाद, छ द स० ७०-७१।

३ जराम ध ग्रौर शिशुपाल सवाद छ द स० १३९, १४०।

४ जरास ध ग्रौर बलदेव सवाद, छ द म० १७९ १७९।

१०३ ५। काव्यगत ग्रनक सूक्तिया सम्ब धित वातावरण के सर्वथा ग्रनुकूल होती हुई पाठको का ध्यान ग्राकर्षित करने मे सफल हुई हैं। ऐसी सूक्तियो से काव्यगत प्रसग, प्रभाव पूर्ण बन गये हैं। हरण का कतिपय सूक्तिया निम्नलिखित हैं —

१ ग्रागली ग्रापता बाह् एणे गली। —छ द स० ७ पृ० स० ४

२ हतरा जुगत सु जगत बैकुण्ठ हूवे। —छ द स० ६७, पृ० २२

३ ध या हेक नै घर दोय चडीया चडे। — छ द स० १०३, पृ० ३२

४ हरि तणो जाणीयो सोइ ग्रापर हुसे। —१०४ ३३

५ रापीये रतन जिम जतन कर रुपमणी। —१०६ ३३

६ चालतो कोट चोफेर लीधो चुणी। —११०४०

७ कूद ग्या कायरा बाजता काहली। —१५१ ४७

८ किसन कारज बने पथ हेकण कीया। —१६४ ५५ ग्रादि।

१०४ ३। भक्त कवि सायाजी झूला का 'रुक्मणी हरण' राजस्थानी साहित्य का एक बहुमूल्य रत्न है। हरण की रचना म कवि का लक्ष्य भक्ति ग्रौर वारता का समन्वय रहा है। कवि द्वारा प्रदर्शित भक्ति का स्वरूप भी ग्रनूठा है। हरण' क प्रकाशन से सदियो स प्रवाद रूप में प्रचलित मुगल सम्राट की उक्ति 'पृथ्वीराज! तुम्हारी वेल का चारण बाबा का हरण' चर गया" [1] क सत्य का निर्णय भी सुधि पाठक कर सकेंगे। हरण का युद्ध वर्णन वेलि से ग्रधिक विस्तृत ग्रौर सम्पूर्ण है, कि तु वेलि की ग्रनुपम भाव व्यजना, ग्रनूठ उक्ति वचित्र्य ग्रौर मौलिक कल्पनाग्रो की ऊचाई तक हरण छलाग नही लगा सका है।

१-क- हरण रुक्मिणी री वेलि, हि दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद, भूमिका पृ० ४६।

ख- राजस्थानी भाषा ग्रौर साहित्य ड० मोतीलाल जी मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद पृ० १७६।

ग- डा० ग्रानन्दप्रकाश जी दीक्षित, स्व-सपादित वेलि की भूमिका, पृ० १४ ग्रौर राजस्थान-भारती, बीकानेर भाग ६ ग्रक १-२ पृ० ६।

घ- राजस्थानी शब्द कोष श्री सीतारामजी लालस, राजस्थानी शोध सस्थान, चौपासनी, जोधपुर, भूमिका पृ० १४४।

(४) सूर कृत-रुकमणी-हरण

१०५ ३। सूर कृत 'रुकमणी हरण' १८ छन्दों मे पूर्ण हुआ है। इसमे कवित, छप्पय, दूहा और वेमक्खरी नामक छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसकी प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रहालय में है।[१] यह प्रति संवत् १६०४ में चैत्र शुक्ला सोमवार को प० कांतिकुशल गणि द्वारा गुनानन्द और रगजी के लिए मानकुआ नामक स्थान में लिखी गई है। रचना के तीसरे छन्द से प्रकट होता है कि यह रचना सूर कृत है। कवि ने प्रारम्भ मे सरस्वती वन्दना की है —

॥ कवित्त छप्पय ॥

तो प्रशाद सरसति मात पूरण गुणमाला,
तो परशाद सरसति कीम्रा काइब कवि काला।
तो प्रशाद सरसति माघ गम अगम विचारे,
तो प्रशाद सरसति सुमति सुखदव समारे।
हरि कहण सोक समरथ होम्रो व्याकरण जेम वाणी वणी,
लघु हेक अपर दरि पलवै तो प्रसाद ब्रह्मा तणी।

१०६ ३। कवि ने द्वारका वर्णन प्रसग में काव्य के प्रारम्भ मे ही अपने उक्ति वचित्र्य और काव्य कौशल का परिचय दिया है —

वसहि घर घर वेहल वाहि हरि दीध वहेलो,
हुकम आप जदि हुआ हलाकरि करो हवेली।
कनक धात कट्टाइ नाम थट्टाइ निहचवल,
पटसारा पट्टाइ नग जट्टाइ अति निरमल।
मलीइ उलि समरण महा थभे थभ पलेपीइ,
सूर कहे नरलोक मे दूजी देपीइ ॥३॥

१०७ ३। तदुपरान्त कवि ने बताया है कि एक दिन श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ रथ में बैठकर नरकासुर के द्वार पर गये कृष्ण और नरकासुर दोनो ही लड़े किंतु किसी की हार जीत नही हुई।[२] तब सत्यभामा ने 'काल मारे जो काना' कहा और नरकासुर के प्राण उड़ गये।[३] कृष्ण ने इस प्रकार नरकासुर का सहार कर सोलह हजार नारियों का उद्धार किया और उन्हें अपने महल में ले आये।[४] आगे कवि ने राजा भीष्मक उसकी राजधानी कुन्दनपुर और राजकुमारी रुक्मिणी का वर्णन किया है।[५] राजा, रानी और राजकुमार रुक्मया रुक्मिणी

---

१ – ग्रन्थांक ८७५। २ – छन्द स० ६। ३ – छन्द स० ६।
४ – छन्द स० ७। ५ – छन्द स० ६।

के विवाह का चिंता करते हुए योग्य वर के विषय में विचार करते हैं।[1] राजा भीष्मक कृष्ण को रुक्मिणी के योग्य वर बताते हुए कृष्ण का महत्व बताते हैं।[2]

१०८ ३। रुक्मया ने उत्तर देते हुए राजा से कहा 'हे राजा! वृद्धावस्था में आपकी बुद्धि नष्ट हो गई है। कृष्ण जाति का अहीर है। कंधे पर कंबल डालकर ग्वाई स्त्रियों के साथ दही का स्वाद लेता रहा है। वह काले वर्ण का है और दो पिताओं का पुत्र है। आपकी बुद्धि चली गई है जो आप उसको अपना जामाता बनाना चाहते हो[3]'। राजा ने अपने पुत्र को समझाते हुए कहा— "शिव इंद्र और ब्रह्मा भी परमेश्वर श्री कृष्ण की चरण सेवा की इच्छा करते हैं। इसलिये कृष्ण की ही शरण पर जाना चाहिये।[4] श्री कृष्ण वास्तव में नारायण हैं। तू शनि की तरह बैठा है, इसलिए अनाप की बातें करता है'।[5] रुक्मया क्रोधित होता हुआ राजा के सामने से उठ गया। रुक्मैया ने शिशुपाल को रुक्मिणी के विवाह हेतु लग्न पत्रिका भेजी।[6] शिशुपाल की बरात रवाना हुई तब अनेक प्रकार के अपशकुन हुए जिनका वर्णन कवि ने विस्तार पूर्वक किया है।[7]

१०९ ३। कवि ने रुक्मिणी विवाह के अवसर पर कुन्दनपुर की हुई सजावट का वर्णन करते हुए सखियों के उन्माद और रुक्मिणी के रुदन का उल्लेख किया है। इसी अवसर पर एक ब्राह्मण रुक्मिणी के पास आया जिसको रुक्मिणी ने भाई कहकर सम्बोधित किया।[8] रुक्मिणी ने अपने काजलयुक्त आंसुओं की स्याही और नखों की लेखनी द्वारा कृष्ण के नाम पत्र लिखा। रुक्मिणी ने लिखा 'हे कृष्ण! मैं आपको नहीं भूल सकती हूं किंतु आपने मुझे भुला रखा है। जब कोई मुझे हाथ पकड़ विवाह कर ले जायेगा तो आपका क्या सम्मान रहेगा।'[9] ब्राह्मण ने कुन्दनपुर से द्वारका के लिए प्रस्थान किया। रात होने पर मार्ग में सो रहा। प्रातःकाल जागने पर द्वारका में उठा।[10] ब्राह्मण ने प्रसन्नता पूर्वक कृष्ण के पास पहुँच कर रुक्मिणी का पत्र समर्पित किया और कहा— "राजा भीष्मक की राजकुमारी ने मुझे भेजा है उसने महादुखित होकर पत्र लिखा है। यह पढ़िये!"[11] रुक्मिणी का पत्र देखकर कृष्ण की आंखों में आंसू आगये तब कृष्ण ने पढ़कर सुनाने के लिए पत्र ब्राह्मण को दिया —

> अपर दपि अपिया आप आसू भराया,
> तदि कागद तिहा दीया सबद द्विज बाचि सुणाया।
> हूँ बंदि राउली राज साहिब मो हुवा,
> हू सदा सुहागण नारि साप मरे नाग सुरिदा।
> ससपाल जान सकी आ थका वहो आइ चडोओ कडे।
> कोई न कहे आज आवे कुसल प्राण छोडि रुपमणि पडे॥[12]

---

१ – छंद सं० १०–१२।	२ – छंद सं० ११।	३ – छंद सं० १४।
४ – छंद सं० १५।	५ – छंद सं० १७।	६ – छंद सं० १८।
७ – छंद सं० १९–२१।	८ – छंद सं० २२।	९ – छंद सं० २३।
१० – छंद सं० २४।	११ – छंद सं० २५।	१२ – छंद सं० २६।

नाग तणी नागिणी परणि ने जाइ परउ को,
सीह तणी सीहणी जार ले जाइ जबु को।
हसी तणी हंसीणी मयर तेवा ग्रो गय,
जाए ग्रा हदी जोहि राक तीतर किम रवै।
महाराज जुद्ध करता मेहर कहो ग्रडछ न करो कही।
महणार मथर न भलो मुनैं तो निमप प्राण रष्णु नही।[1]

११० २। कृष्ण न मध-पवन रथ मगा कर उसम वाग्वान घाडे जुनवाये। ब्राह्मण को साथ बटाया। धनुष बाण सजाया और कुन्दनपुर में ग्राकर ग्रपना टहराव किया।[2] ब्राह्मण न रथ स उतर कर रुक्मिणी को कृष्ण क ग्रागमन की सूचना दी। राजा भीष्मक न कृष्ण का ग्रागमन जानकर प्रसन्नता प्रकट की और ब्राह्मण को दक्षिणा दी।[3] बलदेव भी कृष्ण से ग्रा मिले। भीष्मक को बहुत सुख हुग्रा।[4]

१११ ३। रुक्मिणी क लिए देवी पूजन क ग्रवसर पर ही श्रीकृष्ण से मिलने का ग्रवसर था इसलिए रुक्मिणी न ग्रपन माता पिता स देवी पूजन क लिए ग्राज्ञा मागी।[5] प्रस्तुत काव्य क इस प्रसग म एक विशषता है कि राजा भीष्मक देवी पूजा क विषय म शिशुपाल स भी ग्रनुमति प्राप्त कर लते हैं —

भींमक चाकर भेजीउ पूछेजा ससपाल।
देवी पूजण दीकरी करि ग्रावे ततकाल॥ ३४॥

११२ ३। रुक्मिणी ग्रम्बिका-पूजन के लिए चली तो शिशुपाल ने सुरक्षा का भारी प्रबन्ध किया।[6] सुरक्षा का ऐसा प्रबन्ध देखकर रुक्मिणी चिन्तित हुई कि इतने योद्धा कब मारे जायगे और कब वह कृष्ण का वरण कर सकगी।[7] कृष्ण ने सना क बीच में स होकर रुक्मिणी का हाथ पकड कर उसको ग्रपन रथ म ले लिया।[8] शिशुपाल देखता ही रह गया और दुल्हन को यादव ल गये। बरात मे हडबडी मच गई और कन्या पक्ष म खलबली मच गई।[9]

ग्रागे युद्ध का वर्णन मुख्यत कमल्परी छन्द क ग्रन्तगत किया गया है। यह वर्णन रूढ़िगत होन हुए भी यथार्थ लगता है।

---

१ – छन्द सं० १७।
२ – छन्द स० २८–२६।
३ – छन्द स० ३०–३१।
४ – छन्द स० ३३।
५ – छन्द स० ३६।
६ – छन्द स० ३७।
७ – छन्द स० ४०।
८ – छन्द स० ४२ ४३।
९ – छन्द स० ४७ ५५।

॥ कवित्त छप्पय ॥

भले लोह घमसाण पाण अपुरा पहाड ।
जोगाण डाहण जरप अमप भप लेअण आहार ।
बुका काल जबूक भूत भैरव इग मापै ।
सामल पुत्र जे सग एम आसीस ज आपै ।
गिरजा अन ले गई गगन लगस पवन बागो तरत ।
सुण तान तणा सामलि सबद गिनरी कथ हुउ गिरत ॥ [1]

११३ ३ । श्री कृष्ण न रुक्मया को उसके सिर व वस्त्र मे रथ म बाध लिया । शिशुपाल और जरासध भी कृष्ण से पराम्त हो गये ।[2] रुक्मिणी ने अपन भाई की ब धना वस्था स दु ख प्रकट किया और बलदेव ने श्रीकृष्ण को इस विषय में उपालम्भ दिया तो श्रीकृष्ण न रुक्मैया को मुक्त कर दिया ।[3]

११४ ३ । रुक्मिणी के साथ यादव द्वारिका पहुचे ।[4] कवि ने श्रीकृष्ण के लिए रघुराई नाम का भी प्रयोग किया है । द्वारिका मे श्रीकृष्ण सैनिका सहित पहुँचे और वसुदेव देवकी स मिल । [5] देवकी न ब्राह्मणो को बुलाकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह का मुहूर्त पूछा तो ब्राह्मणो ने कहा ' हरि न रुक्मिणी का हाथ पकडा तभी पाणिग्रहण सस्कार हो गया ।' [6]

११५ ३ । विवाह सम्बन्धी प्रसग म हम देखते है कि ब्राह्मणो ने पाणिग्रहण मन्त्र की उत्तर क बिना ही पुन पाणिग्रहण सस्कार करवाया है ।[7] विवाह के बाद रुक्मिणी के श्रृ गार का वर्णन इस प्रकार किया है ।

कृष्ण मलण कारणें कीआ आभूषण केहा,
भमरा भामिया भमर अधर प्रवालो एहा ।
हरीआ लकी गति हस कमल ज्यु कमल विकास,
दसण बीज दाडिम्म सीस मझि चद प्रकासे ।
नासिका कीर सोभै विकट वेणी सेस विराजियो ।
सिणगार हार सु दर सझे सेज रमेवा सझोयो ॥[8]

---

१ – छद स० ५७ । २ – छद स० ५८ ।
३ – छद स० ५९ । ४ – छद स० ६० ।
५ – छद स० ६१ । ६ – छद स० ६२-६४ ।
७ – छद स० ६५ । ८ – छद स० ६७ ।

११६ ३। काय के अंत में श्रीकृष्ण रुक्मिणी का समागम वर्णन किया गया है जिसमे कवि ने मर्यादा का पूर्ण रूपेण पालन किया है —

> बिहुँ मोहोला छबि बणी बणी नद नदन वागा,
> महाँ रूप रुपमणी आइ ऊभी मुह आगा।
> जदि आप उठिया तूठीश्रा दिश्रण दिलाया,
> एक रूप होइ अधिक विरुद्ध अण करण विलासा।
> सास्त्र गरथ जोयो सही कहो सुणी दीठी वणी,
> चतुर से साम सेजा चढे एह सुख जाणे तु ही ॥ [1]

इस प्रति का पुष्पिका लेख इस प्रकार है —

इति श्री रुपमणी हरण सपूरण ॥ १६०४। चैत्र सुदि सोमे लिखत पा कीर्ति कुशल गणि वाचनाथ चिरजीवी गुलाबचद तथा रग जी श्री मानजूश्रा मध्ये। श्री ॥

(५) मुरारीदान बारहठ कृत "विजय-विनोद"

११७ ३। कवि ने प्रारम्भ म गणेश स्तवन करते हुए सरस्वती की वन्दना की है [2] तदुपरान्त कवि ने रुक्मिणी हरण सम्बधी कथा का महत्व बताया है। [3] कवि ने कु दनपुर का वर्णन विस्तार से किया है। जिसमे कवि की वस्तु वर्णन प्रतिभा प्रकट होती है। द्वारिका वर्णन मे पड पौधा के नाम भी विस्तार स बताये गये हैं —

> कुनणापुर भीसम राज करै। घर सारीय उपर छत्र धरै ॥
> तिणारै सह मिदर हम तणा। घणा मालाय नग जडाव घणा ॥
> जालिया विच हीर पना जडिया। परदा जरिबाफ तणा पडिया ॥
> अन गध सुगध रो बी अतरा। कसतूर कपूर कुम कुमरा ॥
> बिच बाग बडा रसता वणिया। इस ऊजल सोनल ऊफणिया ॥
> छडकाव कुम कुमरा छडकै। कुसमाद गुलाब कला तडके ॥
> राय बेल चवेलिय मालसरी। केवडा केतकी वयारियाँ केसरी ॥
> जिहा पाडल चपका जाय जुही। साया गुल नारग रग सही ॥ [4]

११८ ३। कवि ने राजा भीष्मक के ऐश्वर्य, याय दण्डविधान और काव्य प्रेम आदि का भी वर्णन किया है। [5] तदुपरान्त कवि ने भीष्मक की सन्तानों का संक्षिप्त वर्णन

---

१ – छन्द स० ६८।
२ – छन्द सं० १–२।
३ – छन्द स० ४।
४ – छन्द सं० ६–६।
५ – छन्द स० १४–२३।

करते हुए रुक्मिणी का वर्णन किया है। रुक्मिणी के वर्णन को कवि ने थोड़े ही शब्दों मे लिखा है।[1] राजा भीष्मक श्रीकृष्ण से रुक्मिणी का विवाह करना चाहते हैं तो रुक्मैया स्पष्ट शब्दों मे उनकी निन्दा करता है—

> त्रिण भात अहीर सगा करिये। ओछी मत नीच तो आदरिये॥
> माय जेण जसोदाय बृज म। है नदराय पिता नृप जाणत है॥[2]
> कहिसा पण तात खिमा करजो। धर धीरत ग्यान हिदै धरजो॥
> आणिया ओलमा उण ज्वान इसा। दुख दायक मा पिता बाल दिसा॥[3]

राजा श्रीकृष्ण की महिमा बखानते हुए रुक्मया को समझाने का प्रयत्न करते हैं कि कृष्ण विष्णु के अवतार हैं और सच्चे क्षत्रिय के रूप में द्विजा और दीनो के सहायक हैं। रुक्मया अहकार म अपने ज्ञान को भूल गया है।[4] यदुपति कृष्ण के समान अन्य कोई वीर नहा है।[5] आगे रुक्मया कहता है, कृष्ण ने अपने मामा कंस को मार कर उसके वश का उच्छेद कर दिया दासो की ओर चित्त लगाया इनकी बहिन ने एक साथ पाच पुरुषो से विवाह किया और लोक लज्जा का कोई विचार नहीं किया। ऐसे कृष्ण स राजकुमारी का विवाह करना सवथा अनुचित होगा।

११६ २। भीष्मक श्रीकृष्ण क परम ब्रह्म स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते है कि कृष्ण वास्तव में विष्णु हैं और रुक्मिणी के रूप में साक्षात् लक्ष्मी ने अवतार लिया है।[6] जिसने अघासुर, शकटासुर, धेनकासुर जसे दैत्यो का विनाश किया, कालिय नाग का दमन किया गोवधन पवत को धारण किया वह कृष्ण साक्षात विष्णु ही है।[7] राजा ने अनेको अवतारों का वर्णन करते हुए कृष्णावतार की महिमा बताई है।[8] रुक्मैया ने शिशुपाल जस राजा से ही रुक्मिणी क विवाह का निश्चय प्रकट करते हुए एक ब्राह्मण के द्वारा विवाह का मुहूर्त निश्चित कर शिशुपाल के पास लग्नपत्रिका भेज दी।[9] ब्राह्मण ने चन्देरी पहुँच कर लग्नपत्रिका शिशुपाल को दी।[10] शिशुपाल ने उत्साहपूर्वक विवाह की तयारी की और यथासमय कुन्दनपुर क लिए प्रस्थान किया। कवि ने शिशुपाल के माग में होन वाले अपशकुनो का भी वर्णन किया है।[11]

---

१ – छद सं० २५–२६। २ – छद स० ३१।
३ – छद स० ३६। ४ – छद स० ४०–४१।
५ – छद स० ४२। ६ – छद स० ४८–५०।
७ – छद स० ५२ ५३। ८ – छद स० ५५–५६।
९ – छद स० ६१–६२। १० – छद स० ६४–६६।
११ – छद स० ७२–७४।

१२० ३। कुन्दनपुर में उत्साहपूर्वक रुक्मिणी के विवाद की तयारी होती है। रुक्मिणी की सखियां प्रसन्न हैं किन्तु उनके बीच रुक्मिणी बिलख रही है। रुक्मिणी ने किसी तरह पत्र लिख कर ब्राह्मण को दिया और कहा कृष्ण को लेकर तुरन्त यहां लौटो। ब्राह्मण ने विचार किया, दूर जाना है और सूर्य अस्त हो गया है —

> सह सत करे इण भात सखी, त्रिन हेकण जाय रुखमा बिलखी ॥
> लिखमी किण भात सू ले लिखियां दिज हेकण कागद हाथ दीयो ॥
> जगपति जदुपति जाहि जठै प्रति आतुर वेग लै आव अठै ॥
> कर कागद लै दुज सोच कीयो, अलगो घर सुरज आथमीयो ॥ [1]

१२१ ३। ब्राह्मण रात में सो रहा किन्तु प्रातःकाल होते ही उसको द्वारका के दर्शन हुए। कवि ने रुचिपूर्वक द्वारका का वर्णन किया है। [2] श्रीकृष्ण की उदारता राजसी रूप और सुन्दरता का वर्णन भी कवि ने विस्तार से किया है। [3] ब्राह्मण ने आशीर्वाद देकर रुक्मिणी का पत्र श्रीकृष्ण को समर्पित किया। रुक्मिणी का पत्र [4] पढ़ते ही हरि कुन्दनपुर के लिए रवाना हो गये। श्रीकृष्ण धनुष बाण सजा कर और कुन्दनपुर का मार्ग जानने वाले पुरोहित को साथ लेकर अपने रथ के घोड़ों को तेजी से चलाते हुए तुरंत ही कुन्दनपुर में पहुँचे गए। [5]

१२२ ३। बलदेव ने श्रीकृष्ण को ब्राह्मण सहित कुन्दनपुर की ओर गया हुआ सुना तो वे भी सैनिकों सहित युद्ध की तयारी कर श्रीकृष्ण से जा मिले। श्रीकृष्ण और बलदेव ने सैनिकों सहित कुन्दनपुर के नर नारियों को बहुत प्रभावित किया। नर नारियों ने यही मनोकामना की कि रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से हो। [6]

१२३ ३। राजा भीष्मक ने श्रीकृष्ण बलदेव का पूर्णरूपेण स्वागत-सत्कार किया। श्रीकृष्ण का आगमन सुनकर शत्रु दहल गये। रुक्मिणी ने अपने परिवार वालों से पूछकर देवी मन्दिर में पूजन के लिए अपनी सहेलियों सहित प्रस्थान किया। [7]

१२४ ३। अन्य काव्यों से प्रस्तुत काव्य में दुर्गा पूजन के प्रसंग में एक भिन्नता है कि मन्दिर में मिलने का संकेत रुक्मिणी के पत्र में नहीं दिया गया है। विरोधी पक्ष ने रुक्मिणी की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया। [8] किन्तु कृष्ण ने इसी अवसर को हरण

---

१ – छन्द सं० ७८–७६।
२ – छन्द सं० ८०–६०।
३ – छन्द सं० १०१–१०७।
४ – छन्द सं० ११०–११३।
५ – छन्द सं० ११४–११५।
६ – छन्द सं० ११६–१२१।
७ – छन्द सं० १२२।
८ – छन्द सं० १२६–१२६।

लिए सवथा उपयुक्त जान कर रुक्मिणी का हरण कर लिया " हरि आप री लछ हरि रै हरि " । [1]

१२५ ३ । कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी का हरण जानकर शिशुपाल युद्ध के लिए तत्पर हो गया ।[2]

कवि ने युद्ध का वर्णन विस्तार से किया है ।[3] युद्ध में शिशुपाल और रुक्मैयादि की पराजय हुई । श्रीकृष्ण ने रुक्मया को बाध लिया तब रुक्मैया ने दसों ऊ गलिया मु ह में देते हुए क्षमा प्राथना की । राजस्थान मे दसा ऊ गलिया मु ह म देकर क्षमा प्रार्थना करने की प्राचीन प्रथा है जिसको 'आडिया खाना' कहा जाता है । रुक्मया ने मृगया क बहाने जगल मे ही निवास किया और कुदनपुर मे नही जा कर एक नया नगर बसाया ।[4]

१२६ ३ । कृष्ण द्वारा हुई विजय का समाचार जानकर द्वारका वासियो मे उत्साह और आनन्द का लहर दौड गई और वे आगे जा कर श्रीकृष्ण से मिले ।[5] पावता और कमला आरती करती हुई आई ।[6] श्रीकृष्ण और रुक्मिणी न वसुदेव और देवकी के समीप जाकर अभिवादन किया ।[7]

१२७ ३ । कवि ने आगे कृष्ण रुक्मिणी के विवाह का वर्णन किया है ।[8] तदुपरात कवि ने रुक्मिणी के शिख-नख शृगार का वणन करते हुए लिखा है [9] जिसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार है —

त्रिवली त्रिच ग्रोण वणी वनिता, लहरो महरी रमरी सलता ॥
कटि केहर जाण जथा जुगली, फबिया तिक उलट भोणफली ॥
महगात तजे हुड एम लसे, मण सौटीप मगल धाम मसे ॥
वनिता इम नूपरीया वणीया, जाणे जेहडीया बचडा जणीया ॥
पद पकज वानचले पगरा, मंडी पग मड प्रभू मगरा ॥
अण बट निपट अनोप मय नख चलता हूत मय नमय ॥ [10]

१२८ ३ । कवि ने रुक्मिणी क प्रद्युम्न नामक महाराजकुमार का उत्पन्न होन और पटरानी होने का एव कृष्ण रुक्मिणी की रति क्रीडा का भी सक्षेप मे वर्णन किया है —

---

१ – छद स० १३२ ।
२ – छद स० १३४ ।
३ – छद स० १३५–१७० ।
४ – छद स० १८० ।
५ – छद स० १८६ ।
६ – छद स० १८८ ।
७ – छद स० १८६ ।
८ – छद स० १६३–१६६ ।
६ – छन्द स० २०१–२१६ ।
१० – छद स० २१७ २१६ ।

रगराग सुणे अनुराग रता, तर जाण तमोल कनक लता ॥
नित रति करे गट रित नई, मन तन हुआ मिल एक मई ॥
निज पूत हुआ प्रदमन जिसा, पोतरा प्रकटे अनुरध इसा ॥
महराणीय पाटतणा समसा, मुख वेद रटे अवतार रमा ॥ [1]

१२६ ३। कवि ने अत मे श्रीकृष्ण के परब्रह्म परमेश्वर रूप की ओर सकेत करते हुए उनकी महिमा का वरणन किया है। [2]

"विजय विवाह" का अपर नाम "गुण विजे व्याह" है। [3] प्रस्तुत रचना २४२ छदो में है जिनमें गाहा, त्रोटक और छप्पय कविता का समावेश हुआ है। इस रचना का परिचय डा० आनन्द प्रकाशजी दीक्षित के एक निबन्ध से प्राप्त होता है। [4] इस कृति का र० का० वि० स० १७७५ है। श्री अगरचन्द जी नाहटा द्वारा प्रेषित जिस प्रति के आधार पर श्री दीक्षित जी ने अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है उसमें कर्ता का नाम उपलब्ध नहीं है किन्तु अन्य प्रतियो म कर्ता का नाम स्पष्ट है। स्व० रामकरणजी आसोपा, जोधपुर के सग्रह मे प्राप्त प्रति मे रचना के अन्त में कर्ता मुरारीदान जी का नाम इस प्रकार है —

कवित्त

तू गुण सागर परम तुही निरगुण परमेश्वर ॥
तू अकरण अब करण करम तु ही करुणाकर ॥
तू निरजण निराकार तु ही रजन रखमा रे ॥
तू निकलक निरधार तु ही आधार हमारे ॥
वृजराज कवर हिक विनती, अरज राज साभल दूती ॥
सुरार देख मुरारि दिस प्रेम भगती द्यो जगपती ॥ [5]

सम्पूरण विजे व्याह मुरारदान कृत

१३० ३। रचना में पृथ्वीराज कृत 'वेलि' जैसा काव्य सौन्दर्य नहीं है किन्तु युद्ध, शिख नख निरूपण और नगर वरणन आदि की दृष्टि से कवि ने अपने मनोयोग और *स्वतन्त्र विचारों का परिचय दिया है।*

---

१ – छन्द स० २२१–२२४। २ – छन्द स० २२७–२३४।

३ – राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान और राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर की प्रतियां।

४ – गुण विजे व्याह, मरुभारती, पिलानी, वर्ष ८, अक २, पृ० १६।

५ – छन्द स० २३५।

(६) विट्ठलदास कृत रुक्मिणी-हरण

१३१ ३। बिट्ठलदास कृत रुक्मिणी हरण के प्रारम्भ म कवि ने मगलाचरण में सरस्वती वन्दना की है।[1] मगलाचरण के उपरा त कवि ने कृष्णप्रसाद की रचना का उद्देश्य बताते हुए विदर्भदेश राजा भीष्मक और राजकुमारी रुक्मिणी का उल्लेख किया है। रुक्मिणी क विवाह क सम्ब ध म राजा चिन्ता प्रकट करता हुआ कृष्ण को वर बनाने का प्रस्ताव रखता है। राजकुमार रुक्मैया क विरोध प्रकट करने पर भी भीष्मक विभिन्न अवतारो का वणन करता हुआ श्री कृष्ण को साक्षात् विष्णु का अवतार बताता है। रुक्मैया शिशुपाल को लग्न पत्रिका भज देता है तो रुक्मिणी रोती हुई खान-पान छोड देती है।

१३२ ३ शिशुपाल विवाह क लिए तैयारी करता है। बारात में अनेक म्लेच्छ और दानव एकत्रित हो जाते हैं—

छन्द--भुजगी

मिले म्लेच्छ घोर जिके अग मोटा मिले दागवा वम दाढोक दोटा।
मिले व्रन अनेक अनक वैसा मिले, काल वाणो जिके लब्र वेसा ॥२९॥
मिले भाभड़ा भूत भाडग भला मिले माण मयद एकन मला।
मिले माहजादा जिके माथ सूगा, मिलयेह बाणी जिके अ गारा ॥३०॥
मिले कोडि नाद मिले कोड प्यादी, मिले कोड बाजा मिले का़डवादी।
मिले कोड पैक्वरा कोड वाजी, मिले कोड गौरवश कोड गाजी ॥३१॥

१३३ ३। बिट्ठलदास ने रुक्मिणी हरण म राजा भ ष्मक स्वय ब्राह्मण को बुला कर उसके द्वारा कृष्ण के नाम पत्र भेजत हैं।[2] पत्र में कृष्ण रुक्मिणी का सम्ब ध मीन और जल च द्र और चकोर तथा चातक और मेघ का बताया गया है।[3]

१३४ ३। कवि ने ब्राह्मण के माग में सो जाने प्रात द्वारका म जागने द्वारका के दृश्यो से चकित होने और कृष्ण के पास पहुचने आदि का संक्षिप्त वर्णन करते हुए कृष्ण के प्रति विप्र द्वारा रुक्मिणी के विषय मे विस्तृत प्राथना करवाई है।

१३५ ३। कृष्ण और बलदेव सैनिक तैयारी कर विदर्भ पहुचते है। इस प्रसग में कवि न यह ध्यान नही रखा कि कृष्ण के पास सेना सम्बधी तैयारी का समय नही था।

---

१ – छन्द स० १–४।
२ – डा०, आनन्द प्रकाश दीक्षित 'रुक्मिणी हरण बिट्ठलदास रो कह्यो" शोध पत्रिका उदयपुर, भाग ११, अक १।
३ – वही छन्द स० ४८ ४९।

विदर्भ पहुँचने पर कृष्ण का स्वागत हुआ और ब्राह्मण को दक्षिणा प्राप्त हुई। कवि ने तदुपरान्त कृष्ण और शिशुपाल की तुलना करते हुए दोनों को क्रमश: बासर और निशा, समुद्र और सरोवर तथा दय और असुर बताया है।[1]

१३६ ३। अम्बिका पूजन के अवसर पर कृष्ण से भेंट होने की सम्भावना निश्चित मानती हुई रुक्मिणी श्रृंगार धारण करती है।[2]

१३७ ३। श्री कृष्ण अम्बिका पूजन के पश्चात् रुक्मिणी का हरण करते हैं। हरण का समाचार शिशुपाल को मिलता है। नगर में और शिशुपाल के शिविर में व्याकुलता व्याप्त हो जाती है। युद्ध अवश्यम्भावी हो जाता है।[3]

कवि ने युद्ध वर्णन में अपनी विशेष रुचि प्रकट की है। युद्ध वाद्यों का नाद, कायरों का कंपन, शस्त्रों का चलना, वीरों का ललकारना आदि चित्रण आकर्षक हुए हैं। शिशुपाल पक्ष के असुर "अल्ला" का उच्चारण करते हुए बताये गये हैं।[4]

१३८ ३। कृष्ण के आगे शिशुपाल, जरासन्ध और रुक्मया की सेनाएं परास्त हो जाती हैं। श्रीकृष्ण रुक्मिणी की प्रार्थना पर रुक्मैया को विरूप कर रथ से बाँध लेते हैं।[5]

१३९ ३। विवाह वर्णन में भोजन, नृत्य और संगीत का चित्रण है। ज्ञात होता है कि कवि को संगीत और नृत्यादि का विशेष ज्ञान था।[6] कवि ने अन्त में 'रुक्मिणी हरण' के पाठ का माहात्म्य बताया है।[7]

१४ ३ विट्ठलदास कृत 'रुक्मिणी हरण' में दूहा, गाहा कुण्डलिया, मोतियदाम नाराच, भुजंगी त्रोटक गाहा चोसर मुकैल अडिल्ल, कवित्त पद्धरी, डमरू अर्द्धनाराच हणूफाल कामखी, कामखी मोहन, मणावली, डोढ़ो मोतियदाम रसावली वेअक्षरी, चौपाई साटक तथा पाद्धत नामक १६८ छन्दों का समावेश हुआ है। कवि ने शिशुपाल के पक्ष वालों को स्पष्ट रूपेण मुसलमान लिखते हुए उनके विरोध में कृष्ण की विजय बताई है। कवि का लक्ष्य रुक्मिणी के रूप में भारत लक्ष्मी का दुष्ट दल संहारक श्री कृष्ण द्वारा उद्धार की ओर रहा है।

---

१ – डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, 'रुक्मिणी हरण विट्ठलदास रो कह्यो,' शोध पत्रिका, उदयपुर, भाग ११ अंक १।
२ – वही, छन्द सं० १०४-१०५।
३ – छन्द सं० ११२-११३।
४ – छन्द सं० १२३।
५ – छन्द सं० १७६-१७९।
६ – छन्द सं० १६०।
७ – छन्द सं० १६८।

७ क्रिशन-क्रिलोल

१४१ ३ कृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक 'क्रिशन क्रिलोल' नामक काव्य राजकीय अभिलेखागार बीकानेर मे पुराने रिकार्ड के साथ उपलब्ध हुआ है।[1] इस काव्य की रचना वि० स० १७८७ द्वितीय भाद्रपद शुक्ला ११ शुक्रवार को हुई है और इस काव्य का कर्ता श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा आसदास लिखा गया है।[2] किन्तु काव्य कर्त्ता का नाम रूपराम भी सभव है—

> रूपराम हिरदे रटो रटो धरम सू रग।
> आस दास यू उच्चरै सदा मिले सतसग ॥३

१४२ ३। ग्रन्थ का रचना काल इस प्रकार बताया है—

अथ ग्रन्थ सवत् वरणण—

> समत १८८७ रा भाद्रवा दुतीक सुद ११ शुक्रवार
> सतरा से सितियासिये दुती भाद्रवो देख।
> दिवस शुक्र एकादशी पख उजवालो पेख ॥[4]

१४३ ३। कवि ने काव्य मे छन्द सख्या का परिमाण बताते हुए लिखा है—

अथ दोहा गुण सख्या वरणण —

> छहु छन्द गाहो गिणो, सब दोहा इकतीस।
> कवित एक अटकल कह्या कीजो माफ कवीस ॥

१४४ ३। कवि ने राजस्थानी गद्य मे वर्ण्य विषयो के शीर्षक भी लिखे हैं —

१ अथ ससिपाल नु लगन लिखियो तिण वेला ग्रह वरणण, पद्य ४।
२ अथ ससिपाल नु अपशकुन हुवा सु लिख्यते।
३ श्रीकृष्ण रय असवार हुआ ने शुभ शकुन हुवा–ने लिख्यते छन्द झपताली।
४ अथ ऊठा रो वरणण रग रूप, गुण अवगुण रोग आदि।
५ अथ सावत वरणण, सावना रा सिणगार।
६ अथ छतीस आवध वरणण।

---

१ – डिंगल का एक अज्ञात कृष्ण काव्य, किशन किलोल, श्री अगरचन्द नाहटा, मरु भारती वर्ष १०, अक २, पृ० ७२-७५।
२ – वही। ३ – वही। ४ – वही।

अथ व्याहलो (गीत)

दोहा— कल नल मित तिथ करों, विसम व्रत प्रस्तार ।
सो भणिये कवि व्याहलो, वरणा चरण विचार ।।

वार्ता—

इस भावन रा ने व्याहना रा च्यार ढाला होई तच पूण गीत कहीज । छ ढाला दाढ़ो कहीज, आठां दूणो, सोला ढाला रो होई सो सोहलो गीत कहीजै । यथा —

विच बैठी रुकमणि नारी, हथलेवै राजकु वारी,
आए कातिकेय गण ईसो, आए ब्रहमा सहित महेसो ।
दीनी हो ब्रहमा गाठ खुलाई, डोरडो नही छूटै,
वसुदेव थारो पिता बुलाई, थाने कह्यो न छूटसी ।।१।।
देवकी हो थारी माई बुलाई, नदजी थारो बाबो बुलाई,
जसोदा थारी धाई बुलाई, व्रजवासी लोक बुलाई ।
गोकुल का सहि ग्वाल बुलाई, थारे कह्यो न छूटसो,
जीत्यो जीत्यो द्वारका रो राव, वसुदेव घरा वधामणी ।।२।।

इति व्याहुलो

षष्ट अध्याय

श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी चारणेतर काव्य

प्रारम्भिक परिचय

१. पद्मदास कृत "रुक्मिणी मगल"

२. रुलीराम पुजारी कृत "रुक्मिणी बारा मासा"

३ करुणा रुक्मिणी जी

४ बसीधर शर्मा कृत ख्याल रुक्मिणी मगल

५ श्री कृष्ण जी रो विवाहलो

६ कवि नन्दलाल कृत रुक्मिणी रास

७. रुक्मिणी हरण (बड़ा)

८. रुक्मिणी हरण (छोटा)

६. रुक्मिणी विवाहलो

१० कान्ह जी विवाहलो

षष्ठ–अध्याय

श्री कृष्ण–रुक्मिणी–विवाह–सम्बन्धी राजस्थानी चारणेतर काव्य

१ ४। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह स ब ी राजस्थानी चारणेतर काव्यकर्ताओं में मुख्यत दो वर्ग हैं — १ जैन कवि और २ जनतर कवि। दोनों ही वर्गों न अपना रचनाए िय रूप में और पूणत धार्मिक दृष्टि से की हैं। इस प्रकार की रचनाओं का आधार लोक प्रचलित आख्यान हैं जिनको कवियों ने अपनी रुचि और धार्मिक मा यतानुसार गेय रूप प्रदान कर दिया है। लोक प्रचलित रीति व्यवहारों, विचार धाराओं वेषभूषा और खान-पान आदि का इन रचनाओं में विस्तृत निरूपण हुआ है। इस प्रका की रचनाए ज ता मे मौखिक परम्परानुसार प्रचलित रही हैं, फलस्वरूप इनमें परिवतन भी होत रह हैं।

(१) पद्मदास कृत रुक्मिणी–मगल

२ ४। राजस्थानी जनता में पद्मदास कृत रुक्मिणी मगल बडे चाव स गाया और सुना जाता है। रुक्मिणी मगल का अपर नाम "किसनजी रो ब्यावलो" है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत का सप्ताह आयोजित होता है उसी प्रकार 'ब्यावलो' का भी भक्तों द्वारा सप्ताह आयोजित किया जाता है। राजस्थान म अनेक ब्राह्मण और जागी आदि ब्यावला गान का कार्य करत हैं। ब्यावले के प्रधान गायक के प्रति जनता म बहुत सम्मान होता है। वह भक्ति पूर्वक उच्च स्वर में ब्यावला गाता है। उसके सहयोगी सारंगी ढोलक और करताल आदि बजाते हुए गाने म उसकी सहायता करते हैं। जैस २ ब्यावले की कथा चलती है जनता की उपस्थिति भी उत्साहपूर्वक परिवर्द्धित होती है। जनता ब्यावले का पूर्णता पर यथाशक्ति अन्न, वस्त्र और धन प्रधान गायक एव ब्यावले की पुस्तक को भेंट कर अपन आपको उऋण समझती है।

३ ४। पद्म भक्त के 'रुक्मिणी मगल' की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति सवत्

१६६१ फाल्गुन कृष्णा दशम को लिखित उपलब्ध हुई है ।[1] यह रुक्मिणी मंगल गेय होने से कालान्तर में परिवर्द्धित होता रहा । रुक्मिणी मंगल के परिवर्द्धित रूप प्रकाशित हो चुके हैं ।[2]

४ ४। पद्मदास कृत 'रुक्मिणी मंगल' का प्रारम्भ गणपति वन्दना से किया गया है ।[3] मंगल लिखने का कारण कवि ने यह लिखा है कि रुक्मिणी ने कवि को मंगल लिखकर प्रकट करने की आज्ञा दी थी ।[4]

५ ४। कवि ने आगे पुन गणपति वन्दना लिखी है। तदुपरान्त सरस्वती-वन्दना लिखते हुए गुरु वन्दना की है ।[5] तदुपरान्त कवि ने तैंतीस करोड़ देवताओं का स्मरण करते हुए ब्रह्मा, विष्णु और महेश की वन्दना की है। सभी देवताओं से रुक्मिणी मंगल के निर्माण में कृपापूर्ण सहयोग की याचना की है। कवि ने मूल कथा का प्रारम्भ कुन्दनपुर नगर वर्णन से किया है। तदुपरान्त राजा भीष्मक और उसकी सन्तानों का वर्णन है।

६ ४। एक समय नारद मुनि कुन्दनपुर में आए। राजा भीष्मक ने उनका स्वागत सत्कार किया। रुक्मिणी ने इस अवसर पर नारद की वन्दना की। नारद जी ने नन्दनन्दन कृष्ण को वर के रूप में प्राप्त करने का वरदान दिया। राजा भीष्मक ने नारदजी से रुक्मिणी के योग्य वर बताने के लिए निवेदन किया। तब नारद जी ने श्रीकृष्ण का सुझाव दिया।[6]

७ ४। राजा भीष्मक की रानी ने रुक्मिणी के वर के विषय में नारद जी से जिज्ञासा प्रकट की तब नारद जी ने शिशुपाल को ही रुक्मिणी के योग्य वर बताया। इस प्रकार नारदजी ने राजा, रानी और रुक्मिणी के हृदय में विरोधी विचारों को जन्म देकर नाट्यगत संघर्ष को जन्म दिया।

८ ४। राजा भीष्मक और इनके राजकुमार रुक्मिणी के योग्य वर निश्चित करने हेतु विचार करने लगे तो राजा ने कृष्ण का प्रस्ताव रखा। इसके विपरीत रुक्मैया ने शिशुपाल की प्रशंसा करते हुए एकमात्र शिशुपाल को ही रुक्मिणी के योग्य वर बताया। इस

---

१ – (क)-नागरी प्रचारिणी सभा, वार्षिक खोज रिपोर्ट, १९०० ईस्वी।
    (ख)-अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में सुरक्षित प्रति।
    (ग)-राजस्थानी साहित्य समिति बिसाऊ द्वारा प्रकाशित।
२ – (क)-हरिप्रसाद भागीरथ जी कालका देवी रोड, रामवाड़ी, बम्बई।
    (ख)-शाह शिवकरण रामरतन दरक, इन्दौर।
    (ग)-श्याम लाल हीरा लाल, श्यामकाशी प्रेस, मथुरा।
३ – पद सं० १ प्रका० हरिप्रसाद भागीरथ जी, बम्बई, पत्र सं० १।
४ – वही। ५ – पद सं० ४, पत्र सं० २।
६ – पद सं० १, पत्र सं० ६।

विषय में रुक्मया रानी के समीर विचार करने हेतु गया तब रानी ने भी शिशुपाल का ही समथन किया। रुक्मैया ने अपनी माता की आज्ञा से गुप्त रूप में ब्राह्मण के द्वारा शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेज दी।

९ ४। कवि ने रुक्मिणी के सरोवर स्नान नामक प्रसंग का समावेश करते हुए बताया है कि कृष्ण ने जल में डूबती हुई रुक्मिणी का उद्धार किया और स्वयं रुक्मिणी से विवाह करने का वचन दिया।[1]

१० ४। महल मे लौटकर रुक्मिणी ने सरोवर स्नान का वृत्तान्त अपनी माता से कह सुनाया। माता ने कहा — राजा भीष्मक की कन्या होकर तुमने अगोर म बातचीत कर उचित नही किया। रुक्मिणी ने कहा कि उन्होंने मुझे जल मे डूबते हुए बचाया है।

११ ४। रुक्मिणी ने शिशुपाल की लग्न पत्रिका भेजने का समाचार सुना तो बहुत दुखी हुई। ब्राह्मण और भाट लग्न पत्रिका लेकर चन्देरी रवाना हुए तो माग मे अनेक प्रकार के अपशकुन हुए[2]। शिशुपाल के दरबार मे रुक्मिणी की लग्न पत्रिका पढ़ी तो शिशुपाल को बहुत प्रसन्नता हुई। शिशुपाल ने यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। शिशुपाल के जोशी पीपा ने शिशुपाल को समझाया कि रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से होगा तुम यह सम्बन्ध स्वीकार मत करो।[3] शिशुपाल ने दूसरे "गरजू" जोशी को बुलाकर इस विषय मे पूछा तब उसने विवाह का समथन कर दिया। 'गरजू' जोशी ने सोचा "यदि मैं शिशुपाल की इच्छा के विरुद्ध कहूंगा तो शिशुपाल मुझे नगरी से बाहर निकलवा देगा और मेरी आई दक्षिणा चली जावेगी"। [4] शिशुपाल की भाभी ने शिशुपाल को समझाया कि रुक्मिणी लक्ष्मी की अवतार हैं। उसका विवाह कृष्ण से ही होना उचित है। तुम यह सम्बन्ध मत स्वीकार करो। [4] शिशुपाल ने भाभी की बात नही मानी।

१२ ४। शिशुपाल जरासन्ध के पास गया और कुन्दनपुर से आये हुए टीके के विषय मे बातचीत की। जरासंध ने कहा कि यह सम्बन्ध अवश्य स्वीकार करो और मित्र राजाओं को सेना सहित बरात मे आने का निमन्त्रण भेज दो शिशुपाल ने कर्णाट बगाला, कच्छभुज मरहठा, मारू मेवाड, मालव, सिन्ध तारातम्बोल लाठ काबुल, बुखारा, उज्जवक, दिल्ली काशी, नखल और हस्तिनापुर देशों के राजाओं को निमन्त्रण भेजे। उक्त सभी देशो के राजा अपनी सेनाओं सहित चन्देरी में एकत्रित हो गये। शिशुपाल उत्साहपूर्वक विवाह की तयारी करने लगा। [5] शिशुपाल की भाभी और अन्य रानियां ने रुक्मिणी से विवाह के लिए

---

१ — पत्र स० ७, पद स० १।
२ — पत्र स० २०।
३ — पत्र स० २२, पद स० ३।
४ — पत्र स० २२।
५ — पत्र स० २४।
६ — पत्र स० ३५ ३६।

उधर जब शिशुपाल मामी हाथ उदास मुंह घर पहुंचा तो उसकी मामी ने उसका मजाक उड़ाया। जब कुं नपुर यह खबर पहुंचा कि कृष्ण रुक्मिणी का हरण करके ले गये हैं तब राजा भाष्मक और उनकी रानी ने अपने पुत्र को भेजा और बरात को मंगवाया । नगर में कलश और तोरण बंधने लगे। नगर की स्त्रियां मंगलाचार के गीत गाने लगी। कृष्ण घोड़े पर चढ़कर आये और तोरण का छूकर मं दर प्रवेश किया। कवि ने इस प्रसंग का विवरण कवि ने रुचि पूर्वक किया है।[2]

१९ ४। सखियां हिल मिल कर कृष्ण रुक्मिणी को जुआ खेलने का ले गई। जुआ खेलते समय वर वधू के उल्लास और वर के हारने का वर्णन भी मनुरम है।[3]

२० ४। पहरावनी के पश्चात् बारात रवाना होता है। रुक्मिणीजी की आंखें भर आती हैं। वह माता पिता, भाई भोजाई से गले मिल कर रोने लगी —

म्हारा मिझल्या म्णभ्भणो भुरभुर पिंजर होय।
रुकमण चाली बाइ सासरे मिलणा कब होय ॥
माय मिलू बाबल मिलू मिल मामा सुसाल ।
भुवा भतीज्या रिल मिलू मामी बाल गुपाल ॥
मिल मिल के सब सें मिलू भ्रातू भौज्या जी चार।

भ्रावा सखो सहेलिया मिली भुजा पसार ।
अबका बिछूड्या कब मिला दूर बसेंगे जाय ॥

२१ ४। रुक्मिणी जी डोले में जा बैठी। बारात द्वारका आई। देवकी, सुभद्रा, वसुदेव आदि ने वर वधू का भली प्रकार स्वागत किया। मांगलिक कार्य किये गये। रुक्मिणी का देवकी द्वारा मुंह दिखाई हुई।[4]

२२ ४। आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। वर वधु की जोडी शोभायमान हो रही थी। इसके पश्चात कृष्ण का स्तुति गान है।[5]

दस दस पुत्र येक यक कन्या यह रुकणी वर दीना ।

२३ ४। अंत में कवि ने "मंगल" का महात्म्य लिखा है —

---

१ — पत्र स० ११६ पद स० ६। २ — पत्र स० १२१–१२५।
३ — छन्द स० ५ पत्र स० १३२। ४ — छन्द स० ४ पत्र स० २८८।
५ — छन्द स ३, पत्र स० २९०।

जा या मगल का गावै ज्याका पाप प्रले होय जावै ।
जा या मगल क मुरिहै, जा क कोट जनम के पुन है ।।
द्वारावति आनन्द भया सुर नर देत असीस ।।
कह प०मइया वैद्य वन्दो सिहासन जगदीश ।।

२४ ४। आगे मगल क स ोधकों की प्रशस्ति इस प्रकार है —

रच्या वैद्य पदमाल यह रुकमणि मगलसार।
सुद्ध किया शिवकरण जन तुक सब दई सुधार ।।
विजय व्याव श्रीकृष्ण को रुकमणि 'ल्या' वण ।।
रामरतन निज करे लिख्यो शुद्ध किया शिवकर्ण ।।
कछु पद नय बनाय के, टुटक साध मिल य ।।
कियो सकनाबद सब अरथा अक्षर लाय ।
मूलचन्द सुत शिवकरण, दग्क म इव बास।
मुन्धर डीड्ड महरवरी, इ द्रपुरी सुख वासु ।।[1]

२५ ४। का य के सशोधक एव सम्पादक न उक्त प्रशस्ति मे कवि पद्म को वद्य कहा है किन्तु रचना स उनका तली होना प्रकट होता है —

१ इवडो अन्तर हरि हरि सिसिपालइ भण्इ पदमीयो तेली ।[2]

२ थाका पाय पलोटण हो, पदमो तेलो माथि दस्या ।[3]

२६ ४। पदम भक्त कृत रुक्मिणी मगल" एक लौकिक काव्य है जिसमें राजस्थानी सरल सरस ग्राम्य जीवन की अनुपम छटा वर्णित है। रचना की मूल कथा श्रीमद्भागवत् स ली गई है किन्तु कतिपय नवीनताए भी है। यथा— काव्य मे सघष क मूल कारण नारदजी हैं। राजा भीष्मक की रानी रुक्मिणी क पक्ष मे होती है। शिशुपाल की भाभी कृष्ण क पक्ष में शिशुपाल को समझाने का प्रयत्न करता है आदि। प्रस्तुत मगल का प्रधान विषय, प्रसगोचित, हार्दिक भावनाओं का भेद रूप म सरल काव्यात्मक अभिव्यक्ति और राजस्थानी सास्कृतिक परम्पराओं क अनुसार विवाह-सम्बन्धी सपूर्ण विधियो का सागोपाग चित्रण है। प्रकाशको ने 'मगल" में मनमानी जोड़-तोड कर इसको विकृत कर दिया है अतएव प्राचीन प्रतियो क आधार पर इसका विधिवत् सम्पादन परम आवश्यक है।

---

१ — पत्र स० २६१। २ — १३। ६८। ३ — ३३। २७०।

(२) रुलीराम पुजारी कृत रुक्मिणी-बारामासिया

२७ ४। कृष्ण रुक्मिणी विवाह के विषय में एक बारामासिया रुलीराम पुजारी कृत उपलब्ध हुआ है।[1] बारामासिया का स्थायी पद, "गावरधन धारी राना परतना दासी आपकी" है और इसके आधार पर बारह मासके बारह पद लिख गये हैं। प्रत्येक गेय पद के अन्त में एक दोहा है। प्रारम्भ में मंगलाचरण के पश्चात दुर्गा वन्दना है। चैत्र मास वर्णन में राजा भीष्मक का परिचय भी है।[2]

२८ ४। वैशाख मास के वर्णन में नारद मुनि का राजा भीष्मक के पास आगमन और रुक्मिणी के वर के रूप में श्रीकृष्ण के सुझाव का वर्णन है।[3] ज्येष्ठ मास के वर्णन में रुक्मिया अपनी माता से परामर्श कर चन्देरी नगर में शिशुपाल को लग्नपत्रिका भेजना है। शिशुपाल ६६ राजाओं सहित बारात और सेना सँवारकर कुन्दनपुर पहुँचना है।[4] आषाढ़ के वर्णन में रुक्मिणी की माता रुक्मिणी के प्रति शिशुपाल उसके काका जरासंध और उसके भाई दन्तावर की प्रशंसा करती है।[5] श्रावण वर्णन में राजा भीष्मक चिन्ता प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण से आने की प्रार्थना करते हैं कि रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से होगा ना कटारी खाकर मर जाऊँगा।[6] भाद्रपद मास के वर्णन में राजा भीष्मक कृष्ण की स्तुति करते हुए रामावतार में किये गये धनुष भंग की स्तुति करवाते हैं।[7] आश्विन मास के वर्णन में श्रीकृष्ण के सरोवर में नहाते समय दिये गये वचन का उल्लेख है और उस समय डूबती हुई रुक्मिणी के उद्धार करने की ओर संकेत किया गया है।[8] कार्तिक मास के वर्णन में रुक्मिणी द्वारा श्रीकृष्ण को पत्रिका भेजने का वर्णन है।[9] अगहन मास में जोशी रुक्मिणी की पत्रिका के साथ द्वारिका पहुँचता है और रुक्मिणी के समाचार कृष्ण को सुनाता है साथ ही कृष्ण से शीघ्र ही आने की प्रार्थना करता है।[10]

२९ ४। पौष मास में जोशी कुन्दनपुर में लौट आता है और श्रीकृष्ण के आने का समाचार सुनाता है। रुक्मिणी अम्बिका पूजन के लिए माता की अनुमति लेती है और नारदजी के वचनों को चरितार्थ होता हुआ जानकर प्रसन्नता व्यक्त करती है।[11] माघ मास के वर्णन

---

१ – क – रुक्मिणी मंगल श्याम काशी प्रेस मथुरा के अन्त में पृ० ६२–२६६।
ख – दादका भजन संग्रह, पहला भाग, बाबू भगवती प्रसाद दारूका, हिन्दी पुस्तक एजेंसी २०३ हरीसन रोड कलकता, तीसरा सं १९६१ पृ० ३३ से ४७।

२ – पद्य सं० १। ३ – पद्य सं० २।
४ – पद्य सं० ३। ५ – पद्य सं० ४।
६ – पद्य सं० ५। ७ – पद्य सं० ६।
८ – पद्य सं० ७। ९ – पद्य सं० ८।
१० – पद्य सं० ९। ११ – पद्य सं० १०।

में दुर्गा के वरन्दन, श्रीकृष्ण के आगमन और कृष्ण द्वारा नगुप्रा की पराजय का वर्णन है।[1] फाल्गुन मास के वर्णन म राजा भाष्मक द्वारा ध्यान पूर्वक कृष्ण रुक्मिणी का विवाह करने का उल्लेख है।[2]

३० ४। हमारे साहित्य में बारहम मा वर्णन की सुदीर्घ परम्परा रही है।[3] श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक रचनाओं म बारहमासा साहित्य के अन्तगत रुनीराम पुजारा की रचना सन्भित होने हुए भी सरस है।

(३) करुणा रुक्मिणी की

३१ ४। करुणा रुक्मिणी की नामक कृति म किसी अज्ञात कवि ने सनेप में कृष्ण रुक्मिणा विवाह का वर्णन किया है। इस रचना म मुख्यत रुक्मिणी के भाव व्यक्त किये गये हैं इसलिए इस कृति का नाम करुणा रुक्मिणा का " दिया गया है। इसमें रुक्मिणी ने अपना करुणा जनक अवस्था का वर्णन किया है। रुक्मिणी न अपने आपको कृष्ण की पूर्व ज म का दासी बताया है और रामावतार की ओर सकेत करते हुए सीताहरण प्रसंग का वर्णन किया है। रुक्मिणी कहती है— "तब आपने मेरे लिए इतने कष्ट उठाये, अब विलम्ब क्यों कर रहे हो ?" इस कृति म रुक्मिणी का सदेश मौखिक ही है एव रुक्मिणी द्वारा कृष्ण को पत्र नहीं लिखा गया है।[4]

(४) वशीधर शर्मा कृत ख्याल रुक्मिणी मगल

३२ ४। किशनगढ़ निवासी व शीधर शर्मा आधुनिक काल म राजस्थानी ख्याला के मुख्य लेखक हैं। इन्होंने पाबूजी राठौड़ सत्यनारायण तेजाजी पूरणमल जी ढोला मारू, निहालदे सुल्तान पदमुना रानी आदि अनेक ख्याला की रचनाए की हैं। प० वशीधर शर्मा के अनेक ख्याल प्रकाशित हो चुके हैं और इनका प्रदर्शन रुचिपूर्वक किया जाता है। शर्मा जी कृत एक ख्याल "रुक्मिणी मगल भी है।

३३ ४। ख्याल के प्रारम्भ म कवि न सरस्वती और गणेश जी की स्तुति की है। तदुपरान्त राजा भीष्मक रगमच पर प्रवेश करते हुए अपना परिचय देते हैं।[5] भीष्मक की रानी कमलादे, गणपत, शारदा और गौरी की स्तुति करती हुई अपना परिचय देती है तथा रुक्मिणी के विवाह के विषय में चिन्ता प्रकट करती है। इसी समय नारद जी अपना

---

१ – पद्य स० ११। २ — छद स० १२।
३ – प्राचीन काव्यों का रूप विधान, श्री अगरचन्द नाहटा।
४ – लेखक के निजी सग्रह मे। ५ – पृष्ठ स० ४-५।

३९ ४। आगे रुक्मिणी स्वगत रूप से गाती हुई कृष्ण का आह्वान करती है। परम्परानुसार रुक्मिणी कौवे उड़ाती है और निश्चय प्रकट करती है कि यदि कृष्ण ने आकर विवाह न किया तो वह कटारा खाकर मर जायेगी।[1]

४० ४। उग्रसेन और बलदेव के सवाद में कृष्ण की सहायता के लिए सैनिक तयारी का उल्लेख है। नारदजी और बलदेवजी के सवाद में सभी देवताओं को विवाह मे आमन्त्रित करने का उल्लेख किया गया है। कृष्ण की भोजाई विवाह की तयारी करता है।

४१ ४। कृष्ण की बारात तयार होती है जिसमे अगणित सैनिक समस्त यादव, पाण्डव और देवता एकत्रित होते हैं। रणत भवर (रणथभोर) से गणेशजी भी अपने वाहन मूषक सहित आ जाते है। नारदजी कृष्ण से कहते हैं कि गणेशजी के चलने से बारात की शोभा नहीं होगी[2] श्रीकृष्ण गणेशजी से अनुरोध कर उन्हे पीछे महलों की निगरानी के लिए छोड़ देते हैं। गणेशजी भी कहते हैं —

सुखी आपकी बात कृष्णजी म्हाके लागी दाय।
मोटी तूंद खणा तन भारी चल्यो न म्हा से जाय॥
दुख बरात म पावस्यासजी चलकर करस्या काय।
ल्यावो माचो एक द्वारा पर देवा अठे बिछाय॥[3]

४२ ४। नारदजी ने गणेशजी को अपनी विद्या से प्रभावित किया। नारदजी ने कहा गणेशजी तुम तो बहुत भोले हो। तुमको साथ लेने से कृष्ण को लज्जा आती है। बारात मे आपका रूप अच्छा नहीं लगेगा, इसलिए कृष्ण ने चालाकी कर आपको यहीं छोड़ दिया है।

४३ ४। नारदजी के वचन सुनकर गणेशजी को क्रोध आया और उन्होने चूहों के द्वारा बारात का मार्ग खुदवा दिया। कृष्ण के रथ के पहिए मार्ग में फस गये। कृष्णजी ने गणेशजी का स्मरण कर बलदाऊजी को क्षमा याचना के लिए भेजा। बलदाऊजी ने गणेशजी के समीप आ कर क्षमा याचना की और धारा नगर में पाप राजा के घर ऋद्धि-सिद्धि से गणेश जी के विवाह की व्यवस्था की। विवाह कर गणेशजी बरात में सम्मिलित हुए। कृष्ण की बारात राना रान कुन्दनपुर पहुँच गई।

४४ ४। कवि ने आगे रुक्मिणी के व्यथा वर्णन के लिए 'पखवाड़ो' (पक्ष) की योजना भी की है।[4]

---

१ — पृष्ठ ३३-३४।
२ — पृष्ठ ३६-४०।
३ — पृष्ठ ४०-४१।
४ — पृष्ठ ४६-४८।

४५ ४। ब्राह्मण कृष्ण के आगमन का समाचार रुक्मिणी को सुनाता है तो रुक्मिणी की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता। रुक्मिणी इसी ब्राह्मण के द्वारा कृष्ण को सूचित करता है कि दूसरे दिन वह देवी पूजन के लिए वाटिका में जायगी। कृष्ण वहीं पहुँच कर उसका हरण करें।

४६ ४। प्रस्तुत रुक्मिणी मंगल में हास्य की योजना कुशालसिंह नामक चरित्र के द्वारा की गई है।[1]

४७ ४। शिशुपाल और जरासंध कृष्ण का आगमन जानकर चारों ओर अपने गुप्तचरों और सैनिकों की व्यवस्था करते हैं। वाटिका में देवी के मन्दिर के चारों ओर रुक्मिणी की सुरक्षा की विशेष व्यवस्था की जाती है। रुक्मिणी श्रृंगार सजा कर अपनी सखियों के साथ देवी मन्दिर में पूजन के लिए पहुँचती है। देवी के सम्मुख पहुँच कर रुक्मिणी कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने की कामना करती है।[2]

४८ ४। इसी अवसर पर कृष्ण रथ लेकर मन्दिर के समीप पहुँच जाते हैं। रुक्मिणी देवी के आगे नमन कर रथ के समीप पहुँचती है और कृष्ण उसको रथ में बैठा लेते हैं। रथ तेजी से चलता है। रथ चलने पर सिपाहियों और रुक्मिणी की सखियों का शोर मचता है। शिशुपाल और जरासंध को रुक्मिणी-हरण की सूचना मिलती है तो वे सैनिकों के साथ कृष्ण का पीछा करते हैं। कृष्ण और शिशुपाल के बीच युद्ध होता है जिसमें शिशुपाल पराजित हो जाता है। शिशुपाल का आधा सिर मूँड़ लिया जाता है और वह भागता है। जरासंध भी द्वन्द्व में हार कर भाग जाता है।

४९ ४। रुक्मइया रुक्मिणी हरण का समाचार सुनकर क्रोधित होता है और कृष्ण का पीछा करता है। कृष्ण रुक्मइया को समझाते हैं कि देवी ने रुक्मिणी को मेरे साथ किया है। तुम बरजो मत हमारे मीत हो। रुक्मइया कहता है— "कृष्ण! तू चोर है रुक्मिणी को हरण कर लाया है।" कृष्ण कहते हैं— "तुम्हारी बहिन रुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार है।" रुक्मइया क्रोधित होकर कृष्ण पर तीर चलाता है। कृष्ण प्रहार को बचाकर रुक्मइया का धनुष तोड़ डालते हैं। रुक्मइया तलवार निकालता है तब कृष्ण उसको पकड़ कर बाँध देते हैं।

करता है। कृष्ण उसकी प्रार्थना स्वीकार कर अपनी सेना को कुन्दनपुर की ओर ले चलते हैं। कुन्दनपुर में कृष्ण रुक्मिणी के विवाह की तयारी होती है।

५२ ४। आगे शिशुपाल-भोजाई के सवाजों में भोजाई के उपालम्भ का वर्णन किया गया है।[1]

५३ ४। कुन्दनपुर में कृष्ण रुक्मिणी का विधि पूर्वक विवाह होता है।[2] स्त्रियां मगल गीत गाती है। ख्याल के अन्त में स्त्रियों के गाली गाने का चित्रण किया गया है।[3]

५४ ८। उक्त विवरण से प्रकट है कि ख्याल के कथानक में अनेक नवीनताओं का समावेश है। यथा— श्री गणेश प्रसग, रुक्मया के सन्देशवाहक के रूप में भाट की योजना, श्रीकृष्ण की बरात में देवताओं का आना श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह कुन्दनपुर में होना। ख्याल गेय और अभिनेय है अतः इसमें सवाजों की विशेषता है।

(५) श्री कृष्ण जी'रो विवाहलो

५५ ८। बीकानेर के महिमा भक्ति भण्डार और अभय जैन ग्रथालय में श्रीकृष्णजी रो विवाहलो' की प्रतियां प्राप्त हुई हैं। रचना के प्रारम्भ में श्री जिनेश्वर जी की वन्दना की गई है। तदुपरान्त देवकी यशोदा का सवाद दिया गया है, देवकी कंस द्वारा अपनी सन्तान मारे जाने से दुख प्रकट करता है। तब यशोदा कहती है कि आगे होने वाली सन्तान देवकी उसके हाथ सौंप दे।[4] नियत समय पर देवकी कृष्ण को जन्म देती है। उधर यशोदा के लडकी का जन्म होता है। वसुदेव कृष्ण को लेकर जमुना तट आते है। जमुना उफान पर होती है किन्तु वसुदेव उसको पार कर जाते हैं।[5] वसुदेव यशोदा की लडकी को लेकर मथुरा आते हैं। कृष्ण का जन्म मगलवार को बताया गया है।[6]

५६ ८। रुक्मिणी कृष्ण की स्तुति और ध्यान करती हुई गणपति से यही प्रार्थना करती है कि ग्वाला के गोपाल ही उसके पति हो।[7] किन्तु रुक्मया शिशुपाल के साथ ही रुक्मिणी का विवाह चाहता है। कृष्ण की और शिशुपाल की बरात का वर्णन रुचिपूर्वक किया गया है।[8] इसके आगे रुक्मिणी के शृगार का वर्णन है।[9]

५७ ४। शिशुपाल और कृष्ण के सग्राम का वर्णन बहुत सक्षेप में किया गया है।[10]

---

१ – पृ० स० ६८।
२ – पृ० स० ७०।
३ – पृ० स० ७१–७२।
४ – छन्द स० १–६।
५ – छन्द स० १६–१८।
६ – छन्द स० ३१–३२।
७ – छन्द स० ३–७।
८ – छन्द स० १०–१३।
९ – छन्द स० १८–१६।
१० – छन्द स० २१–२२।

५८ ४। तदुपरान्त श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह और जुआ जुई खेलन का वर्णन है।स्त्रियों के गाली गाने का भी वर्णन है।[1]

५९ ४। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह कर द्वारका आते हैं उस समय का वर्णन भी सरस है।[2]

६० ४। आगे वर-वधू विनोद का प्रसग है और अन्त में कृष्ण रुक्मिणी सवाद है।

६१ ४। सवत् १७८६ वि० की लिखित प्रति से ज्ञात होता है कि इस विवाहलो की रचना इस सवत् से पूर्व हुई है। इसका रचना काल १८ वी सदी निर्धारित होता है।

६२ ४। श्री अगरचन्दजी नाहटा के सौजन्य से प्राप्त प्रति का प्रशस्तिलेख इस प्रकार है —

"इति श्रीकृष्णजी विवाहलो सपूर्ण। सवत् १७८६ वर्ष मिति चैत्र सुदी १५ दिने लिखत जीवन जी सर्वोपमानायक साध्वी रतनमाला वाचनार्थ। इति श्रेय श्रेणाय मगल मालिका वालिका श्रयम्स्रात्र। शुभभवतु। जिसो दोठो तिसो लिखियो। खोटो खगे लिखण वाला रा दोष न छइ। महा प्रमुद्ध परन खोटो छइ सही।"

६३ ४। प्रस्तुत रचना में श्रीकृष्ण जन्म से श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह तक का वर्णन है। कर्ता जैन धर्मानुयायी है किन्तु इसमें जिनेश्वर वन्दना के अतिरिक्त जैन धर्म का कोई प्रभाव नहीं है।

(६) कवि नन्दलाल कृत रुक्मिणी रास

६४ ४। रुक्मिणी रास की रचना कवि नन्दलाल ने जैन सिद्धान्तानुसार की है। कवि ने श्रीमद्भागवत से भिन्न पात्रों और घटनाओं का इस रचना में समावेश कर अपनी मौलिक सूझ बूझ का परिचय दिया है। कवि की कल्पनाएं काव्य सौन्दर्य की अपेक्षा धार्मिक प्रचार में अधिक सहायक हैं।

६५ ४। यह रचना प्रबन्ध रास की गेय शैली में लिखी गयी है और काव्य का अपर नाम रुक्मिणी दुक्क दिया गया है।[3] काव्यगत कथा का प्रारम्भ द्वारिका वर्णन से होता है।[4]

---

१ – दूहा स ३०–३२।
२ – दूहा स १।
३ – दूहा स १७–२७।
४ – दूहा स १–४।

६६ ४। काव्य में सघष का समावेश श्रीकृष्ण वे अ त पुर मे नारद मुनि के आगे श्री सत्यभामाजी की गर्वोक्ति से होता है।[1]

६७ ४। नारदजी सत्यभामा से प्रतिशोध लेने का विचार करते हैं। नारी के लिये सौत से बढ़ कर अ य कोई दुख ससार मे नही होता और " सौक तो गारा री ही चोखी ना" विचार कर नारद जी श्री कृष्ण के विवाह के लिये श्रेष्ठ सु दरी की खोज मे निकल पडते हैं।[2] तदुपरा त ' उद्यम किया सरे सगला जी काज तो ' [3] के अनुसार नारदजी विमान मे बैठकर कुन्दनपुर मे राजा भीष्मक के दरबार मे आते हैं। राजा ने नारद जी का यथोचित आदर-सम्मान किया। सभा में नारदजी ने रुक्मैया का रूप देखकर उसकी प्रशसा की और रुक्मिणी के विषय मे जानने की उत्कण्ठा प्रकट की। रुक्मिणी की सगाई राव शिशुपाल से निश्चित हो जाने की सूचना राजा ने नारदजी को दी। नारदजी राजा की अनुमति प्राप्त कर अ त पुर मे गये और रुक्मिणी के मस्तक झुकाने पर आशीष दी —

कृस्न वल्लभ तुम रुक्मिणी थाय तो।[4]

६८ ४। रुक्मिणी की भुआ ने श्रीकृष्ण की प्रशसा करते हुए नारदजी का पक्ष लिया। भुआ द्वारा श्रीकृष्ण के रूप और ऐश्वर्य का वर्णन सुन कर रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को ही वरण करने की प्रतिज्ञा करली।

६९ ४। नारद जी कु दनपुर से चल कर द्वारिका श्रीकृष्ण के समीप पहुँचे। यहाँ उन्होने रुक्मिणी के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया और बताया कि ऐसी राजकुमारी शिशुपाल के नही श्रीकृष्ण के ही योग्य है।

७० ४। नारदजी रुक्मिणी के प्रति श्रीकृष्ण का प्रेम जागृत कर शिशुपाल के यहाँ पहुँचे। इस समय पुरी में शिशुपाल के विवाहोत्सव की तैयारियां हो रही थी। नारदजी ने इसी अवसर पर लग्नपत्रिका देखकर विघ्न बाधाओं की भविष्यवाणी की।[5] शिशुपाल के विवाह हेतु शिथिल होने पर नारदजी पुन उसको उत्साहित करते हैं।[6] शिशुपाल ने क्रुद्ध होकर युद्ध के लिये सैनिक तयारी की।[7] इस प्रकार नारदजी ने अपनी विद्या का प्रयोग कर युद्ध की भूमिका तयार करदी।

७१ ४। विवाह लग्न का दिन समीप होने पर रुक्मिणी को चिन्ता हुई। उसने अपनी भुआ के समक्ष श्रीकृष्ण के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए उनसे ही विवाह करने का दृढ

---

१ – ढाल स ५–८।
२ – ढाल स ६–७।
३ – ढाल स २७।
४ – ढाल स० ३५।
५ – ढाल स० ४९।
६ – ढाल स० ५१।
७ – ढाल स० ५३।

निश्चय प्रकट किया।[1] रुक्मिणी की भुआ ने रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के विषय में आश्वस्त किया —

> मूला वडवाई सू इम कहै, एहवा दीन तू काई थोने थाल तो।
> द्वारका नाथ हाजर करू थारो सर्व तो मेलस्यू जोग तो।[2]

७२ ४। प्रस्तुत कृति मे रुक्मिणी की भुआ एक सेवक के साथ श्रीकृष्ण को विवाह का सन्देश भेजती है और सेवक ऊंट पर सवार होकर द्वारिका पहुँचता है।[3] पत्रिका पढ कर प्रारम्भ मे श्रीकृष्ण हर्षित हुए और फिर यह विचार कर उदास हो गये कि मैं विवाह के लिये जाता हू तो शिशुपाल मारा जाता है और नहा जाता हू तो रुक्मिणी मरती है।[4] बलदेवजी के आग्रह पर श्रीकृष्ण ने दूत के द्वारा विवाह के लिये आने का उत्तर भेजा। श्रीकृष्ण ने यह भी सूचना दी —

> प्रमदा नाम उद्यान मे, तिहा छे कामदेव ना एक चैत्य तो।
> तिण मदर हम आवस्यां, म्हारे ध्वजा निसानी छे स्वेत तो।[5]

कवि ने सेवक को आगे 'मिसरजी' लिखा है।[6] विवाह की लग्न तिथि पर शिशुपाल बडे बडे भूपतियो सहित आ गया —

> माघ सुदी धुर अष्टमो, लग्न नो दिन कीधो परमान तो।
> शिशपाल राय सजि आवियो, ल्यावियो बडे बडे भूपति जाण तो॥[7]

राजा भीष्मक ने शिशुपाल और बरातियों का स्वागत सत्कार किया और सभी प्रसन्न हुए किन्तु रुक्मिणी का मन किंचित मात्र भी प्रसन्न नहीं हुआ।[8] शिशुपाल के सैनिकों ने नारद के वचनों से प्रभावित होते हुए नगर के सभी द्वारों पर प्रवेश सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगा दिया। नगर के लोगों को भारी कष्ट हुए।[9] विवाह का एक दिन शेष रह गया तो रुक्मिणी ने अपनी भुआ से कहा कि मृत्यु उत्तम है किन्तु मैं शिशुपाल से विवाह नहीं करूंगी।[10] भुआ रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के प्रति आश्वस्त करती है।[11]

---

१ – ढाल स० ५४–५५।
२ – ढाल स० ५६।
३ – ढाल स० ५७–५६।
४ – ढाल स० ६०।
५ – ढाल स० ६४।
६ – सोरठ ६५।
७ – ढाल स० ६६।
८ – ढाल स० ६८।
९ – ढाल स० ६९।
१० – ढाल स० ७१।
११ – ढाल स० ७२।

७३ ४। श्रीकृष्ण यथा समय युद्ध रथ को सज्जित कर बलदेव सहित उद्यान के चत्य में पहुच जाते हैं। [1] इधर भुग्रा रुक्मिणी की महायता से अपना उपाय करती है। [2]

७४ ४। शिशुपाल ने प्रसन्न हो कर रुक्मिणी को चैत्य में जाने का आदेश दे दिया। [3] रुक्मिणी प्रसन्नता पूर्वक प्रमदा नामक उद्यान में पहुँची और वहा कामदेव की प्रतिमा को प्रणाम किया रुक्मणी ने देवकोत दन वर मागा और फिर चारों ओर अपने नाथ श्रीकृष्ण को देखने लगी। [4] इतने में श्रीकृष्ण प्रकट हुए और उन्होंने रुक्मिणी का हाथ पकड कर रथ में बठाया [5] इसी समय श्रीकृष्ण ने भाग जाने की इच्छा से रथ चला दिया तो नारद जी ने आकर उन्हें युद्ध के लिये प्रेरित किया। [6] नारद के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने अपना रथ रोक लिया। तब नारद जी ने शिशुपाल और राजा भीष्मक के समीप जाकर उन्हें युद्ध के लिये प्रेरित किया।

७५ ४। भीष्मक और शिशुपाल ने क्रोधित हो हाथी घोडे और पदल सैनिकों को साथ ले प्रमदा उद्यान को जा घेरा। ऐसी अवस्था मे रुक्मिणी को मनोदशा चिन्तनीय हो गई। श्री कृष्ण ने रुक्मिणी का आश्वस्त किया। [7] कृष्ण ने रुक्मिणी को रथ से उतार कर मन्दिर के एकान्त म वैठाया और युद्ध करने वाली पुतली को प्रस्तुत किया —

> पूतली सत्या बतीस छै, पुरुष आकार जे जुद्ध सजाग तो।
> शब्द तेहनों जिम वीजली अरिदल देपी मन ऊपजे सोग तो। [8]

७६ ४। जन कवि नन्दलाल की प्रवृत्ति युद्ध वर्णन में नही रम सकी क्योंकि वह जन धर्म के अहिंसा सिद्धान्त मे विश्वास रखता है। इसलिये नाम मात्र का युद्ध वर्णन करते हुए कवि ने रुक्मिणी हरण के प्रसग एव युद्ध वर्णन का पूर्ण कर दिया है। [9] श्रीकृष्ण ने द्वारिका म रुक्मिणी स विधि पूर्वक विवाह किया। श्रीकृष्ण की रानियों में रुक्मिणी को अपने रूप और गुणों के कारण विशेष सम्मान प्राप्त हुआ जिसम सत्यभामाजी को विशेष ईर्षा हुई —

> एक कण आख माही पडे, ताही सू वेदना होय अपार तो।
> यह सोकण कही जगत म तिहि थी भामा ने चेतन सार तो। [10]

७७ ४। आगे कवि ने कथा पर जैन सिद्धान्तों का आरोपण किया है। रुक्मिणी

---

१ — ढाल स० ७३। २ — ढाल स० ७५—७६।
३ — ढाल स० ७७। ४ — ढाल स० ७६।
५ — ढाल स० ८०। ६ — ढाल स० ८१।
७ — ढाल स० ८६। ८ — ढाल स० ६५।
६ — ढाल स० ६८—१००। १० — छद स० ८ (१०८)।

गर्भवती होती है तो उन चौदह स्वप्नों में से एक स्वप्न दिखाई देता है।[1] जब कृष्ण स्वप्न का विवरण सुनते हैं तो वे उसको कहते हैं कि पुत्र विख्यात होगा। बारहवें स्वर्ग से राय मधु का जीव काम कुमार रुक्मिणी के गर्भ में प्रवेश करता है। जन्म के उपरान्त उसका नाम प्रद्युम्न कुमार होता है।

७८ ४। एक दिन अचानक ही प्रद्युम्न लुप्त हो जाते हैं तब कृष्ण रुक्मिणी को आश्वासन देते हैं कि सोलह वर्ष में वह पुनः मिल जायेगा। नारदजी उसको ढूंढने का आश्वासन देते हैं। प्रद्युम्न का विद्याधर राय और रानी कनकमाला के पास पालन होता है।[2] प्रद्युम्न थोड़े समय में सब कलाएं सीख जाते हैं। सौतेली माताएं और सौतेले भाई उनको मारने का प्रयत्न करते हैं। रानी कनकमाला भी पूर्व जन्म के पति पत्नी सम्बन्ध के कारण प्रद्युम्न से अप्रकट रूप में प्रेम करती है। एक दिन रानी कामातुर होती हुई हाव भाव प्रदर्शित करती है। तब प्रद्युम्न उसको समझाते हैं।[3] उसके न मानने पर वे जंगल में चले जाते हैं। वहां एक मुनिराज से उनकी भेंट होती है। मुनि उनको यह बतलाते हैं कि किस कारण उनको मातृ वियोग सहना पड़ रहा है।[4] मुनि उनको यह भी कहते हैं कि कनकमाला से दो विद्यायें जो पास हैं वे भी सीख लो। कामातुर होकर कनकावती दोनों विद्यायें सिखा देती है। फिर उनके सामने वासनाजनक प्रस्ताव रखती है। प्रद्युम्न उस प्रस्ताव को ठुकरा कर चले जाते हैं। रानी राजा से शिकायत करती है कि प्रद्युम्न ने उसके सामने लज्जापूर्ण प्रस्ताव रखा। तब राजा अपने पांच सौ पुत्रों को प्रद्युम्न से युद्ध की आज्ञा देता है किन्तु प्रद्युम्न उन सबको मार देते हैं। राजा रानी के पास विद्या लेने जाता है तो उसको ज्ञात होता है कि वे विद्यायें रानी ने प्रद्युम्न को दे दी तब राजा को वास्तविकता ज्ञात होती है और वह पश्चाताप कर प्रद्युम्न से मिलता है। प्रद्युम्न अपनी विद्या से उसके पुत्रों को पुनः जीवित कर देते हैं।

७९ ४। रुक्मिणीजी का पुत्र वियोग सहते सोलह वर्ष व्यतीत हो गये तो नारदजी प्रद्युम्न से मिले और उनको सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। प्रद्युम्न मुनि वेश धारण कर और विमान में बैठ कर द्वारिका की ओर चले।[5]

८० ४। मुनि वेश में होने से उनको कोई नहीं पहिचान सका। वहां पर वे रुक्मिणी को पुत्र प्राप्ति का आश्वासन देते हैं और उसको अपना चमत्कार बताते हैं। रुक्मिणी को विमान में बैठा कर कृष्ण के पास पहुँचते हैं और उनसे कहते हैं— "रुक्मिणी का हरण करके जा रहा हूँ"। तब कृष्ण का और प्रद्युम्न का युद्ध होता है। नारदजी आकर वास्तविकता प्रकट करते हैं। कृष्ण और प्रद्युम्न प्रसन्न होकर गले मिलते हैं।

---

१ – ढाल सं० ११ (१११)। २ – ढाल ५१ (१५१)।
३ – ढाल सं० ७७ (१७७), ७८ (१७८), ७९ (१७९)।
४ – ढाल ३६ (१३६)। ५ – ढाल सं० ६६ (१६६)।

८१ ४। आगे कवि प्रकट करता है कि पूर्व ज म का मधु तो प्रद्युम्न के रूप म रुक्मिणी के गभ म उत्पन्न हुआ किन्तु उसका पूर ज म का भाई केटक अभी बारहवे स्वग में ही था। जब केटक ने अपन भविष्य ज म के विषय मे श्री सीम धर देव स पूछा तो वे उसको यह आश्वासन दत हैं कि वह श्रीकृष्ण की जम्भावती क गभ से ज म लगा और उसका नाम सबुक होगा। तदुपरान्त स्वग से एक देव श्रीकृष्ण का मोतिया का हार दता है और कहता है कि इस हार को पहिनन वालो के गभ स बारहवें स्वग का देवता अवतार लेगा।[1] श्रीकृष्ण वह हार सत्यभामा का दना चाहते है कि तु रुक्मिणी छल द्वारा वह हार अपनी बहिन जम्भावती का प्रद्युमन की सहायता से देती है। जम्भावती के गर्भ से समय पूरा होने पर देवकुमार ज म लता है। इसी समय सत्यभामा क भी पुत्र होता है जिसका नाम सुभानु कुमार होता है।

८२ ४। एक बार प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण को वचनबद्ध कर जम्भावती के पुत्र सबू के लिए छ महिने तक द्वारिका का राज्य माग लिया। वह अनाचार करने लगा। तब कृष्ण ने उसकी परीक्षा लकर उसका देश निकाला दे दिया कि तु प्रद्युम्न के समझाने पर यह कहा कि अगर सत्यभामा अपने हाथ स स्वागत सत्कार कर उस राजमहल मे ले आए तब वह देश निकाल के दण्ड क मुक्त हो सकता है। सम्बू छल विद्या से सु दरी बनकर सुभानु की वधू के रूप में सत्यभामा के साथ महल में आ जाता है। सत्यभामा को जब वास्तविकता ज्ञात होती है तो वह बहुत पश्चाताप करती है।

८३ ४। रुक्मिणी की इच्छा थी कि रुक्मया की क या वद्रवो का विवाह प्रद्युम्न से सम्पन हो जाय। जब वह रुक्मया के पास यह सन्देश भेजती है तब रुक्मया स देश को ठुकरा देता है। तब प्रद्युम्न छल विद्या से कुन्दनपुर जाकर वैद्रवो से विवाह कर पुन सम्बू सहित द्वारिका आ जाते हैं

८४ ४। आगे दूसरी ढाल प्रारम्भ होती है— 'गाफिल मति रह रे एक समय द्वारिका में व्यापारियो ने आकर 'रतन कमल दिखाये जि हे यादव कुमारो ने मोल लिया। उन कमलों का मगध में किसी न नही लिया तब वे व्यापारी मगध का बुराई करत है। इसस कुपित हाकर जरासध न द्वारिका पर चढ़ाई की किन्तु परास्त हुआ।

८५ ४। आगे पुन ढाल अजना रास की चलती है। इसमें नेमिनाथ के अठारह हजार साधुओ सहित द्वारिका आने, कृष्ण क छोटे भाई राजसुकुमाल को दीक्षा देने, अन्त में स्वय कृष्ण और प्रधान यादवों को तप करने का उपदेश देने पच महाव्रत का पालन और माँस-मदिरा का त्यागने आदि का वणन है।

८६ ४। यादव कुमार एक दिन क्रीडा हेतु नगर क बाहर जाते हैं वे एक सरोवर

---

१ – ढाल स० ४१ (२४१)।

का मार्ग जन पीकर मस्त हो जाते हैं और एक तपस्वी को कष्ट देते हैं जिसमे वह तपस्वी द्वारिका के विनाश का भार देता है। देवदूत जब द्वारिका का विनाश करने प्राते हैं तो कृष्ण यह घोषणा करवाते हैं कि जो संयम धारण कर तपस्या करेगा उसका उद्धार होगा। कृष्ण की रानियां भी दीक्षा ले लेती हैं। देवदूत द्वारिका मे प्राग लगा देते हैं। कृष्ण प्राग बुझाने का प्रयत्न करते हैं पर निष्फल होने पर बलदेव के साथ नगर छोड़कर चल देते हैं। प्रद्युम्न और शम्बु कुमार भी रुक्मिणी सहित दीक्षा लेकर तप प्रारम्भ कर देते हैं।

८७ ४। प्रस्तुत रचना में श्रीकृष्ण का चरित्र अनुस्यूत ही रहता है। कवि ने अपनी अनेक कल्पनाओं के आधार पर जैन धर्म का महत्व बताया है। रचना का कलापक्ष भी सर्वथा अविकसित रहता है।

८८ ४। कृति का अपर नाम 'रुक्मिणी मंगल' है और इसकी रचना वि० स० १८७६ मे होशियारपुर मे चतुर्मास काल में हुई है —

'ऋष रतीराम परशाद थी, कवि न दलालजी कीधा गुण ग्राम तो।
सम्वत् अठारह सो छियतरया, नगर हाशियारपुर कीधो चोमास तो।'[1]

जब लग मेरु अचल है जब लग दानी ग्रर सूर।
जब लग यह पोथी सदा, रहज्यो गुण भरपूर।।
इति रुक्मिणी मगल सम्पूर्ण।

८९ ४। रचना की एक प्रति जिन चरित्र सूरी पुस्तकालय बड़ा उपासरा बीकानेर मे है।

(७) रुक्मिणी हरण (बड़ा)

९० ४। यह रुक्मिणी हरण गेय रूप मे है।[2] रचना के प्रारम्भ मे कवि गणपति की वन्दना करता है और रुक्मिणी हरण के गायन मे प्रवृत्त वाणी की कामना करता है।

९१ ४। तदुपरान्त कवि राजा भीष्मक और उसकी कन्या का वर्णन करता है। राजा भीष्मक अपने परिवार के साथ एकान्त मे बैठकर रुक्मिणी के विवाह के विषय मे विचार करते है। वर के रूप में श्रीकृष्ण का प्रस्ताव आने पर रुक्मैया के अतिरिक्त सभी प्रसन्न होते हैं। रुक्मैया क्रोध कर कृष्ण की बुराई करता है।[3]

९२ ४। रुक्मैया विवाह लग्न लिखवाकर ब्राह्मण के द्वारा शिशुपाल को भेजता है और शिशुपाल विवाह लग्न स्वीकार कर राजा भीष्मक को प्रणाम और रुक्मैया को जुहार

---

१ – ढाल स० ८०४।
२ – टेर सख्या १, पद सख्या १–४।
३ – पद स० ५–६।

सूचित करता है।[1]

६३ ४। शिशुपाल नौ लाख हाथी और दस लाख घोड़े तथा सहस्र लाख ऊंट सजा कर विवाह हेतु पहुँचता है। रुक्मैया उनका स्वागत करता है। महल में बैठी हुई राजकुमारी रुक्मिणी श्री कृष्ण से ही विवाह करने की कामना करता है।[2] तदुपरान्त रुक्मिणी का दुख प्रकट किया गया है — "रुक्मणी रुदन करे नैना सू नीर भरे"।[3]

६४ ४। एक वृद्ध ब्राह्मण को रुक्मिणी द्वारिका भेजना चाहती है। ब्राह्मण अपनी वृद्धावस्था बतला कर जाने की अनिच्छा प्रकट करता है। रुक्मिणी प्रचुर द्रव्य भेंट करती तब ब्राह्मण जाने के लिए तयार होता है। रुक्मिणी को कृष्ण के लिए पत्र लिखने में एक प्रहर लगता है। वृद्ध ब्राह्मण अच्छी तरह से भोजन कर चला तो मार्ग में उसे नींद आ गई। ब्राह्मण की आंख खुली तो उसने अपने आपको द्वारिका में पाया।[4] तदुपरान्त द्वारिका वर्णन करते हुए ब्राह्मण द्वारा कृष्ण को रुक्मिणी का पत्र देने और गरुड़ सवारी से कृष्ण द्वारा विदर्भ पहुंचने का वर्णन किया गया है।[5]

६५ ४। ब्राह्मण दरबार में पहुँच कर राजा भीष्मक और रुक्मिणी के भाग्य की सराहना करता है और दान प्राप्त करता है। द्वारिका में सुभद्रा और बलदेव कृष्ण को अपने स्थान पर नहीं देखते हैं तब अपनी माता से कृष्ण के विषय में पूछते हैं। माता ब्राह्मण के द्वारा पत्र लाने और कृष्ण के प्रस्थान करने का वर्णन करती है।[6]

६६ ४। श्रीकृष्ण की वर यात्रा में हाथी–ऊंट सहित मानों मनुष्यों का वनस्पतियाँ, पहाड़, डूंगर, गंगा–गोमती, नवकुल नाग और चौंसठ योगिनियों के भी सम्मिलित होने का वर्णन है।[7]

६७ ४। विदर्भ नगर में पहुंच कर श्रीकृष्ण ने शंख बजाया जिससे शिशुपाल भयभीत हो गया। राजा भीष्मक ने श्रीकृष्ण का स्वागत किया और उनके पैर लगकर कुशल क्षेम पूछी। रुक्मिणी अपनी सहेलियों सहित शृंगार कर अम्बिका पूजन के लिए चली। शिशुपाल ने रुक्मिणी को रोका तो उसका मुख काला गया। रुक्मिणी ने माता अम्बिका से कृष्ण से विवाह करने की कामना प्रकट की। शिशुपाल ने क्रोधित होकर मुद्गर हाथ लिया तो वह वासुकि नाग हो गया।[8]

६८ ४। कृष्ण ने गरुड़ जी को भेज कर रुक्मिणी का हरण करवाया और रुक्मिणी को गरुड़ पर बैठा कर ले चले। अपनी बहिन के हरण का समाचार जानकर रुक्मैया ने कृष्ण का पीछा किया। रुक्मैया कृष्ण की बुराई करता हुआ उन पर बाण वर्षा

---

१ – टेर स० २, पद स० १–१०।
२ – टेर ३ पद स० १–६।
३ – टेर ३, पद स० १–६।
४ – टेर ४, पद स० ५–१६।
५ – टेर ५, पद स० ५–८।
६ – टेर ७, पद स० १–४।
७ – टेर ८, पद १–५।
८ – टेर ९, पद स० १–६।

करने लगा। तब कृष्ण ने रुक्मैया को रथ से बांध लिया।[1] रुक्मिणी ने रथ से उतर कर अपने भाई को बन्धन में बंधा हुआ देखा तो उसने कृष्ण से प्रार्थना कर उसे मुक्त करवा दिया।[2]

९९ ४। कृष्ण ने पहाड़ों में चंवरी बनाकर और आकाश को तोरण बनवा कर रुक्मिणी से विवाह किया। ब्रह्मा ने वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए और सावित्री ने मंगलगान गाते हुए कृष्ण रुक्मिणी का विवाह सम्पन्न किया।[3]

१०० ४। प्रस्तुत रचना विवाह के अवसर पर शेष रूप में प्राप्त हुई है।[4] इसमें श्रीकृष्ण गरुड़ सवार होकर कुन्दनपुर पहुँचते[5] और मन्दिर में स्वयं नहीं जाकर गरुड़ को भेज कर रुक्मिणी का हरण करवाते हैं। श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह मार्ग के पहाड़ी प्रदेश में ब्रह्माजी सम्पन्न कराते हैं।

(८) रुक्मिणी-हरण (छोटा)

१०१ ४। प्रस्तुत रुक्मिणी हरण विवाह में वर वधु का नाम लेते हुए और सरस्वती तथा गणपति की वन्दना करते हुए गाया जाता है।[5]

१०२ ४। रुक्मिणी के विवाह के विषय में परिवार विचार करने लगता है तब रुक्मैया कृष्ण का विरोध करता है और गौर वर्ण ब्राह्मण को परामर्श हेतु बुलाता है।[6] कृष्ण की बारात आने पर ऊंट बैल, हाथी और घोड़ा के सिजाने सिंगारने का विशद वर्णन है।[7] तदुपरान्त विवाह की विधियां सम्पन्न होने का वर्णन है —

> सेवरा रा पाट अणावो ने सपट घी सू भरा या जी।
> सपट घी सू भरावो ने मधुपर्क अणावो जी॥
> मधुपर्क बाटकी अणावा ने, लोलडा लूण बटाइयाजी॥
> लीन्डा लूण बटाइोने, हाथ जोडा०या जो॥
> हाथ सू हाथ जाडावि ने कन्यादान दीया जा।
> तेडानो बाप लाडा तणु, देनु छे कन्यादान जा।[8]

१०३ ४। गीत के अन्त में कन्यादान के साथ दिये जाने वाले हाथी घोड़ा जमीन वस्त्र आदि का वर्णन किया गया है।

---

१ – टेर ६, पद सं० ७–६।
२ – टेर नौ (६), पद सं० ६–११।
३ – टेर ६, पद सं० ११–१३।
४ – लेखक के निजी संग्रह में।
५ – पद सं० १।
६ – पद सं० ३।
७ – पद सं० ४–६।
८ – पद सं० १४।

(६) रुक्मिणी-निवाहलो

१०४ ४। रुक्मिणी विवाहलो एक अज्ञात कवि की रचना है। कवि प्रारम्भ मे गणपति की वन्दना करता है। तदुपरात राजा भीष्मक की राजकुमारी रुक्मिणी का वर्णन करता है। [1]

१०५ ४। रुक्मिणी का विवाह राजा वसुदेव के पुत्र कृष्ण से करने का प्रस्ताव राजा भीष्मक की रानी की ओर से होता है। रानी अपने पति से इच्छा प्रकट करती है और कृष्ण जी से सम्बन्ध जोड समुद्र से साझेदारी करने की प्रार्थना करती है —

गढ मथुरा मे श्रो राजा वसुदेव राज करे।
ज्या घर कुग्रारो श्रो कवर कन्हैया।
राज कवर ने वीनमू
एक विद्याश्रो भणजो स्वामी दोय जणा।
सीर कीजो नी समुद्र सु। [2]

१०६ ४। रुक्मैया कृष्ण का विरोध करता हुआ उन्हें काला, कुवर्ण, ग्वालिया और नट वेषधारी बताता हुआ शिशुपाल की धन सम्पत्ति की प्रशसा करता है। [3]

१०७ ४। रुक्मैया शिशुपाल को लग्न पत्रिका भेज देता है। शिशुपाल प्रसन्न होता हुआ विवाह की तैयारी करता है —

जामो सिवडाव श्रो शिशुपालो हरख करे॥
कसूबल पारा, केसरिया जामो, सीस विराज वारे सेवरो। [4]

१०८ ४। शिशुपाल को विवाह हेतु लाने पर श्री कृष्ण रुक्मैया को मारने लगते हैं तब रुक्मिणी श्रीकृष्ण से निवेदन कर उसको मुक्त कराती है —

दश कोसा माही गोडर तालिया, बीस कोसा म वीरदडी॥
सहरा म बैठा श्रो, बाई रुक्मण रुदन करे।
वीरा जो सालो कई बतलावो जो राखो पिहरिया रो पयोजी। [5]

१०६ ४। श्रीकृष्ण ने रुक्मैया को साला कहकर छोड दिया और रुक्मैया ने रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से कर दिया। ब्रह्माजी और सावित्री ने मिलकर विवाह विधि सम्पन्न की।

---

१ – पद स० १–३।
२ – पद स० ४।
३ – पद स० ५–६।
४ – पद स० ८।
५ – पद स० ६।

(१०) कान्ह जी विनाहलो

११० ४। का ह जी विवाहलो' एक अज्ञात कवि की रचना है और लौकिक गातों की शली मे गेय है। इस विवाहल का प्रारम्भ रुक्मिणी को बालकुमारी बताते हुए और श्रीकृष्ण की बरात की उसके द्वारा प्रतीक्षा करना बताते हुए किया गया है।[1]

१११ ४। प्रस्तुत विवहले मे श्रीकृष्ण को जग नाथ क हा गया है और उनके साथ जान म बलभद्र का आना सचित किया गया है। विवा मैं शिशुपाल के सैनिको और रुक्मया स श्रीकृष्ण का कोई सघर्ष नही बताया गया है। श्रीकृष्ण का सीधे तोरण पर पहुचते हुए और वहा पर विवाह की विधि पूरा करत हुए बताया गया है।

११२ ४। श्रीकृष्ण रुक्मिणी से विवाह कर द्वारिका लौटते है तब उ हें ससुराल मे किये गये भोजन और दहेज आदि क विषय मे पूछा जाता है। श्रीकृष्ण इस विषय में यथोचित उत्तर दत है।[3]

११३ ४। श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्ब धी चारणेतर रचनाओ की विशेषताए इस प्रकार हैं —

१— अधिकांश रचनाए लघुरूप में है। बडी रचनाओ मे पद्म भक्त कृत रुक्मिणी मगल और न दलाल कृत रुक्मिणी रास मुख्य हैं।

२— समस्त रचनाए लौकिक शली मे गेय है।

३— कथा का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत ही है किन्तु कवियो ने प्रसगानुसार नवीन कल्पनाए भी की हैं।

४— रचनाओ का कला पक्ष पूर्ण रूपेण विकसित नही है भाव पक्ष अव य ही पद्म भक्त कृत रुक्मिणी मगल मे प्रबल है।

५— वस्तु वर्णन अनेक रचनाओं म विस्तृत है। यथा — पद्म भक्त कृत रुक्मिणी मगल में नगर वर्णन भोजन वर्णन आदि।

६— वीर रस का अपेक्षा शा त रस और शृगार रस का प्राधान्य है।

७— श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह वर्णन की जैन कवियो का परम्परा भिन्न है जिसका परिचय न दलाल कृत रुक्मिणी रास स उपल ध होता है। ऐसी रचनाओ में प्रद्यु न सम्ब धी प्रसगो पर कवियों का विशेष ध्यान गया है और जन सिद्धा त का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

★

१ — पद स० २–१३। ३ — पद स० २०–२२।

पंचम अध्याय

उपसंहार

१ ५। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी-हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य सन् १८९९ ई० में प्रारम्भ किया जिसके परिणाम स्वरूप अनेक ग्रंथ रत्न प्रकाश में आये। सभा का कार्य क्षेत्र मुख्यतः उत्तरप्रदेश तक ही सीमित रहा किन्तु यह कार्य अन्य प्रदेशों के लिए परम प्रेरक और अनुकरणीय बन गया। राजस्थान के राजपूत राजाओं जागीरदारों पण्डित परिवारों और देवस्थानों में उपलब्ध अपार ग्रंथ राशि की ओर भी अनेक विद्वानों और साहित्यिक संस्थाओं का ध्यान आकर्षित हुआ।

२ ५। राजस्थानी साहित्य का महत्त्व कर्नल जेम्स टॉड (सन् १७८२-१८३५ ई०) ने "एनल्स एण्ड एंटिक्विटीज-आव राजस्थान" नामक ग्रंथ[1] द्वारा और महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री (सन् १८५३-१९३१ ई०) ने 'प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इन सर्च आव दि मैन्युस्क्रिप्ट्स आव बार्डिक क्रोनिकल्स'[2] द्वारा प्रदर्शित किया किन्तु राजस्थानी साहित्य के विधिवत् अन्वेषण का कार्य एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता की ओर से डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी द्वारा १९१४ ई० में प्रारम्भ हुआ। डॉ० तेस्सीतोरी ने अपने चार वर्ष के कार्यकाल में ही अनेक राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थों के विवरण[3] तैयार किये और 'छन्द राउ जैतसी रउ', 'वचनिका राठोड़ रतनसिंह जी महेसदासोत री' तथा 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' नामक तीन महत्त्वपूर्ण काव्य कृतियों का सम्पादन किया तथा कई शोधपूर्ण निबंध प्रकाशित किये। डॉ० तेस्सीतोरी ने इतालियन होते हुए भी राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी अन्वेषण कार्य हेतु राजस्थान को अपना निवास स्थान बनाया और मृत्यु पर्यन्त कार्यरत रहते हुए भावी अन्वेषणकर्त्ताओं के सामने कार्यरूप में उच्च आदर्श प्रस्तुत किये। डॉ० तेस्सीतोरी के पश्चात् मुंशी देवीप्रसाद (१८४८-१९२३ ई०) के कवि

---

१ — क्रुक मिलफोर्ड लन्दन, १८२९ ई०।

२ — १९१३ ई० एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।

३ — ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आँव बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्टस।

४ — जर्नल आफ एशियाटिक सोसाईटी आफ बंगाल, कलकत्ता।

'राजमाला', 'महिला मृदुवाणी', 'राजरसामृत' और राजस्थान में हस्तलिखित पुस्तकों की खोज, ठाकुर भूरसिंह शेखावत (१८६७-१९२१ ई०) के 'विविध संग्रह' और महाराणा यश प्रकाश' पं० रामकरण जी आसोपा का मारवाड़ी व्याकरण, डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा (१८६३-१९४७ ई०) का प्राचीन लिपि माला पं० नरोत्तमदास जी स्वामी का 'राजस्थान रा दूहा' (१९३४ ई०) पं० मोतीलाल जी मेनारिया कृत राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' (१९३९ ई०)[1] और राजस्थानी भाषा और साहित्य (१९४९ ई०)[2] श्री अगरचन्द जी भंवरलाल जी नाहटा का ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह (१९३७ ई०) श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई कृत 'जैन गुर्जर कवियो' ३ भाग (१९२६-१९४४ ई०) मुनि जिन विजय जी का प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ (१९०९६०) डॉ० कन्हैया लाल जी सहल द्वारा सम्पादित मरु-भारती[3] श्री कस्तूर चन्द कासलीवाल द्वारा राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ-सूची[4] श्री सीताराम जी लालस का राजस्थानी-हिन्दी शब्द कोष[5], चौपासनी शिक्षा संस्थान के परम्परा प्रकाशन,[6] प्राचीन राजस्थानी गीत'[7] मरुवाणी स० रावत जी सारस्वत[8] आदि अनेक प्रकाशन हुए हैं। इस प्रकार विगत अर्द्ध शताब्दी में हुए अन्वेषण-कार्यों से राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा स्पष्ट हो चुकी है। प्रति वर्ष राजस्थान और संलग्न प्रान्तों में प्राप्त होने वाले हस्तलिखित ग्रन्थों में नवीन नाम ये उपलब्ध होते रहते हैं और सभी अज्ञात में पड़े भण्डार-संग्रहित कोनों में राजस्थानी साहित्य के अनेक ग्रन्थ धूलि धूसरित अवस्था में दबे हुए पड़े हैं। राजस्थान के विभिन्न भागों में हो रहे प्रयत्नों से ज्ञात होता है कि निकट भविष्य में भी कतिपय वर्षों तक हस्तलिखित ग्रन्थ निरन्तर उपलब्ध होते जायेंगे। ऐसी अवस्था में राजस्थानी साहित्य के काल-विभाजन का प्रभावित होना सर्वथा स्वाभाविक होगा।

३ ५। प्रस्तुत विनम्र प्रयत्न में राजस्थानी भूमि (४ १-८ १), जन-जीवन (६ १-१५ १) भाषा (१६ १-४८ १) और ललित कलाओं (४६ १-६७ १) का पारस्परिक सम्बन्ध बताते हुए नवीन रूप में राजस्थानी साहित्य का काल विभाजन (६ २-८ २) कर प्रत्येक काल की प्रवृत्तियों और साहित्यिक रचनाओं का विवरण (६ २-२४४ २) दिया गया है। साहित्य का प्रस्तुत काल विभाजन ऐतिहासिक परिस्थितियों पर आधारित है। अतएव भविष्य में उपलब्ध होने वाली नवीन साहित्यिक रचनाओं का भी इन्हीं कालों में समावेश हो जावेगा।

---

१ – छात्र हितकारी पुस्तक माला, प्रयाग।
२ – हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
३ – राजस्थानी शोध विभाग पिलानी।
४ – जैन अतिशय क्षेत्र महावीरजी जयपुर।
५ ६ – राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर।
७ – राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य संस्थान, उदयपुर।
८ – राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुर।

४ ५। राजस्थानी साहित्य अनेक रूपों म उपलब्ध होता है। (१ ३–४६ ३)जिसमे "हर विवाह मगल" सनक रचनाओं का भी है। विवाह भारतीय जीवन का एक विशेष कार माना गया है (४७ ३–५२ ३)। 'विवाह मगल' सनक रचनाए भी अनेक प्रकार प्राप्त होती हैं (५३ ३–५७ ३)। अनेक भारतीय भाषाओ में मगल का प्र नेवन की सुदीघ परा रही है (५८ ३–७ ३) और राजस्थानी विवाह मगल का या (८० ३–८६ ३) में ण रुक्मिणी विवाह–सम्बन्धी रचनाए प्रचुर मात्रा में उपल ध होती हैं।

५ ५। भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र विविधताओ से पूर्ण है और साहित्यकारों क ा विषय प्रेरक रहा है (१ ४–१३ १४)। श्रीकृ ण–चरित्र के अन्तगत श्रीकृष्ण रुक्मिणी वाह सम्बन्धी प्रसग का विस्तृत निरूपण श्रीमद्भागवत में हुआ है (१४ ४–३१ ४)। वष्णुपुराण, 'हरिवशपुराण' और अनेक सस्कृत का यों मे भी श्रीकृ ण रुक्मणी विवाह सबधी सग है। राजस्थानी का य की रचना मे अपभ्रश और व्रज भाषा में लिखित रचनाए भी रक रही हैं (३७ ४–१२४ ४)। मध्यकालीन राजस्थानी इतिहास की परिस्थिति उक्त प्रकार ी काव्य रचना में सवथा सहायक सिद्ध हुई हैं (१२५ ४–१३३ ४)। श्रीकृष्ण रुक्मिणी वाह विषयक का यों को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है —

१ चारण काव्य और २ चारणेतर का य।

चारण का यो म चारणों द्वारा रचित का यों के साथ ही अन्य कवियों के चारण ली मे रचित का य भी उपल ध हुए हैं (१ ५–१४७ ५)। इस प्रकार की रचनाओं में महाराज पृथ्वीराज कृत वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' का स्थान सर्वोच्च है (१५ ५–८२ ५)। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्ब धी चारणेतर रचनाओ म पद्मभगत कृत "रुक्मिणी मगल' एक महत्वपूर्ण कृति है (२ ६–२६ ६)। इस प्रकार की अन्य कृतियाँ कथानक सगठन की विविधता की दृष्टि स महत्वपूर्ण हैं (२७ ६–११३ ६)।

६ ५। श्रीकृष्ण–रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी का यों की कथावस्तु को निम्नलिखित रूप में विभाजित किया जा सकता है —

१ प्रारम्भ कार्यावस्था और बीज अर्थ प्रकृति —
रुक्मिणी और श्रीकृष्ण का एक दूसरे के रूप, गुण और नाम की प्रशसा सुनकर एक दूसरे के प्रति आकर्षित होना।

२ यत्न नामक कार्यावस्था और बिन्दु अर्थ प्रकृति —
रुक्मणी द्वारा श्रीकृष्ण के प्रेम में वशीभूत होकर श्रीकृष्ण को सन्देश भेजना और विवाह के लिए आमंत्रित करना। श्रीकृष्ण द्वारा यथासमय पहुच कर रुक्मिणी को हरण कर लाने का निश्चय प्रकट करना।

३ प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था और पताका नामक अर्थ प्रकृति —
श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण के लिए यथा समय कुन्दनपुर पहुँचना। बलदेव द्वारा सैनिका सहित श्रीकृष्ण की सहायता के लिए आना।

४ नियताप्ति नामक कार्यावस्था और प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति—
श्रीकृष्ण द्वारा यथासमय देवी मन्दिर में पहुँच कर रुक्मिणी का हरण करना। श्रीकृष्ण द्वारा बलदेव और अन्य यादव सैनिकों की सहायता से शिशुपाल, जरासंध और रुक्मैया आदि शत्रुओं को परास्त करना।

५ फलागम नामक कार्यावस्था और कार्य नामक अर्थ प्रकृति —
श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाह। रुक्मिणी के प्रद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न होना।

७ ५। महाराज पृथ्वीराज कृत "श्री क्रिसन रुक्मिणी री वेलि" में रुक्मिणी के यौवन रूप वर्णन से प्रद्युम्न जन्म तक के प्रसंग वर्णित हैं और प्रत्येक प्रसंग को उद्देश्य की दृष्टि से सन्तुलित चित्रण हुआ है। कवि ने श्रीमद्भागवत् से कथानक ग्रहण करते हुए भी उसमें अपनी मौलिक कल्पनाओं और काव्यात्मक रूपों का समावेश किया है। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी परवर्ती रचनाओं में अनेक लोक प्रचलित प्रसंगों का समावेश हुआ है किन्तु इन रचनाओं की कथावस्तु भी श्रीमद्भागवत् पर ही आधारित रहा है।

८ ५। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी काव्य भक्त कवियों की रचनाएं हैं। सम्बन्धित कवियों ने श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार और पूर्णब्रह्म परमेश्वर तथा रुक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार माना है जिसमें इन काव्यों में भक्ति का स्वर प्रधान हो गया है।

९ ५। भरत मुनि ने शृंगार रौद्र वीर और वीभत्स नामक रसों को प्रधान मानते हुए इन रसों से क्रमशः हास्य करुण अद्भुत और भयानक नामक गौण रसों की उत्पत्ति बताई है।[1] भरत मुनि ने पाठ्य से शान्त रस का उल्लेख कर उसके स्थाई भाव को अन्य सभी भावों में प्रधानता दी है। काव्य प्रकाश में भी निर्वेद प्रधान शान्त रस को नवम् रस माना गया है।[2]

१० ५। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में शान्त रस की महत्ता प्रकट करते हुए शान्त रस से ही रति आदि आठों स्थायी भावों की उत्पत्ति बताई है।[3]

११ ५। आचार्य अभिनव गुप्त ने तत्वज्ञान को ही शान्त रस का स्थायी भाव सिद्ध किया है। इनके मतानुसार जिस प्रकार काव्य कवि और नट द्वारा रति आदि से अभिहित होकर रस रूप में आस्वाद्य होता है उसी प्रकार शम भी विशेष चित्त वृत्ति के योग से शान्त रस के रूप में प्रकट होता है। निर्वेद नामक चित्त वृत्ति की उत्पत्ति घोर संकट और तत्वज्ञान से होती है। तत्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद सभी स्थायी भावों को दबा देने वाला होता है। अग्नि पुराण (९वीं १०वीं शती ई०) में शान्त रस की उत्पत्ति रति के अभाव से आचार्य रुद्रट (९वीं शती ई०) ने सम्यक् ज्ञान से और आनन्दवर्धनाचार्य (९वीं शती ई०), ने तृष्णाक्षय सुख से मानी है।

---

१ – नाट्यशास्त्र, ६।१६। २ – काव्य-प्रकाश, ४।३५। ३ – ६।१०८।

१२ ५। सम्बंधित काव्यों में विवाह प्रसग प्रधान रहा है इसलिये नायक नायिका निरूपण, वय सन्धि वर्णन, शृ गार वर्णन और सयोग वियोगादि शृगारिक अवस्थाओं का वर्णन विशद रूप में हुआ है। शृगार को रसराज माना गया है क्योंकि शृगार की भावना व्यापक होती है। यह प्रत्येक काल और जाति मे सदा विद्यमान रहती है। महाराजा भोज ने शृ गार को ही एक मात्र रस माना है। अन्य रसों को रस की सज्ञा देना इन्होंने परम्परा पालन मात्र बताया है।[१] 'अग्नि पुराण' में शृगार रस से ही अन्य रसों की उत्पत्ति मानी गयी है। भरत मुनि ने शृ गार रस की व्याख्या करते हुए लिखा है —

ससार में जो कुछ उत्तम, शुचि, उज्ज्वल और दर्शनीय है वही शृ गार है।[२]

१३ ५। शृ गार रस के देवता श्याम वर्ण विष्णु माने गये हैं। विष्णु अनन्त शक्ति रमा के साथ रमण करते हुए लोक के पालनकर्ता हैं। शृगार का स्थायी भाव रति, आलम्बन विभाव नायक और नायिका, उद्दीपन विभाव दूति, सखा, परिहास, उपालम्भ, दन, उपवन, ऋतु, पुष्प, भ्रमर, कोकिल, सगीत आदि हैं, अनुभाव नायक नायिका की कायिक, वाचिक और मानसिक अवस्थाएं और क्रियाएं, प्रति क्रियाएं यथा- भ्रूभग, भुजाक्षेप, परस्पर अवलोकन, स्वेद और रोमाच आदि हैं तथा सचारी भाव हर्ष, मोह, चिन्ता, लज्जा आदि हैं। शृ गार रस के दो भेद हैं — सयोग और वियोग। सयोग शृ गार में आनन्दोत्पादक सचारी भावों की तथा वियोग शृगार में करुणोत्पादक सचारी भावों की प्रधानता रहती है। श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसग उक्त प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए सर्वथा उपयुक्त रहा है।

१४ ५। श्रीकृष्ण को रुक्मिणी की प्राप्ति के लिए युद्ध कर शिशुपाल, जरासध और रुक्मैयादि शत्रुओं को पराजित करना पडा था। सम्बंधित काव्यों मे युद्ध सम्बन्धी प्रसग का कवियों की रुचि के अनुसार विभिन्न रूपों में समावेश हुआ है। युद्ध, दया धर्म और दान आदि कार्यों में अत्यधिक उत्साह प्रकट होने पर वीर रस की उत्पत्ति मानी गयी है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। वीर रस के देवता इन्द्र और वर्ण हेम रूपा माना गया है।[३] भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र' में वीर रस का सम्बन्ध उत्तम प्रकृति वाला से मानते हुए इसका स्थायी भाव उत्साह बताया है।[४] वीर रस के चार भेद माने गये हैं—

(१) युद्ध वीर, (२) दान वीर, (३) दया वीर और (४) धर्म वीर।[५]

वीर रस के आलम्बन विभाव याचक शत्रु, याचक और तीर्थस्थानादि है, उद्दीपन विभाव शत्रु का प्रभाव, शक्ति चारण वाणी याचक की दीनदशा प्रशसा-श्रवण आदि अनुभाव स्थैर्य, रोमाच, सत्कार आदि, सचारी भाव गर्व, धृति, तर्क, स्मृति हर्ष, दया, असूया, आवेग आदि हैं।

१– शृ गार प्रकाश, प्रथम प्रकाश ६–७।
२ – नाट्य-शास्त्र, अध्याय ६।
३ – चन्द्रालोक।
४ – ना० शा० ६। ६६ ग।
५ – साहित्य दर्पण ३। २३४।

१५ : ५ । उल्लेखनीय है कि कविवर पृथ्वीराज ने "वेलि" में शृंगार का विस्तृत निरूपण करते हुए भी भक्ति और वीरता को महत्व प्रदान किया है। चारण कवि सांयाजी झूला ने "रुक्मणी-हरण" में युद्ध सम्बन्धी प्रसंग का विस्तृत निरूपण करते हुए श्रीकृष्ण के वीर चरित्र पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित की है तो पदम भक्त ने "रुक्मणी-मंगल" में प्रसंगानुसार अनेक रसों से जन मानस को आप्लावित करने का प्रयत्न किया है।

१६ : ५ । श्रीकृष्ण रुक्मणी विवाह सम्बन्धी चारण-काव्यों में संस्कृत और हिन्दी काव्यों में सामान्य रूपेण प्रचलित अलंकारों के साथ ही मध्यकालीन राजस्थानी काव्यों में प्रचलित "वेणसगाई" अलंकार का निर्वाह प्रायः समस्त छंदों में किया गया है। "वेण-सगाई" का विवरण चारण काव्यों के प्रसंग में प्रस्तुत किया गया है (१०१:५)। वेणसगाई से तात्पर्य वर्ण सम्बन्ध से है और इसको एक प्रकार का अनुप्रास अलंकार भी कह सकते हैं। सम्बन्धित काव्यों में छन्दों की दृष्टि से विविधता दृष्टिगोचर होती है। राजस्थानी छन्द-शास्त्र के अनुसार "गीत" नामक छन्द में कम से कम ३ "द्वाला" होते हैं। पृथ्वीराज कृत वेली ३०५ द्वालों के एक ही छन्द में पूर्ण हुई है।

१७ : ५ । श्रीकृष्ण रुक्मणी-विवाह काव्य-सम्बन्धी चरित्रों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(१) पुरुष चरित्र और (२) स्त्री चरित्र। पुरुष चरित्र इस प्रकार हैं—

श्रीकृष्ण, राजा भीष्मक, बलदेव, रुक्मैया, शिशुपाल, जरासन्ध, संदेश-वाहक ब्राह्मण, नारद मुनि, प्रद्युम्न, शम्बासुर, और नेमिनाथ आदि। स्त्री पात्र रुक्मणी, राजा भीष्मक की रानी, शिशुपाल की भाभी और कनकावती आदि। कवियों की दृष्टि नायक श्रीकृष्ण और नायिका श्री रुक्मणी के चरित्र की ओर ही अधिक रही है।

१८ ७। श्रीकृष्ण सभी काव्यों में नायक रूप में चित्रित किये गये हैं। भरतमुनि ने नायकों के प्रकार निम्नलिखित बताये हैं —

(१) धीरोदात्त (२) धीरललित, (३) धीर प्रशान्त और (४) धीरोद्धत।[1]

भोज ने धीरोदात्त को धर्मशृंगार का नायक, धीरललित को काम-शृंगार का नायक, धीर प्रशान्त को मोक्ष-शृंगार का नायक और धीरोद्धत को अर्थ-शृंगार का नायक लिया है।[2]

१९ २। भोज ने कथानक के आधार पर नायक प्रतिनायक, उपनायक तथा अनुनायक का विभाजन किया और चरित्र की मूल प्रकृति के अनुसार सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार के नायक बताये। अग्निपुराण के अनुसार अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट

---

१ — नाट्य शास्त्र। २ — शृंगार प्रकाश।

प्रकार के नायक होते हैं। प्रकृति के अनुसार नायक को उत्तम, मध्यम और अधम कोटि में लिया जा सकता है। परिस्थिति के अनुसार नायक को संयोगी, वियोगी और अपराधी की श्रेणियों में लिया जा सकता है।[1]

२० ५। जैन कवियों के अतिरिक्त अन्य सभी कवियों ने श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर, विष्णु का अवतार, असुर संहारक, लीला परायण, कुशल-बाड़ा, नीतिज्ञ और रसिक-शिरोमणी एवं धीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित किया है। पृथ्वीराज कृत वेलि में श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवत् के अनुसार राजस्थानी नायक के रूप में चित्रित है।

२१ ५। रुक्मिणी सम्बन्धित समस्त काव्यों में नायिका रूप में चित्रित गई है। हमारे साहित्य में नायिका-भेद और उनके लक्षणों के विषय में विस्तृत विवेचन किया गया है। भरत मुनि ने कुलजा, वेश्या और कन्यका नामक भेद किये हैं। सामान्यतयेण नायिकाओं के भेद स्वकीया, परकीया और सामान्या किये गये हैं। आचार्य रुद्रट ने स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा (प्रगल्भा) नामक उपभेद बताये हैं। भानुदत्त ने मुग्धा के अज्ञात यौवना और ज्ञातयौवना तथा नवोढा और विश्रब्ध नवोढा नामक दो बताये हैं।

२२ : ५। प्रकृति के अनुसार भी नायिकाओं के तीन भेद हैं —

१ उत्तमा — नायक को दूसरे के प्रेम में रंजित देखकर भी उनका अहित न सोचना।

२ मध्यमा — नायक के अनुसार हित अहित चाहने वाली, और

३ अधमा — नायक के हित करते हुए भी उसका अहित चाहने वाली।

२३ : ७। स्वभाव के अनुसार नायिका भेद इस प्रकार है—

१ अन्य संभोग दुःखिता — नायक को अन्य नायिका के प्रेम में फंसा देखकर दुःख करने वाली।

२ वक्रोक्ति गर्विता — नायक के रूप और गुणों का गर्व करने वाली, और

३ मानवती — अन्य नायिका में नायक की आसक्ति देख मान करने वाली।

२४ : ५। रुक्मिणी विष्णु के परम भक्त कुण्डनपुर-नरेश भीष्मक की इकलौती राजकुमारी है। रुक्मिणी उच्चकुल में उत्पन्न श्रेष्ठ प्रकार की नायिका है। रुक्मिणी कमला का अवतार मानी गई है किन्तु श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी का प्रेम दैन्य परक हो गया है। श्रीकृष्ण की गुणावली का श्रवण कर वह हृदय से प्रेम करने लगती है और इसका भाई

---

१ – हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृष्ठ ३९८–४००।
२ – वही, पृ० ४०१–४०२।

रुक्मैया रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करना चाहता है तो यह श्रीकृष्ण को विवाह का संदेश भेजती है। श्रीकृष्ण यथासमय पहुँच कर रुक्मिणी का हरण करते हैं। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पटरानी बनती है और कृष्ण के प्रति प्रेम में निष्ठावती सिद्ध होती है।

२५ ८। रुक्मिणी का चरित्र अनेक कवियों ने चित्रित किया है जिनमें वल्लभ सम्प्रदाय के कवि मुख्य हैं। भगवान श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य परक रूप चित्रण के लिये रुक्मिणी का प्रयोग आवश्यक हुआ है। निम्बार्क, चैतन्य राधा वल्लभीय और हरिदासी सम्प्रदायगत कवियों ने रुक्मिणी का चरित्र उपेक्षित कर दिया, जिसका कारण कृष्ण चरित्र में राधा को प्राधान्य देना है।

२६ ५। रुक्मिणी का चरित्र 'भारत-लक्ष्मी' के रूप में है जिसका उद्धार *भारतीय शौर्य द्वारा होता है। रुक्मिणी भगवद् भक्तों का आशा-केन्द्र रही है और भक्त* जनों को अपने उद्धार की आशा बंधी है।

२७ ५। चारणेतर काव्यों में नारद-लीला का संघर्ष का कारण प्रकट करते हुए नारद चरित्र का भविष्य वक्ता के रूप में समावेश हुआ है। गणेश और संदेश वाहक विप्र का चित्र पद्म कृत 'रुक्मिणी मंगल' में हास्य की दृष्टि से हुआ है।

२८ ५। *आशा है कि विवाह मंगल काव्य धारा के अन्तर्गत श्रीकृष्ण रुक्मिणी* विवाह विषयक काव्य रूप जिसका बीजारोपण ब्रजभाषा में विष्णुदास द्वारा हुआ, जिसको महाकवि सूर और नन्ददास ने अपनी अमृतमयी वाणी से प्रतिबिम्बित किया और जिससे रस युक्त अनेक 'मंगल' फल उपलब्ध हुए, अब हमारे विद्वज्जनों में अधिक समय तक उपेक्षित नहीं रहेगा। महाराज पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन-रुकमणी री वेलि' अपर नाम 'रुक्मिणी मंगल'' का स्थान सम्बन्धित काव्यों में कथानक संगठन, रसनिष्पत्ति, अलंकार सौन्दर्य, प्रकृति निरूपण, मौलिकता, काव्य रूप, वस्तु वर्णन, चरित्र चित्रण, शब्द चयन, भाषा सौष्ठव, भक्ति भावना और उद्देश्य निर्वाह की दृष्टि से अन्यतम है, अतएव साहित्य क्षेत्र में इस काव्य रत्न का समुचित रूप में मूल्यांकन अपेक्षित है।

*

डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम० ए०, (पी-एच. डी.), साहित्य-रत्न

निदेशक, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर

का संक्षिप्त परिचय

१ जन्म —

दिनांक ५ नवम्बर, १९२३ ई० को उदयपुर में मालवीय श्रीगौड़ ब्राह्मण-कुल में हुआ।

२ शिक्षा —

१ एम० ए० हिन्दी, द्वितीय श्रेणी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
२ साहित्य रत्न, द्वितीय श्रेणी, हिन्दी विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
३ मध्यमा (विशारद) द्वितीय श्रेणी, हिन्दी विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
४ जोधपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी एच० डी० से सम्मानित।

३ अनुभव —

१ पूर्व संचालक और मंत्री, राजस्थान विद्यापीठ शोध संस्थान, उदयपुर, क्रियात्मक प्रशासन का अनुभव १० वर्ष, १९४१ से १९५० ई० ।

२ संस्थापक और सम्पादक, शोध पत्रिका, साहित्य संस्थान, उदयपुर । उन्नीसवें वर्ष मे प्रकाशन चालू है ।

३ प्रिंसिपल और प्राध्यापक, राजस्थान विद्यापीठ कालेज, उदयपुर । स्नातक और स्नातकोत्तर अध्यापन का अनुभव ८ वर्ष, १९४१ से १९४८ ।

४ रिसर्च स्कालर, सम्पादन-समिति, भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, १९५५ ई० ।

५. सदस्य भाषा समिति, राजस्थान सरकार, १९५२ ई० ।

६ पर्यवेक्षक और अधिवक्ता, २६ वा अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, १९६४ ई० ।

७ विभागीय सचिव, अखिल भारतीय संस्कृत शिक्षा सेमिनार, १९६४ ई० ।

८ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की राजस्थान-समिति के सदस्य ।

९ सदस्य महासमिति, राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, १९६६ ई० ।

१० अनेक शिक्षण संस्थाओ की कार्य समिति के सदस्य ।

११ सहायक संचालक, शोध सहायक और उप निदेशक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, राजस्थान सरकार, जोधपुर । प्रतिष्ठान में अनुसंधान और प्रशासन सम्बन्धी कार्यों का क्रियात्मक अनुभव १७ वर्ष, १९५१ से ।

१२ निदेशक, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर ।

४ विशेष विवरण —

१ रेडियो से हिन्दी तथा राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति पर प्रसारित वार्ताएं, लगभग सवा सौ (१९४८ से) ।

२ राजस्थान के आन्तरिक भागों में और पूना बम्बई, कलकत्ता आदि की यात्राएं कर हस्तलिखित ग्रन्थ और साहित्य सम्बन्धी विस्तृत खोज, संग्रह, अध्ययन और प्रकाशन कार्य ।

३ राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का निर्देशन १९४१ से १९५० ई० ।

४ गुजराती और मराठी आदि में अनेक रचनाएं अनुदित और प्रकाशित ।

५ देश विदेश के अनेक प्रमुख विद्वानो द्वारा साहित्यक कार्यों और प्रकाशनों का प्रशंसात्मक उल्लेख ।

६ व्यक्तिगत साहित्य संकलन— राजस्थानी लोक-गीत, दस हजार, राजस्थानी लोक-कथाएं, एक हजार आदि ।

७ राजस्थान सरकार द्वारा साहित्यिक कार्यों के लिए दो बार पुरस्कृत ।

८ हिन्दी, राजस्थानी, अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान ।

५ प्रकाशित साहित्य —

१ राजस्थान की रस धारा, राजस्थान संस्कृति परिषद्, जयपुर, १९५४ ई० ।

२ राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५१ ई० ।

३ राजस्थान की लोक कथाएं, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली । पुस्तक के तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । प्रथम संस्करण १९५४ ई० ।

४ राजस्थानी बातां, (तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं) प्रथम संस्करण १९५४ ई०, प्रकाशक— स्टुडेन्ट्स बुक क०, जयपुर ।

लोक कथा सम्बन्धी उक्त दोनो पुस्तकें राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं ।

५ राजस्थानी लोक कथाएं, प्रथम संस्करण १९५४ ई० । [अप्राप्य]

६ राजस्थानी लोक गीत, प्रथम संस्करण १९५४ ई० ।

७ राजस्थान-सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य, भाग १, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय, जयपुर १९५४ ई० ।

८ राजस्थानी साहित्य-संग्रह, भाग२, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९६० ई० । उपाधि परीक्षा के पाठ्य-क्रम में स्वीकृत ।

९ राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग २, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६१ ई० ।

१० रुक्मिणी-हरण, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६४ ई० ।

११ साहित्य सरिता, जय ग्रन्थ प्रकाशन, जयपुर । प्रथम संस्करण १९५१ ई०, तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं ।

१२ पचतरंगिणी, सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५६ ई० ।

१३ नवीन गीत, जन सम्पर्क कार्यालय, राजस्थान सरकार, जयपुर, १९५७ ई० ।

१४ लोक-कला निबन्धावली, भाग १ (१९५४ ई०) ।

१५ लोक-कला निबन्धावली भाग २ (१९५६ ई०) ।

१६ लोक-कला निबन्धावली भाग ३ (१९५७ ई०) ।

६ व्यक्तिगत साहित्य संकलन— राजस्थानी लोक-गीत, दस हजार, राजस्थानी लोक-कथाएं, एक हजार आदि ।

७ राजस्थान सरकार द्वारा साहित्यिक कार्यों के लिए दो बार पुरस्कृत ।

८ हिन्दी, राजस्थानी, अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान ।

३ प्रकाशित साहित्य —

१ राजस्थान की रस धारा, 'राजस्थान संस्कृति परिषद, जयपुर, १९५४ ई० ।

२ राजस्थानी भाषा की रूपरेखा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५३ ई० ।

३ राजस्थान की लोक कथाएं, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली । पुस्तक के तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । प्रथम संस्करण १९५४ ई० ।

४ राजस्थानी बातां, (तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं) प्रथम संस्करण १९५४ ई०, प्रकाशक— स्टुडेन्ट्स बुक क०, जयपुर ।

लोक कथा सम्बन्धी उक्त दोनो पुस्तकें राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं ।

५. राजस्थानी लोक कथाएं, प्रथम संस्करण १९५४ ई० । [अप्राप्य]

६ राजस्थानी लोक गीत, प्रथम संस्करण १९५४ ई० ।

७ राजस्थान-सम्बन्धी प्रकाशित साहित्य, भाग १, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय, जयपुर १९५४ ई० ।

८ राजस्थानी साहित्य-संग्रह, भाग २, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९६० ई० । उपाधि परीक्षा के पाठ्य-क्रम में स्वीकृत ।

९ राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची, भाग २, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६१ ई० ।

१० रुक्मिणी-हरण, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६४ ई० ।

११ साहित्य सरिता, जय ग्रन्थ प्रकाशन, जयपुर । प्रथम संस्करण १९५१ ई०, तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं ।

१२ पचतरंगिली, सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५६ ई० ।

१३ नवीन गीत, जन सम्पर्क कार्यालय, राजस्थान सरकार, जयपुर, १९५७ ई० ।

१४ लोक-कथा विश्वावली, भाग १ (१९५४ ई०) ।

१५ लोक-कथा विश्वावली भाग २ (१९५६ ई०) ।

१६ लोक-कथा विश्वावली भाग ३ (१९५७ ई०) ।

३ अनुभव —

१ पूर्व संचालक और मंत्री, राजस्थान विद्यापीठ शोध संस्थान, उदयपुर, क्रियात्मक प्रशासन का अनुभव १० वर्ष, १९४१ से १९५० ई०।

२ संस्थापक और सम्पादक, शोध पत्रिका, साहित्य संस्थान, उदयपुर। उन्नीसवें वर्ष में प्रकाशन चालू है।

३ प्रिंसिपल और प्राध्यापक, राजस्थान विद्यापीठ कालेज, उदयपुर। स्नातक और स्नातकोत्तर अध्यापन का अनुभव ८ वर्ष, १९४१ से १९४८।

४ रिसर्च स्कालर, सम्पादन-समिति, भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, १९५५ ई०।

५ सदस्य आबू समिति, राजस्थान सरकार, १९५२ ई०।

६ पर्यवेक्षक और अभिवक्ता, २६ वां अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, १९६४ ई०।

७ विभागीय सचिव, अखिल भारतीय संस्कृत शिक्षा सेमिनार, १९६४ ई०।

८ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की राजस्थान-समिति के सदस्य।

९ सदस्य महासमिति, राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, १९६६ ई०।

१० अनेक शिक्षण संस्थाओं की कार्य समिति के सदस्य।

११ सहायक संचालक, शोध सहायक और उप निदेशक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, राजस्थान सरकार, जोधपुर। प्रतिष्ठान में अनुसंधान और प्रशासन सम्बन्धी कार्यों का क्रियात्मक अनुभव १७ वर्ष, १९५१ से।

१२ निदेशक, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर।

४ विशेष विवरण —

१ रेडियो से हिन्दी तथा राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति पर प्रसारित वार्ताएं, लगभग सवा सौ (१९४८ से)।

२ राजस्थान के आन्तरिक भागों में और पूना बम्बई, कलकत्ता आदि की यात्राएं कर हस्तलिखित ग्रन्थ और साहित्य सम्बन्धी विस्तृत खोज संग्रह, अध्ययन और प्रकाशन कार्य।

३ राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का निदेशन १९४१ से १९५० ई०।

४ गुजराती और मराठी आदि में अनेक रचनाएं अनुदित और प्रकाशित।

५ देश विदेश के अनेक प्रमुख विद्वानों द्वारा साहित्यक कार्यों और प्रकाशनों का प्रशंसात्मक उल्लेख।

१७ राजस्थानी लोक कथायां (राजस्थानी संस्कृति परिषद्, जयपुर) ।

१८ राजस्थानी पुस्तक माला, प्रकाशित पुस्तकें ३ ।

१९ भारतीय लोक-कला ग्रन्थावली, प्रकाशित ग्रन्थ ८ ।

२० त्रैमासिक शोध-पत्रिका, प्रथम और द्वितीय भाग, १९४६-४७ ई० ।

२१ लोक कला त्रैमासिक शोध पत्रिका, भाग १-६ ।

२२ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यक निबन्ध आदि लगभग १२५ (सवा सौ) ।

२३ राजस्थानी साहित्य का इतिहास, १९६८ ई० ।

२४ वैताल पचविंशतिका, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६८ ।